CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृति में भी परिवर्तन होता है, किन्तु बाह्य कलेवर में ही। संस्कृति की आत्मा निर्विकार बनी रहती है। जिस राष्ट्र ने अपनी संस्कृति की इस अजर-अमर आत्मा को नहीं पहचाना, वह राष्ट्र अपना अस्तित्व ही खो बैठता है।

कुछ आधुनिक राजनीतिक नेता, समाजशास्त्री एवं तथाकथित शिक्षाशास्त्री यह कहते हुए सुनाई पड़ते हैं कि आधुनिक युग में समाजवादी एवं साम्यवादी विचार-धारा को ही अपनाना चाहिए क्योंकि समाजवाद स्वर्ग ला देगा और हमारा लक्ष्य पृथ्वी पर स्वर्ग को लाना ही तो है। समाजवाद से संस्कृत भाषा या संस्कृति का कोई विरोध नहीं है किन्तु इसकी आड़ में संस्कृति पर कुठाराघात उचित नहीं। ऐसे स्वयंभू विद्वानों को लेनिन की यह बात याद रखनी चाहिए कि "समाजवाद आपको स्वर्ग तक पहुँचा देगा किन्तु बिना संस्कृति के आप उसमें प्रवेश नहीं कर सकेंगे।"[1]

भारतीय संस्कृति की आत्मा को जो विद्वान् अंग्रेजी के माध्यम से पहचानकर चलते हैं, वे प्रायः भूल कर बैठते हैं। प्रसिद्ध आंग्ल कवि मिल्टन ने अपनी कविताओं में आगरा, लाहौर जैसे नगरों के वैभव का वर्णन किया, किन्तु यह वर्णन पूर्ण रूप से सही नहीं है। एबी दुबोय द्वारा सन् १८१७ में रचित "हिन्दू मैनर्स एण्ड सेरेमनीज़" दुपरोन द्वारा रचित 'औपनिखत' (उपनिषद् का लैटिन अनुवाद), सन् १८७५ में प्रकाशित और सर चार्ल्स विलकिन्स द्वारा रचित भगवद्गीता का अंग्रेजी अनुवाद, विसेंट स्मिथ द्वारा रचा गया 'भारत का इतिहास', मैक्समूलर द्वारा 'वैदिक साहित्य की व्याख्या', विलियम जेम्स द्वारा सन् १७८४ में रचित 'शकुन्तला नाटक' का अंग्रेजी रूपान्तर, अच्छे कार्य होते हुए भी भारतीय संस्कृति को पूर्णरूपेण चित्रित नहीं करते। अनुवाद सदा अनुवाद ही होता है। संस्कृत साहित्य के अक्षय भण्डार का रसास्वादन करने के लिए और भारतीय संस्कृति से परिचय प्राप्त करने के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन आवश्यक है।

संस्कृत का अन्य भाषाओं से सम्बन्ध

भारतवर्ष की अधिकतर भाषाओं की जननी संस्कृत है। हिन्दी, मराठी, पंजाबी, गुजराती, बँगला, असमी, उड़िया आदि भाषाएँ तो संस्कृत से निकली ही हैं, तमिल भी संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित भाषा है। इस प्रकार आर्य एवं द्रविड़ परिवार की सभी भाषाएँ संस्कृत से प्रभावित हैं। इस सन्दर्भ में संस्कृत आयोग लिखता है—

---

1. Lenin—"Socialism will bring you to heaven. But you will not be able to enter it without culture." Quoted by Prof. R. K. Yadav in 'Poetry in Indian Schools', Journal of Indian Education (NCERT), Vol. II, No. 5, January 1977, p. 33.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"आधुनिक आर्य भाषाएँ संस्कृत से ही उत्पन्न हुई हैं और जहाँ तक द्रविड़ भाषाओं का सम्बन्ध है, वे भी अपने साहित्यिक प्रयोग के आदि-काल से ही संस्कृत के द्वारा पालित-पोषित हैं।"[1]

राम-रावण-युद्ध की कथाएँ, भगवान कृष्ण के जीवन-चरित, उषा-अनिरुद्ध की प्रणय-कथाएँ मूल रूप में संस्कृत में लिखी गयीं, किन्तु ये ही कथाएँ भारत की सभी भाषाओं में लिखी गयीं। इन संस्कृत कथाओं ने भारत की समस्त भाषाओं के साहित्य की श्रीवृद्धि की है। कम्ब रामायण तमिल भाषा का अनूठा ग्रन्थ है। अर्जुन चित्राङ्गदा प्रेम-कथा, कृष्ण-गोपी प्रेम सम्बन्धी आख्यान बँगला साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। असमी, उड़िया, गुजराती सभी भाषाओं में यही कथाएँ प्रकारान्तर से मिलती हैं। यदि इन्हें निकाल दिया जाय तो किसी भी भाषा के साहित्य में कुछ भी नहीं रह जाता।

भाषा की दृष्टि से भी भारतवर्ष की सभी भाषाओं में संस्कृत के अधिकांश शब्द तत्सम या तद्भव रूप में विद्यमान हैं। हिन्दी भाषा तो संस्कृत भाषा की ही शब्दावली मूल रूप से ग्रहण करती है। जब हिन्दी को संविधान में राजभाषा स्वीकृत किया गया तो वहाँ पर स्पष्ट रूप से कहा गया कि आवश्यकतानुसार हिन्दी भाषा की शब्दावली संस्कृत से ही ली जायगी। संविधान में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी गयी है। संस्कृत भाषा में इतनी सामर्थ्य है कि वह आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के योग्य शब्द प्रदान कर दे। शब्दों की रचना की दृष्टि से संस्कृत अक्षय भण्डार है।

भारतीय भाषाएँ ही नहीं, संसार की अन्य भाषाओं पर भी संस्कृत का प्रभाव है। विश्व की प्राचीनतम भाषा होने के कारण एवं प्राचीन काल में भारत जैसे वैभवशाली एवं प्रगतिशील राष्ट्र की भाषा होने के कारण इसने उस समय की अन्य भाषाओं को प्रभावित किया है। लैटिन और ग्रीक पर संस्कृत भाषा के प्रभाव के विषय में विद्वानों ने एकमत होकर अपनी सम्मति दे दी है, अतः उसके विषय में अधिक कहना उचित नहीं।[२] संस्कृत का पितृ शब्द ही पश्चिम में पेटर और फादर हो गया। भ्रातृ शब्द ब्रदर के रूप में दिखाई पड़ता है। अंग्रेजी के नोज, टूथ, स्टेशन, माइण्ड, कप, हैण्ड शब्दों का सम्बन्ध संस्कृत के नस्, दन्त, स्था, मन, कुप्य, हन् शब्दों से कहीं न कहीं अवश्य है। संस्कृत के अनेक शब्दों से ही लैटिन एवं ग्रीक

---

1. "The modern Aryan languages were all born in the lap of Sanskrit; and as for the Dravidian languages, ever since their earliest literary use, they have been nurtured by Sanskrit."

—**Report of the Sanskrit Commission**, p. 85.

२. इस विषय में अधिक जानकारी के लिए डा० रामविलास शर्मा द्वारा रचित 'भाषा और 'समाज' नामक पुस्तक देखिए।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के अनेक मूल शब्द बने हैं। संस्कृत के मत्त, दिव्य, गो, जनन शब्दों को अंग्रेजी के मैड, डिवाइन, काउ, जैनेसिस शब्दों के साथ रखकर पढ़िए। यही नहीं, रूसी भाषा के भी अनेक शब्द संस्कृत शब्दों के समान हैं। रूसी भाषा के अगोन्, द्वेर, नेवा, एस्त, कुदा, तुदा, जिनानिये, निवेस्ता, प्लावानिये शब्दों को संस्कृत भाषा के अग्नि, द्वार, नभ, अस्ति, कुत्र, तत्र, ज्ञान, नवोढा, प्लावन शब्दों के साथ रखकर पढ़िए। समानता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

संस्कृत भाषा के पौष, माघ, फाल्गुन चीनी भाषा में पौहुआ (Pohoua), माकुआ (Macua) तथा फाल्कुना (Pholkuna) के रूप में व्यवहृत हैं। प्राचीन काल में चीनी लोगों का विश्वास था कि यह पृथ्वी कच्छप के ऊपर टिकी हुई है। स्वस्तिक चिह्न को चीन में गौतम बुद्ध के हृदय के रूप में स्वीकार किया गया था। महाभारत और मनुस्मृति में भी चीन देश का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में चीनी रेशम के विविध प्रकारों का वर्णन है। चीन में भी भारत की भाँति होली का उत्सव मनाया जाता था। चीनी भाषा में प्राप्त बौद्ध साहित्य में राम वनवास, सीता हरण, जटायु कथा, सुग्रीव मैत्री आदि का उल्लेख मिलता है। चीन और भारत के मार्ग में स्थित खोतान में संस्कृत भाषा का विशाल विश्वविद्यालय था। ह्वेनसांग ने यह शर्त रखी थी कि जो भी चीनी विद्वान् भारत की यात्रा पर जाय वह खोतान में कम से कम छह मास रहकर संस्कृत का अध्ययन अवश्य कर ले। चीन में गणेश पूजा भी प्रचलित थी। मंगोल की एक समय में राजधानी अनबलोतर थी जहाँ पर गरुड़ को ग्राम देवता के रूप में पूजा जाता था। मंगोल भाषा में दिनों के नाम इस प्रकार हैं—आदिया (आदित्यवार), सोमिया (सोमवार), बुधिया (बुधवार), सुकर (शुक्रवार), संचीव (शनिवार)। इन नामों में संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है।

भारत से बाहर अनेक नगरों व देशों के नाम संस्कृत भाषा से प्रभावित हैं। ईरान और आयरलैण्ड के मूल में आर्य शब्द है। काठमाण्डू काष्ठमंडप का, पेशावर पुरुषपुर का, कन्धार गान्धार का, सिंगापुर सिंहपुर का, सुमात्रा स्वर्णदीप का, जावा यवद्वीप का, साइबेरिया शिविर देश का, लाओस लावदेश का, तद्भव रूप है।

एशिया के दक्षिण-पूर्व में संस्कृत-भाषा का आज भी प्रभाव बना हुआ है। इण्डोनेशिया में सामान्य जन यद्यपि मुसलमान हैं; फिर भी रामायण एवं महाभारत की कथाओं से वे प्रेरणा लेते हैं एवं इनमें वर्णित पात्रों को अपना देव समझते हैं। रामायण एवं महाभारत की कथाएँ इण्डोनेशिया में राष्ट्रीय कक्षाओं के रूप में स्वीकृत हैं। इण्डोनेशिया शब्द का अर्थ ही भारत-द्वीप (इण्डस+नेसस) है। वहाँ के भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्ण का नाम कर्ण के आधार पर था। इण्डोनेशिया के द्वीपों के नाम भी संस्कृतमय हैं। सुमात्रा नाम तो शुद्ध संस्कृत शब्द ही हैं। वहाँ एक स्थान है, जोगजकर्ता जो योग्यकर्ता का तद्भव रूप है। जोगजकर्ता के सुल्तान की उपाधि है, 'भुवनो-सेनापति'। यह शब्द शुद्ध संस्कृत शब्द है। वहाँ का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, 'प्रोबोलिंगों' जो 'पूर्व' और 'कलिंग' शब्दों से बना है। जावा के मुसलमान भी मूर्तियों पर फूल चढ़ाते हैं और मन्दिरों में आरती भी उतारते हैं। बाली द्वीप का नाम भी सम्भवतः बाली के आधार पर बना है। बाली में आज भी हिन्दुओं का बहुमत है और वे शिव की उपासना करते हैं। वे पुजारी को पादण्ड कहते हैं और पादण्ड संस्कृत भाषा का विधिवत् अध्ययन करते हैं। उनके मन्त्र, प्रार्थनाएँ संस्कृत भाषा में ही हैं। बाली की भाषा में संस्कृत के अनेक शब्द मिले हुए हैं। जावा और बाली में छाया-नाटकों का बड़ा प्रचलन है और इनमें राम-रावण युद्ध, अर्जुन-परिचय, द्रौपद्री विवाह आदि दृश्य दिखाये जाते हैं। जावा में सर्वोच्च पर्वत शिखर का नाम सुमेरु है।

कम्बोडिया शब्द कम्बोज का तद्भव रूप है। यहाँ पर भी संस्कृत भाषा व साहित्य का प्रभाव है। कम्बोडिया में अधिकांश लोग बौद्ध हैं और वहाँ पर पौराणिक कथाएँ उनकी भाषाओं के साहित्य का गौरव बढ़ाती हैं। इन स्थानों के नाम भी संस्कृत शब्दों के तद्भव रूप हैं। लाओस की जनता भी संस्कृत भाषा के प्रभाव से बची नहीं है। फारसी भाषा और संस्कृत भाषा के घनिष्ठ सम्बन्धों को विद्वानों द्वारा स्थापित किया जा चुका है। पश्तो भाषा पर भी संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव है। पश्तो अफगानिस्तान की भाषा है। वहाँ की जनता एवं सरकार ने पश्तो और संस्कृत के सम्बन्ध का अनुभव करके संस्कृत के अध्ययन पर विशेष बल दिया है। काबुल विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में संस्कृत महत्त्वपूर्ण विषय है। संस्कृत के अध्ययन पर बल देने का वहाँ प्रयोजन यह है कि संस्कृत के व्याकरण के आधार पर पश्तो को वैज्ञानिक भाषा बनाया जाय।

यूरोप द्वारा समादृता भाषा

भारत एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में ही नहीं, वरन् यूरोप में भी संस्कृत का आदर हुआ। भारत में अँगरेजों ने पहले व्यापार करना प्रारम्भ किया, पर बाद में धीरे-धीरे अपना शासन स्थापित कर लिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में ही अँगरेज संस्कृत के विशाल साहित्य के सम्पर्क में आ गये और तब उन्हें मालूम हो गया कि हिन्दू-जाति सभ्यता व संस्कृति में किसी से पीछे नहीं। उन्हें पता लगा कि संस्कृत में पाँच हजार वर्षों का साहित्य भरा हुआ है जिसके सामने ग्रीक एवं लैटिन साहित्य ठहर नहीं सकते।

अँगरेजों ने काशी के पंडितों की देखरेख में हिन्दू धर्म-शास्त्रों का अनुवाद कराया और उन अनूदित ग्रन्थों को पढ़कर वे आश्चर्यचकित रह गये। वारेन हेस्टिंग्ज ने चार्ल्स विल्किन्स को काशी भेजा जहाँ उसने पण्डितों से संस्कृत सीखकर अपने को धन्य समझा। सन् १७८५ में चार्ल्स विल्किन्स ने गीता और हितोपदेश का अंग्रेजी में अनुवाद किया, जिससे अँगरेजों को भी संस्कृत का अमृत-पान करने का सौभाग्य मिला। इसी समय सन् १७८३ में विलियम जोन्स नामक अँगरेज बंगाल का जज

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नियुक्त होकर आया। जोन्स ने संस्कृत की प्रशंसा यूरोप में ही सुन रखी थी। यहाँ आकर उसने इस गीर्वाण-वाणी का अध्ययन किया और इसके प्रसार के लिए कलकत्ता में 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' नामक एक संस्था की स्थापना की। इस सभा के वार्षिक अधिवेशनों में शास्त्रों की विस्तृत चर्चायें होती थीं और इनका विवरण फ्रेंच भाषा में छपता था, जिसे बड़ी लगन के साथ यूरोप में पढ़ा जाता था। सन् १७८९ में जोन्स ने महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अंग्रेजी में अनुवाद किया, जिससे समूचा यूरोप संस्कृत के समक्ष नतमस्तक हो गया और यूरोपीय विद्वानों के ज्ञान की सीमाएँ विस्तृत हुईं। दो वर्ष बाद सन् १७९१ में इस नाटक का जर्मन भाषा में अनुवाद हुआ जिसे पढ़कर जर्मनी का राष्ट्रकवि कवि गेटे नाच उठा और भारत-दर्शन के लिए लालायित हो उठा। जिस प्रकार भारत में कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर सम्मानित थे, उसी प्रकार तत्कालीन जर्मनी में गेटे समादृत थे। गेटे ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक के प्रति आभार व्यक्त करते हुए एक प्रशस्ति लिखी जिसमें उसने इस नाटक को स्वर्ग और पृथ्वी का सोपान बताया। गेटे ने लिखा है, "हे मित्र ! यदि तुम वासन्ती युवावस्था के मनोरम पुष्प और ग्रीष्म-तुल्य प्रौढ़ावस्था के उत्तमोत्तम फल और अन्य ऐसी आत्मा को प्रभावित करने वाली श्रेष्ठ सामग्रियाँ एक ही स्थल पर ढूँढ़ना चाहते हो तो कालिदास की शकुन्तला पढ़ो। उसमें पहुँच कर न केवल तुम्हारी आत्मा ही संतुष्ट और शान्त होगी प्रत्युत तुम्हें स्वर्ग और मर्त्य-लोक की सकल समृद्धियाँ भी वहाँ एक ही जगह पर मिल जावेंगी।"

आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत—उपनिषदों से प्रसिद्ध दार्शनिक शोपेनहार इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने कह दिया—"समग्र विश्व में उपनिषदों के अध्ययन की तुलना में कोई भी अध्ययन अधिक उपादेय और उदात्तकारी नहीं है। यह मेरे जीवन का सम्बल रहा है—यही मेरी मृत्यु का सम्बल होगा।"

सन् १८१४ में पेरिस विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाने की सरकारी व्यवस्था हुई जिसमें शेजी नामक विद्वान को संस्कृत-शिक्षक नियुक्त किया गया। यहीं पर मैक्समूलर ने भी संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की थी।

६ दिसम्बर, १८२३ को जर्मनी के एक छोटे से नगर देसाऊ में जन्मे मैक्समूलर के हृदय में भारत के प्रति अथाह प्रेम था। उनके पिता बिलेहम मुलर एक प्रसिद्ध कवि थे। मैक्समूलर ने लिपज़िक विश्वविद्यालय में हरमन-ब्रो-रबोस की अध्यक्षता में संस्कृत का अध्ययन किया था और १८४३ ई० में दर्शनशास्त्र में डाक्टरेट की उपाधि ली थी। स्वामी विवेकानन्द अपनी विदेश-यात्रा के मध्य मैक्स-मूलर के घर गये थे और अपनी इस यात्रा को उन्होंने तीर्थयात्रा कहा था। विवेकानन्द ने कहा था, "धन्य हैं वे ! उनके मन में भारत के लिए कितना अगाध प्रेम है।" मैक्समूलर ने रामकृष्ण परमहंस पर एक पुस्तक लिखी। पेरिस के योजेन बोर्नोफ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की प्रेरणा से ऋग्वेद प्रकाशित करने के लिए वे इंगलैंड गये और वहीं बस गये। आजीविका के लिए उन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में सन् १८५० से १८७५ ई० तक यूरोपीय भाषाओं का शिक्षण किया। अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने पूर्व की पवित्र पुस्तकों के प्रकाशन की विशाल योजना प्रारम्भ की। समस्त संस्कृत संसार मैक्समूलर के किये गये कार्यों के प्रति ऋणी है।

उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त हूनरी टामस, कोलब्रुक, बूलर, कीथ, विंटरनित्स, मैकडोनल, शिलर, श्लेगल, मोनियर, विलियम्स प्रभृति अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत का अध्ययन और अनुशीलन किया।

इटली, डेनमार्क, स्वीडन, जर्मनी, फ्रांस, इङ्गलैंड आदि यूरोपीय देशों में उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही संस्कृत की धाक जम गई थी और यूरोपीय विद्वान् संस्कृत की खोज को कोलम्बस द्वारा की गई नई दुनिया की खोज के समान ही महत्त्वपूर्ण मानने लगे थे। उस समय यूरोप में यह कहावत प्रचलित हो गई थी कि वहाँ के विद्वान् ब्राह्मण होते जा रहे हैं। भारत पराधीन था, पर विद्वानों का तीर्थस्थान बन गया था और यहाँ से जो विदेशी विद्वान् लौटकर जाता था, उसका यूरोप में बड़ा सम्मान होता था।

विदेशों में संस्कृत साहित्य का अध्ययन

आजकल भी रूस, अमेरिका, इण्डोनेशिया, जर्मनी आदि देशों में संस्कृत साहित्य का पठन-पाठन रुचिपूर्वक किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में 'अध्ययन-अनुसन्धान' शोधपत्रिका में प्रकाशित विवरण ध्यान देने योग्य है।

प्राच्य विद्या संस्थान, मास्को के विद्वान् डॉ० आइगोर सेरेब्राइकोन सोमदेव के कथासरित्सागर और भर्तृहरि के शतकों में जीवन के विविध पक्षों के वर्णन से बहुत प्रभावित हैं। इन्होंने दोनों ग्रन्थों का रूसी भाषा में अनुवाद करके संस्कृत की सेवा की है। पश्चिमी जर्मनी के विद्वान् डॉ० गुन्थर डी० सोन्दीमेर हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के अध्यापक हैं। आपने संस्कृत साहित्य के आधार पर 'अविभक्त कुटुम्ब' नाम के ग्रन्थ की रचना की है जिसमें भारतीय कुटुम्ब की परम्परा के विकास का एक वैध संस्था के रूप में विवेचन किया गया है।

प्रोफेसर एलेक्स वेमेन गत अनेक वर्षों से कोलम्बिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क में संस्कृत का अध्ययन कर रहे हैं। आप बौद्ध-धर्म और तंत्र में विशेष रुचि रखते हैं। गुह्य समाजतन्त्र नाम से अंग्रेजी में आपने एक पुस्तक लिखी है। आपने एक तिब्बती भाषा की पुस्तक का अंग्रेजी में 'फण्डामेण्टल्स ऑफ बुद्धिस्ट तन्त्राज' नाम से अनुवाद किया है।

इण्डोनेशियन विद्वान् डॉ० पुण्यात्मज हिन्दू धर्म के विवेचक विद्वान् हैं। आपने हिन्दू धर्म शीलक्रम आदि ग्रन्थों की रचना की है। मंगोलिया के विद्वान् प्रो० रिनचेन कालिदास की काव्य-प्रतिभा के प्रशंसक हैं। आपने काव्यदर्शन का मंगोल भाषा में अनुवाद किया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस शताब्दी में रूस की जनता भारत की जनता के साथ अटूट मैत्री के बन्धन से बँध गई है। इसका ज्वलन्त प्रमाण है—रूस में भारतीय साहित्य का प्रकाशन तथा उसका द्रुतगति से प्रचार। अभी हाल में रूसी कवि श्री लिपकिन ने एक लाख पद्यों वाले मूल महाभारत का रूसी भाषा में अनुवाद किया है। इसकी ३० सहस्र प्रतियों को एक ही दिन में खरीदकर रूसी जनता ने भारतीय साहित्य के प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित किया है। इसी प्रकार की एक योजना और है जिसके अधीन रामायण का रूसी अनुवाद प्रकाशित किया जायगा। विगत शताब्दी के मध्य भाग से जर्मनी में जैन ग्रन्थों के अध्ययन-विवेचन का कार्य आरम्भ हुआ था। १८४८ में ओ० बोहरलिंकडक ने हेमचन्द्र के 'अभिधान चिन्तामणि' का एवं बेबदे ने १८६६ में 'शत्रुञ्जय माहात्म्य' तथा 'भगवती सूत्र' के कुछ अंशों का अनुवाद किया था।

व्हूलर ने भारत के पुस्तकालयों में घूम-घूम कर अनेक जैन पाण्डुलिपियों को प्राप्त किया तथा उनके आधार पर अल्बर्ट वेबर ने श्वेताम्बर सम्प्रदाय के धर्म वैधानिक साहित्य का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया। हर्मन याकोबी ने १८७९ में कल्पसूत्र एवं हरिभद्र के सनत्कुमार चरित का सम्पादन व अनुवाद किया। प्राच्य धर्म ग्रन्थमाला में कुछ जैन सूत्रों के अनुवाद भी किये। उनके लेखों का एक संग्रह 'जैन धर्म का अध्ययन' नाम से प्रकाशित हुआ है। हेल्मुथ़फॉन ग्लासेनप्प ने 'भारतीय धर्मों में जैन धर्म के मोक्षमार्ग का स्वरूप' लिखा और बाल्ट शुब्रिंग ने 'जैन तीर्थङ्करों का उपदेश'। आधुनिक विद्वानों में क्लाउस ब्रून (बर्लिन) तथा लुडविन अल्सडोर्फ (हम्बर्ग) जैन अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन कर रहे हैं।

वर्तमान शताब्दी के चतुर्थ दशक में (सन् १९३१-४०) श्री ब्रेसोएक पहले ऐसे विद्वान् थे जिन्होंने कौटिल्य अर्थशास्त्र में आर्थिक एवं न्यायिक (विधि सम्बन्धी) विषयों के विवेचन का प्रयत्न किया। अपने अध्ययन द्वारा वह इस परिणाम पर पहुँचे कि अर्थशास्त्र अमूल्य सामग्री का भंडार है, जिससे विशेषकर भारत के मौर्य साम्राज्य के आर्थिक तथा न्यायिक ढाँचे को समझा जा सकता है।

आजकल बर्लिन स्थित जर्मन विज्ञान अकादमी के प्राच्य अनुसन्धान संस्थान के प्रोफेसर डब्ल्यू० रूबेन उच्च अनुसन्धान सम्बन्धी कई विषयों पर कार्य कर रहे हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, प्राचीन भारत के सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास की शोध और काल-विभाजन की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। जर्मन जनवादी गणतंत्र के युवा शोधार्थियों का एक छोटा दल आजकल प्रो० रूबेन के निर्देशन में इसी संस्थान में अर्थशास्त्र का विशेष अध्ययन कर रहा है।

इमर्सन ने अपने भारत-प्रेम से यह दिखा दिया कि अमरीका भी भारत को आदर देने में पीछे नहीं रहा। इमर्सन (१८०३-१८८२) ने भारतीय धर्म-ग्रन्थों की पूर्णता को समझा और 'ओवर सोल' और 'सर्कल्स' नामक उनके प्रसिद्ध निबन्धों पर भारतीय विचारों का स्पष्ट प्रभाव है। इमर्सन पर भारतीय चिन्तन का इतना प्रभाव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था कि उन्हें लोग एक 'भौगोलिक भूल' कहा करते थे। इमर्सन का यह कथन उल्लेखनीय है कि "भारतीय क्लासिक इन्द्रधनुष की भाँति है जिसकी प्रथम छाप भी कृतज्ञतापूर्वक ग्रहण की जानी चाहिए।"

इमर्सन के अनुयायी हेनरी डेविड थारो (१८१७-१८६२) ने भारतीय दर्शन का गहन अध्ययन किया था। उनके प्रिय ग्रन्थ थे—वेदान्त साहित्य, मनुस्मृति और भगवद्गीता। 'ए वीक आन द कान्फर्ड' में उन्होंने गीता की विद्वत्तापूर्ण टीका की है। उनके द्वारा रचित 'अन्टु दिस लास्ट' का गाँधीजी पर बहुत प्रभाव पड़ा था। वाल्ट ह्विटमन (१८१९-१८९२) भी भारत के दर्शन से प्रभावित थे। उनकी प्रसिद्ध कृति 'लीव्ज़ आफ़ ग्रास' में गीता का सन्देश निहित है।

पुराणों में वर्णित कुशद्वीप (न्यूबिया), शाल्मलीद्वीप (हिन्दमहासागर से मिला हुआ अफ्रीका का भूभाग जिसमें मेडागास्कर भी सम्मिलित है), चन्द्रस्थान (अफ्रीका का पूर्वी भाग), शंखद्वीप (अबीसीनिया से मेडागास्कर तक अफ्रीकी भूभाग) आदि से अनुमान लगाया जा सकता है कि संस्कृत का कुछ सम्बन्ध अफ्रीका से भी रहा होगा क्योंकि अफ्रीका से भारत का व्यापार विशाल स्तर पर होता था।

संस्कृत का राजनीतिक महत्त्व

राजनीतिक दृष्टि से भी संस्कृत भाषा का विशेष महत्त्व है। आज राष्ट्र के सामने राष्ट्रीय एकता के लिएं ही खतरा पैदा हो गया है। देश में विघटनकारी तत्त्वों की वृद्धि हो रही है। कुछ विद्वान् यह कहते हुए सुने जाते हैं कि भारत को एक राष्ट्र में आबद्ध करने का श्रेय अँगरेजों को है। ये विद्वान् काल्पनिक लोक में रहते हुए समझ पड़ते हैं, क्योंकि यथार्थ तो यह है कि अंग्रेजी राष्ट्र को टुकड़े-टुकड़े करने में लगी हुई है। आज भी अंग्रेजी की मोहिनी माया में फँसे हुए हमारे कुछ बन्धु राष्ट्रीय सम्मान के मूल्य पर भी अंग्रेजी को भारत की राजभाषा बनाये रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे संविधान को समुद्र तक में फेंक देने की बात करते हैं और राष्ट्रभाषा-भाषी प्रदेशों से अपने को पृथक् समझते हैं। यदि ये व्यक्ति अपनी मातृभाषा के लिए कुछ प्रयत्न करते तब तो श्रेयस्कर ही होता, किन्तु आश्चर्य की बात है कि ये लोग अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को ही राजभाषा बनाये रखने की वकालत करने में लज्जा का अनुभव नहीं करते। इससे यह प्रकट होता है कि उन्होंने भारतीय जनवर्ग से अपने को पृथक् कर लिया है। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि इन व्यक्तियों ने अपनी एक जाति बना ली है और शरीर तथा रंग से भारतीय होते हुए भी ये मन तथा विचारों से विदेशी हैं। इस स्थल पर मैकाले के उस प्रसिद्ध कथन को उद्धृत करना उपयुक्त समझ पड़ता है। अंग्रेजी शिक्षा को भारत पर थोपने की वकालत करते हुए उसने कहा था—

"हम लोगों (अँगरेजों) को इस समय एक ऐसे वर्ग के निर्माण का भरसक प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे और हमारे लाखों शासित जनों के बीच में दुभाषिए

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का काम करे और जो वर्ग रक्त और रंग में तो भारतीय हो, किन्तु रुचि, सम्मति, नैतिकता और ज्ञान में अँगरेज हो।"[1]

आज यदि मैकाले होता, तो वह हमारे अंग्रेजी-मोह से कितना प्रसन्न होता!

राष्ट्रीय एकता की आधारशिला

भारत में राष्ट्रीय एकता संस्कृत के कारण है। समस्त भारतवर्ष में बाह्य भेदों के होते हुए भी संस्कृति एक है। संस्कृति की यह एकता संस्कृत भाषा के द्वारा विदित होती है। भारतवर्ष का जो भौगोलिक चित्र संस्कृत भाषा में वर्णित है, वह राष्ट्रीय एकता का द्योतक है। वायु पुराण में भारत के विषय में लिखा गया है—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥

आजकल हम राष्ट्रीय एकता की प्रायः चर्चा किया करते हैं। देश को विघटनकारी तत्त्वों से बचाने के लिए राष्ट्रीय एकता अत्यावश्यक है। इसीलिए भारत सरकार ने डॉ० सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था, जिसने इस सम्वन्ध में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। यदि हमें राष्ट्र को बचाना है तो संस्कृत भाषा के पठन-पाठन के प्रति लोगों में रुचि जाग्रत करनी ही होगी। भाषाओं की दृष्टि से भारत में अनेकता है, किन्तु संस्कृत का आदर भारत के प्रत्येक कोने में है। संस्कृत तो सभी की समादृता भाषा है। सम्पूर्ण भारत में इसके प्रति आदर का भाव है। हिन्दुओं के सभी कार्य संस्कृत भाषा द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। भारत का मामूली पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी भारत के सभी नगरों का प्रतिदिन स्नान के समय नाम लेता है और सभी नदियों का स्मरण करता है। स्नान करते समय धार्मिक व्यक्ति निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हैं—

अयोध्या-मथुरा माया-काशी-कांची-अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

उपर्युक्त श्लोक में भारत के सभी नगर आ गये हैं। निम्नलिखित एक अन्य श्लोक का भी स्नान के समय पाठ किया जाता है जिसमें भारत की प्रमुख नदियों के नाम आ गये हैं—

गंगे! च यमुने! चैव गोदावरि! सरस्वति!
नर्मदे! सिन्धु! कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

यही नहीं, प्रत्युत देश के पर्वतों को भी ध्यान में रखा गया है—"महेन्द्रो

---

1. "We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions which we govern; a class of persons Indian in blood and colour but English in taste, in opinion, in morals and in intellect."

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।" "विन्ध्यश्च पारियात्रश्च". कहकर भारतीय नागरिक भारत के सभी पर्वतों का एक दृश्य प्रस्तुत कर देता है।

प्रातः स्मरण के समय भारतीय जन प्रायः निम्नलिखित श्लोक का पाठ रतेहैं—

महेन्द्रो मलयः सह्यो देवतात्मा हिमालय।
ध्येयोरैवतको विन्ध्यो गिरिश्चारावलिस्तथा॥

अर्थात् महेन्द्र (उत्कल), मलय (मैसूर), सह्य (महाराष्ट्र), हिमालय (उत्तर), रवतक (गिरिनार), विन्ध्य (मध्य), अरावली (राजस्थान) पर्वतों का ध्यान करे। प्रातः स्मरण के माध्यम से सम्पूर्ण देश का ध्यान करने की सुन्दर योजना किसी अन्य भाषा के साहित्य के पास नहीं है।

संस्कृत का विद्वान ही नहीं साधारण भारतीयों में भी कुछ व्यक्ति प्रातःकाल निम्नलिखित श्लोक का मौखिक रूप से पाठ करते हैं—

प्रयागं पाटलीपुत्रं विजयानगरं पुरीम्।
इन्द्रप्रस्थं गयां चैव प्रत्यूषे प्रत्यहं स्मरेत्॥

अर्थात् प्रयाग, पटना, विजयनगर, जगन्नाथपुरी, इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली), गया जैसे क्षेत्रों का प्रतिदिन प्रातःकाल स्मरण करें। है किसी राष्ट्र के साहित्य के पास ऐसी विचारशक्ति और ऐसी प्रार्थना ? संस्कृत साहित्य के सम्पर्क में रहकर भारतीय जन राष्ट्रीय एकता के सूत्र में स्वतः सम्बद्ध रहते हैं और रह सकते हैं। इसी भाषा और साहित्य के अनादर से राष्ट्रीय एकता खंडित हुई है।

पंडितों के बीच में संस्कृत आज भी सम्पूर्ण भारत में सम्पूर्ण भाषा का काम करती है। आज जो कुछ राष्ट्रीय एकता भारतवर्ष में दिखाई पड़ती है, वह संस्कृत भाषा की ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में देन है। अतः यह कहना कि संस्कृत प्राचीन काल की भाषा रही है और वह अब मृत भाषा है, अपने अज्ञान को सूचित करना है। आज भी संस्कृत हजारों व्यक्तियों की सम्पर्क भाषा है। कई हजार पंडित संस्कृत को मातृभाषा के समान अपने दैनिक जीवन में व्यवहार में लाते हैं। अतः इस भाषा को मृतभाषा कदापि नहीं कह सकते। वह तो आज भी लिखी, पढ़ी, बोली और सुनी जाती है। आज भी उसमें ग्रन्थों की रचना होती है। अभी कुछ वर्ष पूर्व मद्रास निवासी श्री रामदेशिकन शिरोमणि ने कम्बरामायणम् के बालकाण्ड का संस्कृत संस्करण प्रकाशित किया है। अनुवाद बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। सन् १९६४ में प्रकाशित श्री महालिंग शास्त्री का 'भारत विषाद' मौलिक काव्य-ग्रन्थ है, जिसमें सुन्दर वसन्ततिलका छन्दों में भारत की गौरव-गरिमा गुंजरित हो उठी है। आज भी संस्कृत में पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं। संस्कृतम कार्यालय अयोध्या से प्रकाशित 'संस्कृतम्'; नागपुर भवितव्यम् कार्यालय से प्रकाशित 'भवितव्यम्' और दिल्ली से प्रकाशित 'संस्कृत रत्नाकर' पत्रों का साप्ताहिक पत्रों के रूप में; भारतीय कार्यालय,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोपाल मन्दिर मार्ग, जयपुर से प्रकाशित 'भारती' का मासिक के रूप में तथा साहित्य अकादमी, नई दिल्ली से प्रकाशित 'संस्कृत प्रतिमा' का त्रैमासिक पत्र के रूप में उल्लेख किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पण्डरपुर से प्रकाशित 'संस्कृति', शिमला से प्रकाशित 'दिव्यज्योति', वाराणसी से प्रकाशित 'गाण्डीव', पूना से प्रकाशित 'शारदा', बम्बई से प्रकाशित 'सम्विद' तथा चित्तूर से प्रकाशित 'गीर्वाणी' बड़े ही उच्च कोटि के पत्र हैं। इस समय देश में लगभग ४३ पत्र-पत्रिकाएँ संस्कृत में निकलती हैं, जिनमें एक दैनिक, दो साप्ताहिक, दो पाक्षिक, ग्यारह मासिक नौ त्रैमासिक तथा शेष अन्य हैं।

आज भी वह अनेक छात्रों के लिए शिक्षा के माध्यम के रूप में गृहीत है। प्राचीन काल में ही नहीं, आज भी सर्वोत्कृष्ट विद्वत्ता की वह परिचायक है। वर्तमान भारत में सभी लोग डॉ० सी० डी० देशमुख (भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री), डॉ० हरेकृष्ण मेहताब (भूतपूर्व गवर्नर व मुख्यमन्त्री), श्री सुखठांकर (भूतपूर्व गवर्नर), श्री आर० आर० दिवाकर (भूतपूर्व गवर्नर), श्री अनन्तशयनम् आयङ्गर (भूतपूर्व अध्यक्ष लोक-सभा एवं गवर्नर, बिहार), प्रोफेसर के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर (भूतपूर्व कुलपति), श्री पतंजलि शास्त्री (भूतपूर्व चीफ जस्टिस, भारत) आदि व्यक्तियों के नामों से परिचित हैं। लेखक को इन सभी व्यक्तियों के संस्कृत में धाराप्रवाह भाषण सुनने के अवसर प्राप्त हुए हैं। इन विद्वानों के अतिरिक्त भारत के कर्णधार महात्मा गाँधी, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, डॉ० राधाकृष्णन्, डॉ० कन्हैयालाल मुंशी, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, श्री लालबहादुर शास्त्री आदि के संस्कृत-प्रेम से हम सभी परिचित हैं। वस्तुतः संस्कृत सभी के लिए प्रेरणा का अक्षय स्रोत है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृति वस्तुतः संस्कृत साहित्य में सुरक्षित है। संस्कृत भाषा द्वारा हम अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सकते हैं।

संस्कृत भारत भूमि की वह अजस्र ज्ञानधारा है जो क्षीण भले ही हो पर अभी निश्चल और निष्प्राण नहीं। एक ओर यदि इसके कण-कण में भारतीय संस्कृति भरी है तो दूसरी ओर इसकी समृद्धि को विश्व की कोई भी नवीनतम भाषा नहीं पा सकती। कतिपय विगत शताब्दियों के राजनीतिक उलट-फेरों और झंझावातों ने बरबस इसकी प्रमुखता अपहरण कर ली थी किन्तु भारत स्वातन्त्र्य के पश्चात् इसकी गौरव-गरिमा पुनः प्रतिष्ठित हो रही है।

इस स्थल पर यह कह देना अनुपयुक्त न होगा कि संस्कृत-भाषा के महत्त्व की रक्षा केवल यह कह देने से नहीं होगी कि हम अतीत काल में बड़े वैभवशाली थे। अतीत को समझकर हमें वर्तमान की ओर ध्यान देना है। अतीत में जहाँ हम संसार के अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों से किसी भी अर्थ में पीछे नहीं थे, वहाँ आज हम जीवन के सभी क्षेत्रों में अन्य राष्ट्रों से पीछे रह गये हैं। जिस तरह हम अपनी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भोजन-सामग्री के लिए विदेशों पर निर्भर रहते आये हैं, उसी तरह आज विचारों के लिए भी अमरीका, इंग्लैण्ड और रूस का मुँह हमें ताकना पड़ता है। कितनी दयनीय स्थिति हो गयी है हमारी ! आज आवश्यकता इस बात की है कि हम पुरातन और नवीन में समन्वय स्थापित करें। नवीन का हममें नशा नहीं होना चाहिए और न ही हम केवल पुरातन के चक्रव्यूह में घूमते रहें। भारत को आज प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे ही नेताओं की आवश्यकता है, जो इस समन्वय के महत्त्व को पहचान कर जनता का तदनुरूप मार्गदर्शन करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

3 | पाठ्यक्रम में संस्कृत का स्थान

गत अध्याय में हम संस्कृत भाषा और साहित्य के महत्त्व पर विचार कर रहे थे। अब प्रश्न यह उठता है कि संस्कृत जब इतनी महत्त्वपूर्ण भाषा है तो वर्तमान शिक्षा-प्रणाली एवं शैक्षिक पाठ्यक्रम में उसका क्या स्थान हो। इस विषय में शिक्षाशास्त्रियों के मतों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है। नीचे इन मतों का विश्लेषण किया जा रहा है।

प्रथम दृष्टिकोण

प्रथम वर्ग उन विद्वानों का है जो संस्कृत की शिक्षा को अनावश्यक एवं हानिकारक समझते हैं। उनके विचार से संस्कृत पढ़ाना छात्रों का समय नष्ट करना है। इन व्यक्तियों के विचार, ईर्ष्या से प्रेरित समझ पड़ते हैं। उन्होंने स्वयं संस्कृत भाषा एवं साहित्य का रसास्वादन नहीं किया है अतः उनके विषय में उन्हें कुछ ज्ञात नहीं रहता। वे कभी-कभी यह तर्क देते हैं कि संस्कृत केवल ब्राह्मणों की भाषा है। ऐसे व्यक्ति संम्भवतः विश्वामित्र, जाबालि, सूत, जनक आदि के नाम से भी परिचित न होंगे। उन्हें यह भी पता न होगा कि केरल में इस समय भी ईसाई और मुसलमान भारी संख्या में संस्कृत पढ़ते हैं। केरल के एक प्रसिद्ध संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना एवं उसके संचालन का श्रेय एक ईसाई परिवार को है। इस वर्ग के विद्वानों की सम्पत्ति पूर्वधारणा, द्वेष आदि कुप्रभावों से प्रेरित होती है। इस वर्ग के विद्वानों को समझना सरल कार्य नहीं है, तथापि, निम्नलिखित आधुनिक विद्वानों के संस्कृत भाषा-विषयक विचार उनके समक्ष प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

"...... ...संस्कृतशिक्षाया अविलंबित समुन्नतिः स्यात् इति वयं सर्वे आशास्महे न केवलं विद्यापीठेषु किन्तु नगरे-नगरे ग्रामे-ग्रामे खेटे-खेटेऽपि संस्कृत भाषा प्रसृता स्यात्। संस्कृत ग्रन्थेषु प्रकटीकृतानि अनर्घ्याणि तत्त्वानि केवलं पण्डितानां विदुषामेव भुक्त्यर्थं सन्ति साधारणजनैरपि तानि लभ्यानि भवन्तु इति श्रीं जगन्नाथचरणयोः प्रार्थयामि।" —उत्कलराज्यस्य भूतपूर्वं राज्यपालानां श्रीयशोवन्तनारायण सुखठंकरमहाशयानां भाषणम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"भौतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा में समन्वय आवश्यक है और यह समन्वय संस्कृत के अध्ययन के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य द्वारा अधिक नहीं हो सकता···· ····जब सरकार अर्थोत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण कर रही है तो संस्कृत को संरक्षण प्रदान करने के उत्तरदायित्व को क्यों नहीं वहन कर सकती········।"

—डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा संस्कृत विश्व-परिषद् के वाराणसी अधिवेशन के अवसर पर अध्यक्षीय भाषण।

"यदि मुझसे पूछा जाय कि भारत की सबसे विशाल सम्पत्ति क्या है और उत्तराधिकार के रूप में उसे सर्वोत्तम कौन-सी वस्तु प्राप्त हुई है तो मैं निस्संकोच उत्तर दूँगा कि यह सम्पत्ति संस्कृत भाषा और साहित्य एवं उसके भीतर जमा सारी पूँजी ही है। यह एक उत्तम अधिकार है और जब तक वह कायम है तथा हमारे जीवन को कायम किये है, तब तक भारत की आधारभूत प्रतिभा भी अक्षुण्ण रहेगी। यह बड़े आश्चर्य की बात है, अतीत की सम्पत्ति होते हुए भी संस्कृत एक जीवित परम्परा है। मैं संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देना और अपने विद्वानों को इस भाषा के साहित्य को, जो प्रायः भुला दिया गया है, छानबीन में लगाना पसन्द करूँगा।"

—पं० जवाहरलाल नेहरू।

"भारत को गौरवपूर्ण उत्तराधिकार के रूप में संस्कृत प्राप्त हुई है। इसने राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधा है और इस भाषा के द्वारा जो संस्कृति प्रवाहित हुई, उसने सम्पूर्ण मानव-सभ्यता के क्षेत्र में चमत्कारपूर्ण योगदान दिया है।"

—साम्यवादी नेता प्रो० हीरेन मुखर्जी का मई, सन् १९५९ में लोकसभा में भाषण।

"संस्कृत को अतिरिक्त राजभाषा बनाना चाहिए।"

—श्री चपलाकान्त भट्टाचार्य का लोकसभा में भाषण।

"जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत कभी भी सामान्य जनता की बोलचाल की भाषा नहीं थी, वे इतिहास नहीं जानते हैं।"

—श्री प्रकाशवीर शास्त्री का लोकसभा में भाषण।

"केवल संस्कृत को ही देश की राजभाषा घोषित कर देना चाहिए। ····यह (संस्कृत भाषा) आज भी हमारे दैनिक जीवन का सम्बल है और जीवन को गतिशील बनाने की प्रेरणा के रूप में सजीव तत्त्व है।"

—डॉ० सी० वी० रमण (संस्कृतायोग के समक्ष कथन)।

"संस्कृत अनेक भारतीय भाषाओं की जननी है। द्रविण भाषाओं पर भी इसका प्रभाव है। आज भी भारत के विभिन्न भू-भागों में पण्डितों के मध्य सम्पर्क की यह सामान्य भाषा है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह जीवित भाषा नहीं है। संस्कृत-साहित्य का अत्यधिक प्रभाव भारत में ही नहीं, वरन् एशिया के अन्य भागों में भी है। संस्कृत ने हम भारतीय लोगों के मन पर इतनी छाप छोड़ी है जितना हम चेतन मस्तिष्क से जान भी नहीं पाते। एक दृष्टि से संस्कृत-साहित्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राष्ट्रीय है, किन्तु इसका उद्देश्य सार्वभौमिक रहा है। इसीलिए जो व्यक्ति एक संस्कृति-विशेष के अनुयायी नहीं थे, वे भी इस भाषा के प्रति आकर्षित हुए थे।"[1]

—डॉ० राधाकृष्णन्।

"जो संस्कृत नहीं जानता, वह संस्कृत (Cultured) नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्राचीन काल से ही हमारी जीवन-पद्धति एवं परम्पराएँ केवल संस्कृत में ही प्रकट हुई हैं। गीता, उपनिषद् आदि को कुछ लोग अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ते हैं। कितनी दयनीय दशा है! क्या कोई अँगरेज शेक्सपीयर को तेलुगु के माध्यम से पढ़ता है?……यदि आज वर्तमान युग में भी हम उन्नति करना चाहते हैं तो हमें संस्कृत को अपने जीवन के आधार के रूप में पुनः स्वीकार करना पड़ेगा। बिना इसके हमारे सारे प्रयत्न निष्फल रहेंगे।"

—श्री अनन्तशयनम् आयंगर द्वारा अप्रैल १९५९ को पुरी में दिया गया भाषण।

"…………हमारी आर्य-संस्कृति और सभ्यता का स्रोत संस्कृत भाषा है। आर्यावर्त के विभिन्न भागों में बोली जाने वाली भाषाओं की जननी भी संस्कृत ही है। अतः सबका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे सब प्रकार से इस भाषा की प्रगति में सहायक हों।"

—नेपाल के दिवंगत राजा महेन्द्र का संस्कृत विश्व-परिषद् के षष्ठाधिवेशन के अवसर पर प्रेषित सन्देश।

"इसने (भारत ने) एक शानदार भाषा संस्कृत का विकास किया और इस भाषा के द्वारा सुदूर देशों को गौरवपूर्ण सन्देश दिया। इसने उपनिषद्, गीता और बुद्ध दिये हैं। संसार के किसी भी देश की शायद ही किसी भाषा ने उस राष्ट्र के इतिहास को इतना अधिक प्रभावित किया हो, जितना संस्कृत ने किया है। यह

---

1. "Sanskrit is the parent language from which many Indian languages are derived. It has also its influence on the Dravidian languages. Even today it happens to be the language common among Pandits in different parts of this country and so it cannot be said that it is not a language. The literature of Sanskrit has enormous influence not only in our country but also in other parts of Asia. Sanskrit has moulded the minds of our people to extent to which they are not conscious. Sanskrit literature is national in one sense, but its purpose has been universal. That was why it commanded the attention of people who were not followers of a particular culture."

—Presidential speech by Dr. S. Radhakrishnan at the Madras Sanskrit College, 1957.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केवल सर्वोत्कृष्ट विचार और सुन्दरतम् साहित्य का माध्यम ही नहीं रही, वरन् भारत को एक सूत्र में बाँधने का तत्त्व भी है.........मुझे अक्सर ताज्जुब होता है कि यदि हमारा राष्ट्र उपनिषद्, गीता और रामायण तथा महाभारत को भूल जाय तो यह किस प्रकार का होगा। तब यह राष्ट्र निर्मूल हो जायेगा और इसकी आधार-भूत विशेषताएँ ही समाप्त हो जायेंगी। तब भारत, भारत नहीं रह जायेगा।"

—पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा आजाद-स्मारक भाषण।

"एक शिक्षित भारतीय के जीवन में एवं उसके बौद्धिक विकास में संस्कृत का विशेष स्थान है। इसके कुछ ज्ञान के बिना वह अपनी परम्परा के मूल्य को समझ नहीं सकता, न ही इससे प्रेरणा ग्रहण कर सकता है और न ही वह भारत का सही अर्थ में प्रतिनिधित्व कर सकता है, क्योंकि वह अपने बाप-दादाओं की भूमि में विदेशी एवं अपरिचित है, क्योंकि इस भूमि का प्रत्येक मूल्य और इसकी प्रत्येक संस्था की देन है।"

—श्री क० मा० मुन्शी का संस्कृत विश्व-परिषद् के पुरी अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण।

"इस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता राष्ट्रीय एकता है। ....मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संस्कृत ने देश को एक सूत्र में बाँधा है और बाँधती रहेगी। अतः प्रशासकों, विधायकों, शिक्षाशास्त्रियों एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के सभी लोगों का यह अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है कि वे संस्कृत के अध्ययन को सुदृढ़ बनायें। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री श्री मुहम्मद करीम छागला को मैं बधाई देता हूँ जिन्होंने इस बात पर बल दिया है कि शिक्षा की दृष्टि से संस्कृत को भाषा-सूत्र का अविभाज्य अङ्ग होना चाहिए।"[1]

—श्री निजलिंगप्पा का २७ मई, १९६६ का स्वागत-भाषण।

---

1. "The need of the hour is national unity. United we stand; divided we fall. We must all therefore foster unity in all segments of national life. I need not reiterate that Sanskrit abides and will continue to abide as a great unifying force of the country. It is therefore the bounden duty of all—administrators, legislators, educationists and people in different walks of life—to do all they can to strengthen Sanskrit studies. In this connection, I would be failing in my duty, if I do not congratulate the Union Education Minister, Sri M. C. Chagla, for stressing that Sanskrit should be an integral part of our language-formula with regard to education."

—Sri S. Nijalingappa's Welcome Address on 27th May, 1966 at Bangalore Session of Sanskrit Vishwa Parishad.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"संस्कृत भारतीय विरासत एवं सभ्यता की प्रतीक है। यह केवल भाषा नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि देश के सभी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में संस्कृत-शिक्षण में प्रगति की जाय।"[1]

—श्री वी० वी० गिरि महोदय का २७ मई, १९६६ को बंगलौर में दिया गया भाषण।

"यह नहीं कहा जा सकता कि संस्कृत भाषा में सुरक्षित संस्कृति आधुनिक परिस्थितियों में अप्रासंगिक है। वेद, बुद्ध, महावीर, अशोक के उच्च विचारों ने हमें सिखाया है कि वर्गहीन समाज का निर्माण किया जाय जिसमें स्त्री-पुरुष बिना किसी भेदभाव के समानता का व्यवहार प्राप्त कर सकें।"[2]

—डॉ० राधाकृष्णन् द्वारा संस्कृत विश्व-परिषद् के अष्टमाधिवेशन में दिया गया उद्घाटन-भाषण।

"स्कूल और कालेजों के पाठ्यक्रमों में संस्कृत को उचित स्थान दिया जाना चाहिए। इस प्राचीन भाषा के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद सारी भारतीय भाषाओं में किया जाय।

साधारण जनता को भी संस्कृत साहित्य के सौंदर्य, सम्पूर्णता, महानता से परिचित होने का अवसर दिया जाय। संस्कृत ने हमारे विचारों और संस्कृति को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। उत्तर भारत की भाषाएँ संस्कृत की संतान हैं, तो दक्षिण भारत की भाषाओं का विकास इस प्राचीन भाषा की छत्रछाया में हुआ है। आज हम हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को विकसित करने के महान कार्य में

---

1. "Sanskrit is the symbol of India's heritage, culture and civilization. It is not just a language. It is thus essential that the promotion of Sanskrit learning should be extended to all schools and colleges in the country."

   —**Sri V. V. Giri's Address at Bangalore on 27th May, 1966.**

2. "It cannot be said that the culture enshrined in Sanskrit language is irrelevant to modern conditions. The higher aspects of Vedic thought, Buddha, Mahavira and Ashoka taught us to build a classless society where men and women whatever be their status, are treated alike."

   —**Dr. S. Radhakrishnan's Inaugural Address at the Eighth Session of Sanskrit Vishwa Parishad**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जुटे हैं, इस प्रयत्न के दौरान संस्कृत के विचार और सस्कृति के महान कोष से हमें सार ग्रहण करना चाहिए।''

—दकन कॉलेज स्नातकोत्तर शोध संस्थान, पूना में ३ जून, १९७६ को ऐतिहासिक सिद्धान्तों पर संस्कृत के 'विश्वकोषीय शब्दकोष' के प्रथम भाग का विमोचन करने के अवसर पर राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद का भाषण।

राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद के भाषण पर 'नवभारत टाइम्स' ने अपने ९ जून १९७६ के अंक के सम्पादकीय में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये—

''राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने फिर कहा है कि स्कूल और कालेजों में संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए, क्योंकि यह एक ऐसी भाषा है, जिसने न केवल हमारे ज्ञान-विज्ञान को आगे बढ़ाया वरन् इस देश को एक रखने में महान योग दिया। राजनीतिक अलगाव के युग में भी संस्कृत ने अलग-अलग राजनीतिक इकाइयों को जोड़े रखा। संस्कृत किसी सम्प्रदाय-विशेष की भाषा नहीं। वह प्रत्येक भारतीय की भाषा है और संस्कृत साहित्य में जनता अपने इतिहास, विचार और परम्परा के अमर स्वरूप के दर्शन करती है, केरल की गुरुवायर संस्कृत पाठशाला के ४० प्र. श. विद्यार्थी ईसाई और मुसलमान हैं।

रूस के प्रसिद्ध भारतीय विद्याविद् प्रो० बोनगार्द लेविन ने अपनी भारत-यात्रा के दौरान इस बात पर गहरा आश्चर्य प्रकट किया था कि स्कूलों में संस्कृत को अनिवार्य विषय नहीं बनाया गया। उनके मत से भारत के इतिहास को संस्कृत के ज्ञान के विना समझना कठिन है। प्रो० लेविन को सबसे अधिक दुःख इस बात से हुआ कि भारत के लोग गीता, महाभारत, योग आदि का भी अध्ययन अंग्रेजी के माध्यम से करते हैं। भारतीय स्वयं संस्कृत पढ़ कर अपने देश और इतिहास को समझने के बजाय विदेशियों के मुँह ताकते हैं कि वे अंग्रेजी में रामायण पढ़ायें, इस स्थिति को बदला जाना चाहिए। राष्ट्रपति ने शायद इसीलिए कहा है कि भारत की अपनी सब भाषाओं में संस्कृत ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद प्रकाशित किये जाने चाहिए, जिससे जनता के मन में इन ग्रन्थों को मूल रूप में पढ़ने की भावना जागे।

संस्कृत साहित्य में समाजवादी विचार को जितना आगे बढ़ाया गया, उससे आगे चलने के उद्देश्य से भी आवश्यक है कि इस भाषा और इसके साहित्य को पढ़ा जाय। कम्युनिस्ट नेता हीरेन मुखर्जी के अनुसार यह सही है कि प्रत्येक युग में तत्कालीन समाज को अपनी समस्याएँ अपने ढंग से हल करनी होंगी, किन्तु यह भी सही है कि समाजशास्त्र के क्षेत्र में ऋषियों ने जिस श्रेष्ठ ज्ञान को संस्कृत के माध्यम से लिपिबद्ध किया, उससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। आंध्र में संस्कृत के एक हरिजन विद्वान् का तो स्पष्ट मत है कि यदि हरिजनों को संस्कृत पढ़ा दी जाय तो समाज से छुआछूत बात की बात में समाप्त हो सकती है। केन्द्र सरकार भी इस बात को स्वीकार करती है, पाँचवीं योजना में संस्कृत के विकास के लिए पाँच करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी है। लेकिन, अब यह भी आवश्यक है कि संस्कृत के विद्वानों के लिए स्कूलों और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कालेजों में जगह बनायी जाय, महाराष्ट्र के संस्कृत अध्यापकों की कार्यवाही समिति के अध्यक्ष के अनुसार राज्य में पिछले तीन वर्ष में संस्कृत के ११ सौ अध्यापकों की रोजी चली गई। कई कालेजों में संस्कृत विभाग बन्द हो रहे हैं और स्कूलों के संस्कृत अध्यापकों को समय से पूर्व सेवा-निवृत्त किया जा रहा है। इस स्थिति को बदला जाना चाहिए।"

उपर्युक्त सम्मतियों को पढ़ने से प्रतीत होता है कि जो लोग संस्कृत का अध्ययन अनावश्यक समझते हैं, वे भारत को ठीक से पहचान ही नहीं पाये हैं। भारत को भारतीय लोग भूल गये थे तभी तो इसका इतना पतन हुआ। पश्चिमी विद्वानों ने संस्कृत के अध्ययन में जब अपनी रुचि दिखाई तब हम लोग भी जागे। आज भारत का नेतृत्व वर्ग भी यही अनुभव करता है कि भारत वस्तुतः 'संस्कृत भारत' है, अर्थात् भारत का जो स्वरूप संस्कृत भाषा की देन है वही वास्तविक भारत है। पश्चिमी जगत में भारत को सम्मान संस्कृत के कारण है और पश्चिमी देश आज के भारत को भी 'संस्कृत भारत' के रूप में ही समझते हैं। जब कोई भारतीय विश्वविद्यालय अपनी रजत जयन्ती या हीरक जयन्ती मनाता है तो पश्चिमी विश्वविद्यालय सामान्य रूप से भारतीय विश्वविद्यालय को संस्कृत में ही सन्देश भेजते हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व भी जब कोई भारतीय विद्वान् पश्चिमी देशों में संस्कृत के माध्यम से कुछ कहता था तो उसे सर्वाधिक आदर प्रदान किया जाता था।

अतः हम यह मानने को प्रस्तुत नहीं हैं कि संस्कृत का अध्ययन अनावश्यक है।

द्वितीय दृष्टिकोण

पाठ्यक्रम में संस्कृत के स्थान के विषय में दूसरा वर्ग उन विद्वानों का है, जो संस्कृत को अनावश्यक तो नहीं समझते, किन्तु आधुनिक विषयों को अधिक महत्त्व देते हुए संस्कृत के अध्ययन के प्रति तटस्थ या उदासीन भाव रखते हैं। वे संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में रख देना चाहते हैं; किन्तु इसके प्रचार व प्रसार के लिए कुछ भी न करने की परामर्श देते हैं। वे कहते हैं, जिनकी रुचि हो वे पढ़ें; जो न पढ़ना चाहें, उन्हें संस्कृत क्यों पढ़ाई जाय ?

इस वर्ग के विद्वानों की राय पर यदि चला जाय तो संस्कृत का अध्ययन यत्र-तत्र होता रहेगा, किन्तु व्यापक रूप में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत नहीं हो सकेगी और संस्कृत के अध्ययन का प्रसार नहीं हो सकेगा। आज संस्कृत के प्रति बड़ी उदासीनता का भाव है। कुछ स्वार्थी तत्त्व अंग्रेजी या क्षेत्रीय भाषा की आड़ में संस्कृत के विरुद्ध प्रचार करते रहते हैं। छात्रों को जब तक सही मार्ग पर लाया ही नहीं जायगा तब तक वे संस्कृत के मूल्य को किस प्रकार समझ सकेंगे ? भारत-सरकार द्वारा नियुक्त संस्कृत आयोग डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के नेतृत्व में जब तमिलनाडु गया तो आयोग के समक्ष अनेक प्राध्यापकों ने संस्कृत के विरुद्ध किये जा रहे कार्यों की ओर संकेत किया था। उन अध्यापकों ने बताया कि जब कभी संस्कृत भाषा में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रार्थना होती तो छात्रों का एक वर्ग हुल्लड़ मचाने का कार्य करता। तमिलनाडु में वहाँ के कुछ नेता छात्रों को बहकाया करते हैं।[1] ऐसी परिस्थिति में संस्कृत के प्रति उदासीनता का भाव रखना संस्कृत के विद्वानों एवं संस्कृत के अनुरागियों को अच्छा नहीं लग सकता। संस्कृत भाषा भारतीयों की जीवन भाषा है। संस्कृत विश्व-परिषद् के षष्ठाधिवेशन के अवसर पर प्रेषित अपने सन्देश में शारदापीठ के श्री शंकराचार्य ने इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं। उन्होंने लिखा है—

"संस्कृत भाषामन्तरा कापि भाषा न केवलं न समृद्धा भवत्यपितु जीवितुमेव न शक्नुयात। तथा संस्कृतभाषां विना न कोऽपि भारतीयो यथार्थभारतीयो भवितु-मर्हति। संस्कृतभाषा भारतीयानां जीवनभाषा विद्यते।"

उसी अवसर पर कॉमकोटिपीठ के श्री शंकराचार्य ने निम्नलिखित विचार लिखे थे :—

"अस्माकं संस्कृतेः मूलभूता भाषा संस्कृत-भाषा। एतत्कृतोपकारभाव एवान्याः भाषाः लोके विराजन्ते। संस्कृतभाषायां प्रकाशमानानामार्षशास्त्राणां कालिदासादि-महाकविसहितीनां चाद्यतनजीवलोकहितार्थमधीतिबोधाचरणप्रचारणैः पालनमेवास्माकं भारतदेशस्यौन्नत्यकारणम्।"

भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय एकता के प्रति जागरूक व्यक्ति संस्कृत भाषा के प्रति तटस्थ भाव नहीं रख सकते। संस्कृत को केवल पाठ्यक्रम में कहीं पर गौण स्थान देकर ही भारतीय संस्कृति के प्रति छात्रों को जागरूक नहीं बनाया जा सकता।

---

1. "As we moved among the people, in the temple and streets, in public and private meetings, we found that in Tamilnad the antipathy towards Sanskrit was confined to a section trying to make political capital out of it, and that it was strongly organized and effectively expressed. Several Sanskrit lecturers and teachers represented to us that when Sanskrit verses were sung in prayer or any Sanskrit feature was being presented in public functions in the colleges and schools, a section of the student population started jeering and booing. Such things along with certain administrative measures coming one after another have been slowly pushing Sanskrit to the wall in this part of the country. It is indeed an irony of fate that this should be the situation in a region to which the rest of India used to look up as a veritable asylum of Indian culture and traditional learning. The anxiety which the people here felt about the future of Sanskrit was clearly borne out by the fact that Madras sent the largest number of replies to our questionnaire."

—Report of the Sanskrit Commission, p. 64.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृत भाषा के द्वारा ही संस्कृति की रक्षा सम्भव है। इसी प्रकार के विचार रामकृष्ण मठ तथा मिशन के अध्यक्ष स्वामी शंकरानन्द जी ने व्यक्त किये हैं।[1]

कुछ व्यक्ति भ्रमवश संस्कृत का स्थान भारत में वैसा ही समझते हैं जैसा कि पश्चिम में लैटिन और ग्रीक का है। किन्तु लैटिन एवं ग्रीक पश्चिम के आधुनिक जीवन से उठ चुकी हैं। संस्कृत के विषय में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। संस्कृत भाषा आज भी सम्पूर्ण भारत में पंडितों के मध्य सम्पर्क भाषा (Lingua franca) बनी हुई है। हमारे प्रतिदिन के जीवन में आज भी वह सुनाई पड़ती है। गाँवों में किसान भी प्रातःकाल एक-दो संस्कृत श्लोकों का उच्चारण करता है। शहरों में रेडियो में प्रातः ही वन्दना कार्यक्रम के अन्तर्गत संस्कृत के श्लोक सुनाई पड़ जाते हैं। विद्यालयों में प्रतिदिन छात्र राष्ट्रगान करते हैं जिसमें लगभग सभी शब्द संस्कृत के हैं। हमारे राष्ट्र-चिह्न में 'सत्यमेव जयते' उपनिषद् का संस्कृत वाक्य है। हमारे देश का नाम 'भारत' है। हम 'भारतीय' हैं। इस प्रकार हम प्रतिदिन संस्कृत भाषा के सम्पर्क में आते ही रहते हैं।

जो व्यक्ति यह कहते हैं कि आधुनिक विषयों के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाय और संस्कृत के प्रति अभी ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि संस्कृत केवल धर्म-कर्म की भाषा है, वे व्यक्ति संस्कृत से बिल्कुल अपरिचित मालूम पड़ते हैं। पिछले अध्याय में हमने यह दिखाने की चेष्टा की है कि संस्कृत में अनेक विषयों का ज्ञान निहित है। अतः इस विषय में यहाँ पर अधिक न कह कर केवल दो व्यक्तियों की सम्मतियों का उल्लेख किया जायगा। डॉ० हरेकृष्ण मेहताब के अनुसार

---

1. "The revival and spread of Sanskrit culture in the present state of our country is of paramount importance. Swami Vivekananda, time and again, pointed out that Sanskrit education was essential, and that it was the only means by which Hindu society could be unified. In India culture goes with Sanskrit, and it is culture that withstands shocks and not the mere accumulation of knowledge.
Sanskrit has fascinated the scholars of many nations outside India for its beauty, literature etc. But in India, it holds a unique position, since it nourishes the very roots of our civilization. Sanskrit, therefore, must have a place in our scheme of education and social regeneration....
To my mind, it will not be a difficult task to bring about a Sanskrit Renaissance in India, if a simplified method of learning the language be devised for the benefit of our boys and girls...."

—Swami Sankaranand, President, Ramakrishna Math & Mission.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह कहना उचित नहीं है कि संस्कृत केवल धर्म और दर्शन की भाषा है। यह राज-नीति, समाज-विज्ञान एवं अन्य विषयों की भाषा है। रामायण एवं महाभारत को भी धर्म-ग्रन्थ कहना गलत है, क्योंकि उनमें राजनीति का अधिक वर्णन है।[1]

भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई के अनुसार विज्ञान ने निस्सन्देह अत्यधिक उन्नति की है और मनुष्य के ज्ञान को अत्यधिक विस्तृत किया है; किन्तु इस ज्ञान का उपयोग मनुष्य बुद्धिमत्ता के बिना नहीं कर सकेगा। भारतीय बुद्धिमत्ता अतीत के साहित्य में है। हमारा अधिकांश प्राचीन साहित्य संस्कृत में है, अतः इसका अध्ययन अत्यधिक उपयोगी रहेगा।[2]

तृतीय दृष्टिकोण

पाठ्यक्रम में संस्कृत के स्थान के विषय में तीसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो संस्कृत को अनिवार्य रूप से पढ़ाने का समर्थन करते हैं।

संस्कृत केवल प्राचीन भाषा ही नहीं है, वह आधुनिक युग की भाषा है। आज भी हजारों की संख्या में छात्र इसका अध्ययन करते हैं और संस्कृत पाठशालाओं में तो यह शिक्षा का माध्यम भी है। वाराणसी तथा दरभंगा में संस्कृत विश्वविद्यालय हैं। अन्य राज्यों में भी संस्कृत का उच्च अध्ययन होता है। राज्य-सरकारें अपने-अपने राज्यों में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना का विचार कर रही हैं। आज भी इस भाषा में पत्रिकाएँ निकलती हैं। इस दृष्टि से यह अतीत की भाषा कहकर टाली नहीं जा सकती।

---

1. "He (Dr. Mehtab) said that it was not correct to say that Sanskrit is the language of religion and philosophy only. It had literature about modern subjects like Statecraft, Sociology and many others. Similarly it is wrong to consider the Ramayana, Mahabharata etc. as religious books which had more of politics in them."

   —**Bharatiya Vidya Bhawan Bulletin, June, 1956**, p. 145.

2. "Although science and technology have made phenomenal progress and knowledge of man considerably widened, it is obvious that man will not be able to use these properly without the aid of wisdom. While each country has its own sources of wisdom, we, in India, have such a precious treasure of it in our ancient literature that it would be difficult to achieve integration of our personalities without assimilating the essence of it. As most of this ancient literature is in Sanskrit, a study of this language will be handsomely rewarded."

   —**Ibid**, pp. 68-69.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृत के अध्ययन के विषय में परामर्श देने के लिए भारत-सरकार ने डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी की अध्यक्षता में संस्कृत आयोग की स्थापना की थी, जिसने अपना प्रतिवेदन केन्द्र सरकार को यथासमय प्रस्तुत कर दिया। आयोग ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि संस्कृत की महत्ता को देखते हुए इस भाषा को माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में अनिवार्य स्थान मिलना चाहिए। इस दृष्टि से सरकार को त्रिभाषा सूत्र में परिवर्तन करना पड़ेगा और उसमें संस्कृत के अध्ययन को अनिवार्य करना होगा। माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में संस्कृत आयोग ने मातृभाषा, अंग्रेजी, राष्ट्रभाषा हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा (हिन्दी-भाषी प्रदेशों के लिए) तथा संस्कृत को अनिवार्य करने की सलाह दी है। आयोग ने माध्यमिक विद्यालयों में भाषाओं के विषय में चार प्रकार की योजनाओं पर विचार किया है। इन चारों योजनाओं का नीचे उल्लेख किया जा रहा है—

प्रथम योजना

(१) मातृभाषा (या क्षेत्रीय भाषा)

(२) अंग्रेजी (या हिन्दी या हिन्दी-भाषी प्रदेशों के लिए अन्य आधुनिक भाषा यदि दक्षिण की कोई भाषा हो, तो अधिक अच्छा है)।

(३) संस्कृत (या कोई अन्य प्राचीन भाषा)।

द्वितीय योजना

(१) मातृभाषा (या क्षेत्रीय भाषा)।

(२) अंग्रेजी।

(३) हिन्दी (या अन्य भारतीय भाषा)।

(४) संस्कृत।

तृतीय योजना

द्वितीय योजना की ही भाँति किन्तु संस्कृत में परीक्षा न हो और उसका परीक्षाफल पर कोई प्रभाव न पड़े, किन्तु विशेष योग्यता एवं छात्रवृत्ति के लिए आधार हो। आयोग ने इस योजना की संस्तुति नहीं की, क्योंकि परीक्षा का विषय न होने के कारण संस्कृत उपेक्षित हो जायेगी।

चतुर्थ योजना

द्वितीय योजना में उल्लिखित प्रथम तीन भाषाएँ। संस्कृत के पाठ्यक्रम को मातृभाषा या हिन्दी या दोनों के पाठ्यक्रम के साथ संयुक्त रूप से अनिवार्यतः पढ़ाया जाय और इस प्रकार के पाठ्यक्रम की अवधि पाँच वर्ष से कम न हो। उत्तरोत्तर संस्कृत पर बल अधिक दिया जाय और इसमें पृथक् रूप से उत्तीर्ण होना अनिवार्य हो।

संस्कृत आयोग ने प्रथम योजना को सर्वोत्तम माना है। द्वितीय योजना को प्राथमिकता की दृष्टि से द्वितीय स्थान और चतुर्थ योजना को तृतीय स्थान दिया है। अन्य विकल्पों का भी आयोग ने उल्लेख किया है, किन्तु उनकी संस्तुति नहीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की। भाषाओं के शिक्षण का प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए आयोग ने लिखा है कि—

प्रथम पाँच वर्ष तक केवल मातृभाषा का शिक्षण हो। इस प्रारम्भिक स्तर पर सुभाषित श्लोकों को भी पढ़ाया जाय। कक्षा ६ में अनिवार्य अंग्रेजी प्रारम्भ की जाय। सुभाषितों का यहाँ भी अध्ययन कराया जाय। कक्षा ७ में संस्कृत को प्रारम्भ किया जाय और कक्षा ८ में हिन्दी को।

पाठ्यक्रम में संस्कृत को अनिवार्य बनाने का परामर्श देते हुए आयोग लिखता है—

"विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की सामान्य शिक्षा की योजना में संस्कृत के अध्ययन का समुचित प्रबन्ध करने के लिए आयोग सरकार से आग्रह करता है; अन्यथा संस्कृत शिक्षा का जो प्रसार वर्तमान काल में हुआ है, वह अभीष्ट रूप में पिछड़ जायगा।

आयोग की संस्तुति है कि यह प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए जिससे कि भारतीय नवयुवक छात्र, अनिवार्य अपवादों को छोड़कर, स्वतः ही संस्कृत पढ़ने लगें।

आयोग संस्तुति करता है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश के सभी विद्यालयों में संस्कृत के शिक्षक का प्रवन्ध अनिवार्य हो और उसमें संस्कृत में कम छात्रों का या अर्थाभाव का तर्क स्वीकार न किया जाय।

आयोग यह भी संस्तुति करता है कि विषयों के वर्गों को इस प्रकार बनाया जाय कि जो छात्र संस्कृत का अध्ययन करना चाहें, वे इससे वंचित न रखे जायँ।"[1]

---

1. The Commission urges upon the Government the need for making an adequate provision for the study of Sanskrit in the scheme of general education in schools and colleges, as otherwise the liberalization of Sanskrit Education which has taken place in modern times will receive an undesirable set-back.

The Commission recommends that this provision should be such that in some way or other, the young Indian pupils, with such exceptions as may be necessary, would automatically study Sanskrit.

That for this purpose, compulsory provision for the teaching of Sanskrit unaffected by arguments of economy or number of students taking Sanskrit should be made in the schools in the country.

And that arrangements of groups of subjects should be so designed as not to debar such students as want to study Sanskrit from doing so.

—Refer to Chapter III, para 49, and Chapter V, paras 15, 32 and 33 of the Report of Sanskrit Commission.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृत आयोग में निम्नलिखित सदस्य थे—

१. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी (अध्यक्ष, विधान परिषद्, पश्चिमी बंगाल, कलकत्ता), अध्यक्ष।
२. श्री जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे (निदेशक, भारतीय विद्या भवन, बम्बई), सदस्य।
३. डॉ० सुशीलकुमार डे (संस्कृत प्राध्यापक, गवेषण विभाग, कलकत्ता संस्कृत महाविद्यालय। अब संस्कृत प्राध्यापक, यादवपुर विश्वविद्यालय), सदस्य।
४. डॉ० ति० रा० वेङ्कटाचलमूर्ति ('सयाजीराव-गायकवाड'—भारतीय-सभ्यता-संस्कृति प्राध्यापक, वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय), सदस्य।
५. डॉ० वे० राघवन् (संस्कृत प्राध्यापक, मद्रास विश्वविद्यालय), सदस्य।
६. पंडितराज वे० स० रामचन्द्र शास्त्री (शंकर मठ, बंगलौर), सदस्य।
७. श्री विश्वबन्धु शास्त्री (निदेशक, विश्वेश्वरानन्द वैदिक अनुसन्धान संस्थान, होशियारपुर), सदस्य।
८. डॉ० रामचन्द्र नारायणसुत दाण्डेकर (संस्कृत-प्राध्यापक, पूना विश्व-विद्यालय), सदस्य-सचिव।

उपर्युक्त सभी विद्वानों ने एकमत होकर संस्कृत को अनिवार्य करने की संस्तुति की है।

उपर्युक्त विद्वानों (अर्थात् संस्कृत आयोग) के अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानों के मतों का इस स्थान पर उल्लेख करना आवश्यक समझ पड़ता है।

श्री सुब्रह्मण्यदेशिकाचार्य, धर्मपुर ने संस्कृत विश्व-परिषद् के पुरी अधिवेशन के अवसर पर अपने सन्देश में कहा है—

"परमेश्वरः संस्कृतभाषारूपी मधुरद्राविडभाषा-रूपी वेदचतुष्टयरूपी च जातः इति अनुभूतिमतां महतां वचनम्। संस्कृतभाषा उत्तरभारते हिन्दी व्यवहरतां दक्षिण भारते द्राविडभाषां व्यवहरतां च मातृभूता। द्राविडकुलोत्पन्नापि आन्ध्रादीनां भूयसा संस्कृतपद मिश्रणं दृश्यते। अतो भारतदेशे सर्वत्र प्रथमतोऽभ्यसनीयस्व-मातृ-भाषायाः राष्ट्रभाषाश्च संस्कृताध्ययनं महतीमुपकृतिमेव जनयेत्। नाणुमात्रेणापि बाधाकरम्। अतः पंचमकक्षामारभ्य अष्टमकक्षापर्यंतः नियमतः पठनीयं संस्कृतम्।"

लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर संस्कृत को माध्यमिक विद्यालयों में अनिवार्य बनाने के पक्ष में थे।

संस्कृत विश्व-परिषद् के षष्ठाधिवेशन में स्वागत समिति के अध्यक्ष डॉ० हरेकृष्ण मेहताब ने अपने भाषण में कहा—

"लेकिन मैं विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में संस्कृत को अनिवार्य बनाने के विचार से सहमत हूँ। मुझे पूर्ण निश्चय है कि जब तक कोई व्यक्ति संस्कृत को अच्छी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तरह नहीं जानता, वह अपनी क्षेत्रीय भाषा में भी निपुण नहीं हो सकता। यह संस्कृत ही है जिसने युगों से भारत को सांस्कृतिक एकता में बाँध रखा है।"[1]

कलकत्ता हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री रामप्रसाद मुखर्जी ने ४ अप्रैल, १९५९ को पुरी में अपने ओजस्वी भाषण में कहा—

"केवल ३०-४० वर्ष पहले भारत में संस्कृत अनिवार्य थी और हमें देखना चाहिए कि आज भी वह हमारे प्रयत्नों से अनिवार्य बन जाय। यही नहीं, इसे अब और सुदृढ़ स्थान मिलना चाहिए, क्योंकि अब हम स्वतन्त्र हैं और हमें देश का नव-सृजन करना है।"[2]

संस्कृत आयोग की इस संस्तुति पर कि संस्कृत अनिवार्य बनाई जाय, माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने अपनी असहमति प्रकट की। परिषद् की इस असहमति पर अपनी टिप्पणी करते हुए स्वर्गीय डॉ० कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुंशी ने कहा था कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है और संस्कृत को हिन्दी या क्षेत्रीय भाषा के विकल्प के रूप में रखना मूर्खता है।[3]

भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत त्रिभाषा-सूत्र में इस समय संस्कृत का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। सरकार ने जिस भाषा-सूत्र को मान्यता दी है, वह निम्नलिखित है —

(१) अंग्रेजी।
(२) हिन्दी।
(३) मातृभाषा अथवा अन्य आधुनिक भारतीय भाषा।

---

1. "But I agree to the view that Sanskrit should be compulsory in the schools and colleges. I am convinced that unless one knows Sanskrit well, one will not be proficient in one's own regional language also. It is the Sanskrit literature which has been able to keep India together culturally for ages."
2. "Only 30 or 40 years ago Sanskrit was compulsory in India and we should see that again it is made compulsory by our efforts. Not only this, it should be in a stronger position because we have now become free and have to reconstruct our country."
3. "The view expressed by the Board of Secondary Education disapproving the recommendations of the Sanskrit Commission that Sanskrit should be accepted as one of the compulsory languages at the secondary stage of Education, is highly to be regretted. It is absurd to treat Sanskrit as an optional language to Hindi or any regional language; that is the surest way to kill Sanskrit and dwarf other languages."

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहा जाता है कि यह भाषा-सूत्र देश की परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है। कांग्रेस संस्था ने भी इसी भाषा-योजना पर अपनी मुहर लगायी है। जून, १९६६ में कोठारी आयोग ने भी अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया है। कोठारी शिक्षा-आयोग ने भाषा-समस्या का समाधान निकालने के लिए निम्नलिखित भाषा-योजना प्रस्तुत की है—

(क) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।

(ख) संघ की राजभाषा या सहभाषा।

(ग) एक आधुनिक भारतीय या यूरोपीय भाषा जो (क) व (ख) से तथा शिक्षा के माध्यम में भिन्न हो।

कोठारी आयोग ने भी अपनी संस्तुति में संस्कृत पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। उसे अरबी के विकल्प में वैकल्पिक भाषा का ही स्थान दिया है।

उपर्युक्त त्रिभाषा-योजना चाहे जितनी अच्छी हो, किन्तु यदि इसमें संस्कृत को कहीं पर स्थान न दिया गया तो बड़ी ही अदूरदर्शिता होगी। इसीलिए भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री श्री छागला ने संस्कृत को भाषा-सूत्र का अविभाज्य अंग बनाने का संकेत दिया था। वर्तमान स्थिति में संशोधन करने का परामर्श देते हुए आन्ध्र प्रदेश के भूतपूर्व राज्यप्राल श्री पट्टम थानु पिल्लई कहते हैं।

"यदि त्रिभाषा-सूत्र संस्कृत के विकास में बाधक हो तो यह बड़े दुःख की बात है। इस सूत्र को इस प्रकार संशोधित करना चाहिए कि इसमें संस्कृत को भी सम्मिलित कर लिया जाय।"[1]

अभीष्ट दृष्टिकोण

पाठ्यक्रम में संस्कृत के स्थान के विषय में प्रचलित तीनों मतों का उल्लेख किया जा चुका है। इनमें से प्रथम मत में कोई तथ्य नहीं दिखाई पड़ता, अतः उसके विषय में अब कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

जहाँ तक तृतीय मत का प्रश्न है, इसमें कोई हानि नहीं है कि संस्कृत को अनिवार्य बना दिया जाय; किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में यह व्यावहारिक नहीं समझ पड़ता। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है, अतः हिन्दी को तो अनिवार्य रूप से सभी को पढ़ना ही होगा। मातृभाषा अनिवार्य रहेगी ही। अंग्रेजी अपने ऐतिहासिक कारणों से भारत से शीघ्र विदा नहीं होगी। ऐसी परिस्थितियों में चार-चार भाषाओं का छात्रों के मस्तिष्क पर बोझ डालना अधिक उपयुक्त नहीं समझ पड़ता।

---

1. "If the three-language formula hampers the growth or Sanskrit, it will be a tragedy. The formula should be relaxed so as to include Sanskrit also in its fold."

—**Sri Pattom A. Thanu Pallai's Address at the Eighth Session of Sanskrit Parishad on May 27, 1966 at Banglore.**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूसरे मत में दोष यह है कि इस दृष्टिकोण वाले लोग संस्कृत के प्रचार के लिए कुछ करना नहीं चाहते। दूसरे मत में अच्छाई यह है कि इसमें संस्कृत को वैकल्पिक विषय के रूप में स्थान दिया गया है।

मेरी समझ में माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में संस्कृत का स्थान दो रूपों में होना चाहिए : एक तो अनिवार्य संस्कृत, दूसरे वैकल्पिक संस्कृत। अनिवार्य संस्कृत में साहित्य पर विशेष बल न देकर भाषा पर बल हो जिससे छात्र यह सीख सकें कि संस्कृत के आधार पर अपनी मातृभाषा में नये-नये शब्दों की रचना किस प्रकार की जा सकती है। यह अनिवार्य संस्कृत मातृभाषा के साथ एक सम्बद्ध पाठ्यक्रम में रह सकती है, किन्तु शर्त यह हो कि संस्कृत पर एक पृथक् प्रश्न-पत्र होगा और उसके अङ्क परीक्षाफल पर प्रभाव डालेंगे। उस प्रश्न-पत्र में पृथक् रूप से उत्तीर्ण होना अनिवार्य रहे। इसमें साहित्य के रूप में सुभाषितों का अध्यापन किया जाय और कुछ प्रमुख संस्कृत साहित्यकारों की प्रमुख रचनाओं का मातृभाषा के माध्यम से परिचित कराया जाय।

किन्तु अनिवार्य संस्कृत के इसी संक्षिप्त प्रबन्ध से सन्तुष्ट न हुआ जाय। पाठ्यक्रम में संस्कृत को एक स्वतन्त्र, पृथक् एवं वैकल्पिक स्थान दिया जाय। वैकल्पिक रूप में संस्कृत अध्यापन का सभी विद्यालयों में प्रबन्ध होना चाहिए। कुछ विद्यालयों में संस्कृत को ऐसे विषयों के साथ विकल्प के रूप में दिया जाता है कि छात्रों को विवश होकर संस्कृत को छोड़ना पड़ता है। विज्ञान, कला, वाणिज्य, कृषि सभी वर्गों के छात्र यदि संस्कृत पढ़ना चाहें तो उनके लिए इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए। वैकल्पिक संस्कृत में संस्कृत भाषा और साहित्य का उच्च अध्ययन होगा।

वस्तुतः संस्कृत भाषा और साहित्य के जिस गौरव की प्रायः चर्चा की जाती है, उसे वैकल्पिक रूप से संस्कृत को पढ़ने वाले छात्र ही पढ़ सकते हैं। अतः संस्कृत की उन्नति की दृष्टि से भी इसका वैकल्पिक स्थान ही अधिक उपयुक्त रहेगा। फिर संस्कृत इतनी सरल नहीं है कि इसमें छात्र अपनी मनचाही चला सकें। इसके अध्ययन में तो छात्रों को दत्तचित होना पड़ेगा। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह कठिन समझ पड़ता है कि सभी छात्र इतने ध्यान, इतनी लगन, इतनी जिज्ञासा एवं इतने अनुराग से संस्कृत को अपना सकेंगे। किन्तु जो छात्र इसकी ओर सम्मान प्रदर्शित करें, उन्हें इसके उच्च ज्ञान से वंचित भी नहीं किया जाना चाहिए।

जहाँ तक भारत को एकता के सूत्र में बाँधने एवं अपनी सांस्कृतिक परम्परा को समझने की बात है, यह अनिवार्य संस्कृत के प्रवन्ध से प्राप्त हो सकती है। अनिवार्य संस्कृत के स्वरूप के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४ संस्कृत-शिक्षण के कतिपय सामान्य सिद्धान्त

आज मनोविज्ञान की दिनानुदिन उन्नति हो रही है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में भाषा से सम्बद्ध अनेक अनुसन्धान हो रहे हैं। इन अनुसन्धानों से प्राप्त कुछ निष्कर्ष अव्याप्ति दोष से युक्त हैं किन्तु कुछ निष्कर्ष उत्तम हैं और संस्कृत-शिक्षण में भी उनका उपयोग किया जा सकता है। इस अध्याय में कुछ ऐसे सिद्धान्तों का उल्लेख मिलेगा। इसके साथ ही इस अध्याय में सामान्य सिद्धान्तों की चर्चा करते समय इस तथ्य को भुलाया नहीं जाएगा कि भाषा के दो पक्ष होते हैं—शारीरिक और मानसिक। शारीरिक पक्ष का सम्बन्ध ध्वनि से है और मानसिक पक्ष का सम्बन्ध विचारों से। भाषा के दोनों पक्षों पर सदा दृष्टि रखनी है। भाषा समाज द्वारा अर्जित होती है और इस अर्जित सम्पत्ति की रक्षा का भार भी समाज पर ही होता है। भाषा को एक व्यावहारिक प्रक्रिया कहा गया है जो विभिन्न रूप धारण करती हुई सतत प्रवहमान रहती है। किसी भी भाषा के ज्ञान से तत्कालीन समाज का भौतिक तथा आर्थिक ज्ञान भी प्राप्त होता है फिर, संस्कृत में तो इस प्रकार के ज्ञान का बाहुल्य है। संस्कृत भाषा की कथा भारतीय संस्कृति के विकास की कथा है। इस भाषा पर अधिकार प्राप्त करने में निम्नलिखित सिद्धान्त सहायक सिद्ध होंगे।

स्वाभाविकता का सिद्धान्त

भाषा एक जन्मजात प्रवृत्ति है। भाषा सीखने की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। बच्चा भाषा सीखने का इच्छुक होता है। शिशुकाल में ही यदि संस्कृत भाषा का शुद्ध ज्ञान देने का प्रयास किया जाए तो अधिक अच्छा रहेगा। इस काल में बालक किसी भी भाषा को शीघ्र सीख सकता है। संस्कृत भाषा का शिक्षण देने के लिये स्कूल में इस प्रकार का वातावरण उपस्थित किया जाए जिससे छात्र अनायास ही संस्कृत भाषा के प्रति आकृष्ट हो सकें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृत-शिक्षण के लिए स्कूल में इन बातों को अपनाया जा सकता है—

१. अध्यापकों को चाहिए कि वे संस्कृत के श्लोकों का छात्रों से गायन करायें।
२. अध्यापकों को स्वयं संस्कृत श्लोकों का सस्वर पाठ करने में कुशल होना चाहिए।
३. कक्षा के बाहर या अन्दर अध्यापक यथासंभव सरल संस्कृत में ही वार्त्तालाप करें।
४. छात्रों को भी सरल संस्कृत में बोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

क्रियाशीलन और अभ्यास का सिद्धान्त

भाषा एक कला है, विज्ञान नहीं। प्रत्येक कला में अभ्यास की आवश्यकता होती है। संस्कृत भाषा में भी अभ्यास तथा पुनरावृत्ति की आवश्यकता होती है। संस्कृत भाषा की शिक्षा देने के लिए बोलने, पढ़ने तथा लिखने में अभ्यास कराया जाना आवश्यक है।

संस्कृत-शिक्षण के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त अपनाये जा सकते हैं :—

१. छात्रों को कठिन ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण सहित वाचन करने का अभ्यास कराना।
२. पाठगत शब्दों एवं कठिन वाक्यों के उच्चारण का अभ्यास सिखाना।
३. संस्कृत की उक्तियों एवं मुहावरों का ज्ञान कराना।
४. संस्कृत व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों को शुद्ध करना।
५. अक्षर विन्यास सम्बन्धी अशुद्धियों को शुद्ध करने का अभ्यास कराना।
६. संस्कृत में अपने भावों को अभिव्यक्त करना।
७. संस्कृत के पद्य खण्डों एवं गद्य खण्डों को शुद्ध उच्चारण सहित पढ़ने का अभ्यास कराना।

रुचि का सिद्धान्त

संस्कृत भाषा का शिक्षण देने के लिए रुचि के सिद्धान्त को भी अपनाया जा सकता है। जब तक छात्र में संस्कृत भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न नहीं होगी तब तक वह संस्कृत भाषा को सीख नहीं सकता। रुचि उत्पन्न करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों को अपनाया जा सकता है :—

१. संस्कृत का पाठ पढ़ाने से पहले छात्रों से पूर्व-ज्ञान सम्बन्धी प्रश्न पूछना।
२. दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग करना।
३. पूर्व-ज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों द्वारा उनमें रुचि उत्पन्न करना। संस्कृत के कठिन पाठों की सरल भूमिका प्रस्तुत करना।
४. संस्कृत के श्लोकों का गायन कराना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५. नीरस विषयों को सरस बनाना भी रुचि के सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है।
६. 'खेल विधि' को भी अपनाया जा सकता है।
७. चित्रों इत्यादि की सहायता से संस्कृत कहानियों का ज्ञान कराना।
८. छात्रों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने से भी उनमें संस्कृत भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।
९. पुरस्कार तथा दण्ड को प्रोत्साहन देने से भी संस्कृत भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।
१०. संस्कृत गद्यों एवं पद्यों की सरल भाषा में व्याख्या करना।

स्वतन्त्रता एवं वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धान्त

भाषा पर अधिकार करने के लिए कक्षा, विद्यालय एवं परिवार में घुटनपूर्ण वातावरण नहीं होना चाहिए। स्वतन्त्र वातावरण में छात्र की जिज्ञासा तीव्र हो जाती है और वह आत्म-प्रकाशन की ओर उन्मुख होता है। वार्त्तालाप, चर्चा, पत्र-व्यवहार, वाद-विवाद आदि के माध्यम से बालक आत्मप्रकाशन करता है और इसी प्रकार वह भाषा पर अधिकार करने की ओर उन्मुख होता है। स्वतन्त्र वातावरण में ही वह संस्कृत के टूटे-फूटे वाक्य बोलना प्रारम्भ करता है।

स्वतन्त्र वातावरण में ही वैयक्तिक भिन्नता पर भी ध्यान दिया जा सकता है। मनोविज्ञान हमें बताता है कि शिशुओं में योग्यता, रुचि, प्रवृत्ति, अभिवृत्ति, शारीरिक क्षमता, संवेगात्मकता आदि के आधार पर भिन्नता होती है। कक्षा में जब अध्यापक पढ़ाता है तो वह सभी बालकों को समान समझकर शिक्षा देता है। किन्तु भाषा एक कौशल है और इस पर अधिकार करना बालक की व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर सम्भव है। कोई बालक भाषा पर शीघ्र अधिकार कर लेता है तो कोई बहुत विलम्ब में भाषा सीख पाता है। भाषा-योग्यता सब में बराबर नहीं होती है। भाषा की एकसूझ, भाषा-बारीकी की समझ, भाषा-अभ्यास की उत्कण्ठा एवं भाषा-प्रकृति की जिज्ञासा सबमें समान नहीं होती। अतः अध्यापक को वैयक्तिक भिन्नता के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर शिक्षा देनी चाहिए।

व्यक्तिगत भिन्नता की ओर ध्यान तब ठीक प्रकार से दिया जा सकता है जबकि बालक को भाषा सम्बन्धी अभ्यास के लिए स्वतन्त्र वातावरण प्रदान किया जाए। कक्षा के अन्दर तथा घर पर यदि दमनपूर्ण वातावरण रहता है तो भाषा-ज्ञान के अर्जन में बाधा उपस्थित होती है।

प्रयत्न का सिद्धान्त

संस्कृत भाषा एक जटिल एवं सूक्ष्म प्रक्रिया है अतः इसमें सीखने के लिए प्रयास की आवश्यकता है। भाषा का अध्ययन तपश्चर्या है। इसके अध्ययन में श्रम, साधना एवं अत्यधिक अभ्यास की आवश्यकता है, तब कहीं जाकर भाषा पर अधिकार किया जा सकता है। एक-एक वर्ण, शब्द, एवं वाक्य को जानना पड़ता है और ठीक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से जानना पड़ता है। यदि अच्छी तरह से एक शब्द को भी जानना है तो कड़े श्रम की आवश्यकता है। एक वर्ण या शब्द को ठीक से जान लेना कितना उपयोगी है यह तो पतंजलि के इसी कथन से ज्ञात हो जाता है कि **"एको शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति।"** आलंकारिक एवं कलात्मक भाषा प्रयत्न द्वारा सीखी जाती है। श्रुतिलेख, वाक्य रचना, सस्वर पठन, अनुवाद जैसे कार्यों में प्रयत्न की आवश्यकता पड़ती है। भाषा की शुद्धता के लिए भी प्रयत्न करना पड़ता है।

बाल्यावस्था के महत्त्व का सिद्धान्त

भाषा शिक्षण की दृष्टि से शैशव और बाल्यावस्था का विशेष महत्त्व है। ज्यों-ज्यों बालक बड़े होते जाते हैं, उनकी भाषा सीखने की शक्ति मन्द होती जाती है। प्रारम्भिक अवस्था में यह शक्ति प्रचुर मात्रा में होती है। इस दृष्टि से बाल्यावस्था का विशेष महत्त्व है। संस्कृत की शिक्षा भारतीय विद्यालयों में द्वितीय भाषा के रूप में दी जाती है। इसका शिक्षण कहीं-कहीं पर नवम कक्षा से प्रारम्भ होता है। नवीं कक्षा तक संस्कृत-शिक्षण को स्थगित रखना ठीक नहीं है। चतुर्थ, पंचम अथवा कुछ विशेष परिस्थितियों में षष्ठ कक्षा से संस्कृत का शिक्षण अवश्य प्रारम्भ कर दिया जाना चाहिए।

शिक्षा के समय अध्यापक को बालक के वातावरण को महत्त्व देना चाहिए। शब्द भण्डार बढ़ाते समय बालक के शरीर, घर, गाँव आदि सम्बद्ध शब्द आने चाहिए। बालक को महत्त्व देकर यदि शिक्षक अध्यापन करेगा तो बालक संस्कृत के अध्ययन में रुचि लेगा और वह भाषायी कौशलों पर अधिकार कर सकेगा।

चयन एवं विभाजन का सिद्धान्त

भाषा शिक्षण के अनेक उद्देश्य हैं। कुछ विद्वान् संस्कृत में अभिव्यक्ति की क्षमता को संस्कृत-शिक्षण का सर्वोच्च उद्देश्य स्वीकार करते हैं तो कुछ भावग्रहण को महत्त्व देना चाहते हैं। कुछ की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का अध्ययन करके उसे मातृ-भाषा में जनशिक्षार्थ अनूदित करना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। सभी उद्देश्यों एवं सभी प्रकार के व्यवहार-परिवर्तनों को एक साथ लेकर शिक्षा नहीं दी जा सकती। इनमें से किस उद्देश्य को लिया जाए? इस उद्देश्य की प्राप्ति कब की जाए? किसे पहले लिया जाए और किसे बाद में? इन प्रश्नों का उत्तर आवश्यक हो? यही चयन का सिद्धान्त है। यह चुनाव महत्त्वपूर्ण होता है।

उद्देश्यों का चुनाव ही पर्याप्त नहीं है। उद्देश्य का चयन कर लेने के बाद उक्त उद्देश्य के उपयुक्त पाठ्य-सामग्री को विभाजित कर लेना चाहिए। यह विभाजन का सिद्धान्त है। किसी उद्देश्य के लिए कौन-सी सामग्री उपयुक्त है? कौन-से पाठ्य-बिन्दु हों? क्या क्रियाएँ हों? पाठ को कितनी अन्वितियों में बाँटा जाए? इन प्रश्नों पर विचार करना बहुत आवश्यक है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुकरण एवं स्वयं संशोधन का सिद्धान्त

बालक अनुकरणशील होता है। भाषा-शिक्षा में इस प्रवृत्ति का उपयोग उपयोगी होगा। वर्णों का उच्चारण, शब्द-प्रयोग, वाक्य-योजना अनुकरण से शीघ्र सीखे जाते हैं। शिक्षक की भाषा का अनुकरण प्रायः होता है अतः शिक्षक को शुद्ध भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

यदि बालक पहले अशुद्ध बोलता है तो वह अनुकरण के आधार पर स्वयं संशोधन कर लेता है और शुद्ध बोलने लगता है। ध्वनियों, शब्दों एवं वाक्यों की त्रुटियों को बालक स्वयं संशोधित करता चलता है। अतः इस स्वयं संशोधन की प्रवृत्ति का लाभ उठाना चाहिए और भाषा सीखते समय छात्रों को अनुकरण एवं संशोधन के अवसर उपलब्ध होने चाहिए।

मौखिक प्रवचन का सिद्धान्त

मनुष्य पहले भाषा के मौखिक रूप को ही जानता है अतः मौखिक कार्य द्वारा ही भाषा-शिक्षण का प्रारम्भ करना चाहिए। द्वितीय भाषा के रूप में तो मौखिक कार्य द्वारा भाषा सिखाना अधिक मनोवैज्ञानिक है। इस सिद्धान्त के शिक्षण में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं :—

१. मनुष्य सर्वप्रथम श्रवणेन्द्रिय द्वारा ध्वनियों को सुनकर ग्रहण करता है। अतः मौखिक कार्य पर बल देना चाहिए।
२. श्रवण-स्मृति प्रायः नेत्र-स्मृति की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होती है।
३. बालक भाषा के मौखिक रूप को ही प्रथमतः जानता है अतः आरम्भिक अवस्था में मौखिक कार्य के रूप में ऐसा कार्यक्रम प्रारम्भ करना चाहिए जिससे कि बालक व्यावहारिक शब्दावली तथा मुहावरे सीख सके।
४. मौखिक कार्य द्वारा छात्रों को सक्रिय रखा जाता है। वह निष्क्रिय श्रोता के समान सुनता ही नहीं, अपने भाव मौखिक रूप में अभिव्यक्त भी करता है।
५. मौखिक कार्य द्वारा उच्चारण में शुद्धता आती है। उच्चारण शुद्ध हो तो लिखित कार्य में अशुद्धियाँ नहीं होतीं।
६. मौखिक कार्य में अभ्यास द्वारा ही छात्र व्याकरण तथा अनुवाद के कठिन नियमों को रटने से बच जाता है तथा रोचक विधि से ज्ञान प्राप्त करता है।
७. लिखित कार्य का आधार मौखिक अभिव्यक्ति है अतः लिखित कार्य से पूर्व मौखिक कार्य करवाना चाहिए। इस दृष्टि से संस्कृत में प्रारम्भिक अवस्था में वार्तालाप आदि पर ध्यान देना चाहिए।
८. मौखिक कार्य द्वारा सीखा हुआ ज्ञान चिरस्थायी रहता है।

४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिक्षण-सूत्रों का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त में शिक्षण-सूत्र हैं। शिक्षण-सूत्रों पर प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने भी बल दिया था। संस्कृत-शिक्षण में निम्नलिखित सूत्र विशेष उपयोगी हैं :—

१. ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षण
२. विश्लेषण से संश्लेषण की ओर
३. पूर्ण से अंश की ओर
४. अनिश्चित से निश्चित की ओर
५. सरल से कठिन की ओर
६. ज्ञात से अज्ञात की ओर
७. मनोवैज्ञानिक से तर्कपरक की ओर
८. स्थूल से सूक्ष्म की ओर
९. विशेष से सामान्य की ओर
१०. आगमन से निगमन की ओर
११. प्रकृति का अनुसरण

इन सभी सूत्रों का तात्पर्य यह है कि छात्रों को मनोवैज्ञानिक शिक्षण-सूत्रों को ध्यान में रखकर ज्ञान देना चाहिए। इससे छात्र सीखने में रुचि लेते हैं। पहले उन्हें ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मौखिक कार्य का अभ्यास करना चाहिए। ज्ञात विषय से अज्ञात की ओर बढ़ने से वह पूर्व ज्ञान का नवीन ज्ञान के साथ सम्बन्ध स्थापित कर नवीन अनुभव प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। इन शिक्षण-सूत्रों[1] द्वारा संस्कृत भाषा को उचित अनुपात और क्रम में सिखाया जा सकता है। छात्रों को संस्कृत सीखने में स्वाभाविक रुचि उत्पन्न हो सकेगी और प्रभावशाली ढंग से संस्कृत भाषा को सीखकर अभ्यास और व्यवहार द्वारा दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

संस्कृत सिखाने में उपर्युक्त सामान्य सिद्धान्त बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। छात्रों को स्वाभाविक ढंग से सीखने पर छात्र अभ्यास करने में रुचि लेते हैं। हमारे विद्यालयों में संस्कृत को अन्य भाषा के रूप में सिखाया जाता है अतः मौखिक प्रवचन का सिद्धान्त अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। इन सामान्य सिद्धान्तों द्वारा सीखकर छात्र संस्कृत में दक्षता प्राप्त करते हैं।

संस्कृत-शिक्षण को प्राचीन प्रणाली सर्वथा त्याज्य नहीं

संस्कृत-शिक्षण का यह भी एक आवश्यक सिद्धान्त है जिसे आत्मसात् करने की आवश्यकता है। प्रायः कुछ लोग कह बैठते हैं कि पाठशाला पद्धति हानिकर, अनुपयुक्त, अमनोवैज्ञानिक एवं सर्वथा त्याज्य है। इस विषय में कुछ कहने के पूर्व

---

१. इन शिक्षण-सूत्रों की विस्तृत व्याख्या के लिए देखिए—लेखक की पुस्तक "शिक्षा के मूल सिद्धान्त" (तृतीय संस्करण), प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इससे परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। पाठशाला-पद्धति से परिचय प्राप्त करने के उपरान्त पाठक स्वयं कुछ निष्कर्ष निकाल लेंगे।

संस्कृत-शिक्षण की प्राचीन पद्धतियों के रूप में हमारे समक्ष पाठशाला प्रणाली आती है। यह प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति का प्रतिनिधित्व करती है। किन्तु समय के साथ-साथ इसके लाभदायक और उपयोगी गुणों का लोप होता गया। परिणाम-स्वरूप नवीन पद्धतियों के रूप में हमारे समक्ष प्रत्यक्ष विधि तथा पाठ्य-पुस्तक आदि प्रणालियाँ प्रचलित हुईं। प्राचीन पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

१. **भाषा पर पूर्णाधिकार**—इस प्रणाली द्वारा छात्रों को समास चक्र, शब्द एवं धातुरूपावलि, अमरकोष, लघु सिद्धान्त कौमुदी, पाणिनीय अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि का ज्ञान दिया जाता था। अमरकोष द्वारा शब्दों की व्याख्या होती थी। समास चक्र में सभी संज्ञाओं के रूप होते थे। लघु सिद्धान्त कौमुदी आदि व्याकरण ग्रन्थों को पढ़ने पर छात्रों का संस्कृत भाषा पर पूर्णाधिकार हो जाता था। वह अपने भावों को संस्कृत में मौखिक एवं लिखित रूप में अभिव्यक्त कर सकते थ तथा दूसरों के विचार लिखित एवं मौखिक रूप या पठन द्वारा ग्रहण करते थे।

२. **आध्यात्मिक वातावरण**—छात्रों को संस्कृतमय एवं आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त होता था। छात्र व्याकण के नियम एवं सूत्रों को रटते थे। उच्च कक्षाओं में इस प्रणाली द्वारा संस्कृत भाषा को प्रभावशाली ढंग में सीखा जा सकता था। न्याय, सांख्य, योग, वेदान्त आदि के अध्ययन द्वारा उनमें आध्यात्मिक भावना का विकास होता था।

३. **स्मरण-शक्ति में वृद्धि**—छात्र लघु सिद्धान्त कौमुदी, अष्टाध्यायी आदि के नियम एवं सूत्रों को स्मरण करते थे। इस प्रकार से उनमें स्मरण-शक्ति का विकास होता था।

४. **प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न करने में सहायक**—इस प्रणाली द्वारा ज्ञान को हृदयंगम कराया जाता था जिसके लिए शास्त्रार्थ आदि विषयों का ज्ञान दिया जाता था। परिणामस्वरूप अनेक प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न हुए। इस प्रणाली द्वारा अध्ययन में रुचि भी उत्पन्न होती थी। यद्यपि यह प्रारम्भिक अवस्था में उपयोगी नहीं थी किन्तु उच्च स्तर पर तो इसके द्वारा संस्कृत भाषा उपयोगी ढंग से पढ़ाई जा सकती थी।

५. **संस्कृत वातावरण द्वारा संस्कृत भाषा का ज्ञान**—इस प्रणाली में अनुवाद तथा मातृभाषा का प्रयोग वर्जित था। अतः छात्रों को संस्कृतमय वातावरण दिया जाता था। परिणामस्वरूप छात्रों को संस्कृत सिखाने में सुगमता होती थी।

इन विशेषताओं के होते हुए भी इसमें कई त्रुटियाँ थीं। प्राचीन पाठशाला पद्धति में कुछ लाभकारी गुणों का लोप हो गया। आज संस्कृत को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है; अतः नवीन शिक्षण-पद्धति प्रारम्भ हुई। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि पाठशाला-पद्धति व्यर्थ है और यह सर्वथा त्याज्य है। पाठशाला-पद्धति के कुछ गुणों को आज भी अपनाने की आवश्यकता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५ संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य

हमारे देश में संस्कृत का पठन-पाठन दो प्रकार से होता है—एक तो पाठशालाओं में, दूसरे वर्तमान शिक्षा-प्रणाणी में। पाठशालाओं में संस्कृत की कक्षाएँ 'प्रथमा' से आरम्भ होती हैं और 'आचार्य' तक चलती हैं। 'प्रथमा' कक्षा में छात्र प्रारम्भिक विद्यालय तक मातृभाषा का अध्ययन करने के बाद प्रविष्ट होता है और इसीलिए 'प्रथमा' को जूनियर हाई स्कूल के समकक्ष माना जाता है। इसके पश्चात् पूर्व मध्यमा हाई स्कूल के समकक्ष और उत्तर मध्यमा इण्टर के समकक्ष की परीक्षाएँ हैं। 'शास्त्री' और 'आचार्य' की उपाधियाँ क्रमशः बी० ए० और एम० ए० के समान हैं, किन्तु संस्कृत के ज्ञान की दृष्टि से कहीं ऊँची उपाधियाँ हैं। पाठशालाओं में ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक विषयों का भी अध्यापन होता है। संस्कृत का अध्यापन यहाँ पर बड़े गहन रूप में होता है और अधिकतर विषयों का अध्यापन संस्कृत के ही माध्यम से होता है। उत्तर प्रदेश में ये सभी पाठशालाएँ वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में संस्कृत का अध्यापन विभिन्न राज्यों में विभिन्न कक्षाओं से आरम्भ होता है। किन्तु प्रारम्भिक विद्यालयों में कहीं पर भी संस्कृत का अध्यापन नहीं होता। यह ठीक भी है, क्योंकि प्रारम्भिक विद्यालयों में छात्रों को सर्वप्रथम मातृभाषा का अच्छी तरह से ज्ञान कराना चाहिए। मातृभाषा के ज्ञान के आधार पर संस्कृत का अध्ययन सुगम हो जायगा। उत्तर प्रदेश में संस्कृत का पठन-पाठन छठी कक्षा से प्रारम्भ होता है। छठी कक्षा से लेकर एम० ए० कक्षा तक के पाठ्यक्रम में उत्तर प्रदेश में संस्कृत का एक स्वतन्त्र वैकल्पिक विषय के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृत-शिक्षण के तीन स्तर

आधुनिक शिक्षालयों में संस्कृत-शिक्षण की दृष्टि से हम शैक्षिक स्तरों को तीन वर्गों में रख सकते हैं—

(१) प्राथमिक स्तर।

(२) मध्य स्तर।

(३) उच्च स्तर।

प्रारम्भिक स्तर से यहाँ पर प्रारम्भिक पाठशालाओं का भ्रम नहीं होना चाहिए। प्रारम्भिक स्तर का यहाँ पर तात्पर्य संस्कृत-शिक्षण के प्रारम्भिक स्तर से है और इस स्तर में हम कक्षा ६, ७ और ८ रख सकते हैं।

मध्य स्तर में माध्यमिक कक्षाएँ अर्थात् ९, १०, ११ और १२ आ सकती-हैं तथा उसके पश्चात् उच्च स्तर आता है और उच्च स्तर पर विश्वविद्यालय की अंतिम परीक्षा तक हो सकती है।

उपर्युक्त तीनों स्तरों पर संस्कृत-शिक्षा के उद्देश्य समान नहीं होंगे। यहाँ प्रत्येक स्तर पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों का उल्लेख किया जा रहा है।

प्रारम्भिक स्तर पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य

प्रारम्भिक स्तर अर्थात् कक्षा ६, ७ और ८ के छात्र बाल्यावस्था के अंतिम भाग में या किशोरावस्था में पदार्पण करने की तैयारी में रहते हैं। जहाँ पर मानसिक दृष्टि से उनके मन में बड़ी उथल-पुथल मची रहती है, वहाँ पर उन्हें उपयुक्त आदर्शों की आवश्यकता भी पड़ती है। संस्कृत-साहित्य ऐसे आदर्शों से भरा पड़ा है, अतः यदि छात्रों को उचित प्रेरणा प्रदान कर दी जाय तो संस्कृत भाषा को वे बड़े चाव से पढ़ेंगे। किन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि छात्र इस समय संस्कृत को प्रारम्भ करते हैं, अतः उनसे बहुत अधिक आशा नहीं करनी चाहिए। इस स्तर पर तो इतने से ही सन्तुष्ट हो जाना चाहिए कि छात्र सरल संस्कृत को पढ़ सकें व उसे समझ सकें। इस स्तर पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे संस्कृत भाषा में लिखे हुए सरल गद्य-खण्डों को शुद्ध-शुद्ध पढ़ सकें।

(२) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे सरल संस्कृत श्लोकों का शुद्ध उच्चारण करते हुए पाठ कर सकें।

(३) उन्हें कुछ महत्त्वपूर्ण श्लोकों को कण्ठस्थ करने की प्रेरणा देना।

(४) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे संस्कृत के कठिन से कठिन गद्य-खण्डों एवं श्लोकों के मुद्रित रूप को देखकर उन्हें ठीक-ठीक अपनी पुस्तिकाओं में लिख सकें।

(५) छात्रों में यह योग्यता भी उत्पन्न करना कि वे कण्ठस्थ किये हुए श्लोकों को उनके मुद्रित रूप के देखे बिना शुद्ध-शुद्ध लिख सकें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(६) उन्हें श्रुतिलेख लिखने का अभ्यास कराना ।

(७) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे मातृभाषा के सरल वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कर सकें ।

(८) संस्कृत के सरल गद्य-खण्डों एवं सरल श्लोकों को समझने की योग्यता प्रदान करना ।

(९) छात्रों को यह योग्यता प्रदान करना कि वे आवश्यकतानुसार सरल संस्कृत वाक्यों एवं श्लोकों का मातृभाषा में अनुवाद कर सकें ।

मध्य स्तर पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य

मध्य स्तर पर आने वाले छात्र प्रारम्भिक स्तर अर्थात् कक्षा ६, ७ व ८ में संस्कृत को पढ़ चुके होते हैं । उनमें यह योग्यता आ जाती है कि वे संस्कृत के सरल गद्य-खण्डों एवं श्लोकों को शुद्ध-शुद्ध पढ़ सकें । इस स्तर पर छात्रों को संस्कृत साहित्य का भी परिचय देना चाहिए, किन्तु भाषा की शिक्षा इस स्तर पर भी महत्त्वपूर्ण रहेगी । इस स्तर पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य इस प्रकार हैं—

(१) संस्कृत के सरल ही नहीं, कठिन गद्य-खण्डों को उचित विराम एवं शुद्ध उच्चारण के साथ पढ़ने की क्षमता प्रदान करना जिससे छात्र संस्कृत भाषा में लिखे हुए बड़े-से-बड़े वाक्यों को भी उचित अन्वितियों में विभक्त करके पढ़ सकें और कहीं ऐसा न हो कि वे "अस्ति गोदावरी तीरे विशालः शाल्मली तरु" के स्थान पर "अस्तिगोदावरी तीरेवि शालः·······" जैसा पढ़कर गद्य-खण्ड को निरर्थक कर दें ।

(२) संस्कृत श्लोकों को उचित लय, मात्रा एवं विराम का ध्यान रखकर पढ़ने की योग्यता प्रदान करना जिससे वे मालिनी, शिखरिणी, द्रुत-विलम्बित, इन्द्रवज्रा, भुजङ्गप्रपात आदि छन्दों के पाठ में अन्तर कर सकें।

(३) संस्कृत के सरल साहित्य से छात्रों को परिचित कराया जाय जिससे वे संस्कृत साहित्य के अक्षय कोष के कुछ रत्न स्वयं प्राप्त कर सकें और आनन्द की अनुभूति कर सकें ।

(४) संस्कृत के महत्त्वपूर्ण श्लोकों को कण्ठस्थ करने की प्रेरणा इस स्तर पर भी दी जाय, ताकि वे मातृभाषा के माध्यम से अपने वार्तालाप में आवश्यकता पड़ने पर अपनी बात की संपुष्टि में एवं वाणी को प्रभावोत्पादक बनाने की दृष्टि से संस्कृत के श्लोकों का उद्धरण दे सकें ।

(५) संस्कृत-साहित्य के सरल अंशों को मातृभाषा में अनूदित करने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे जन-समुदाय को संस्कृत-साहित्य के अमृत का पान करा सकें ।

(६) मातृभाषा के सरल अनुच्छेदों एवं सामान्य वाक्यों को संस्कृत में अनूदित करने की योग्यता प्रदान करना ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(७) सरल विषयों पर संस्कृत-भाषा में संक्षिप्त निबन्ध के रूप में कुछ वाक्य लिखने की क्षमता प्रदान करना।

(८) यदि सम्भव हो तो संस्कृत में कुछ सरल वाक्यों में बोलने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे अभीष्ट अवसरों पर सरल रीति से संस्कृत भाषा में कुछ वाक्य शुद्ध रूप से बोल सकें।

यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि संस्कृत में बोलने की क्षमता प्रदान करना संस्कृत-शिक्षण का मध्य स्तर पर उद्देश्य नहीं बनाया गया। वर्तमान परिस्थितियों में यह सम्भव भी नहीं है। अनेकानेक विषयों के जाल में फँसे हुए छात्र से यह आशा करना कि वह संस्कृत में 'शुद्ध, प्रभावोत्पादक, मधुर एवं रमणीय ढंग से बोल सकेगा' ठीक नहीं है। इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। आज संस्कृत जनसाधारण की बोलचाल की भाषा नहीं है और किसी को भी समाज में प्रत्येक अवसर पर संस्कृत बोलने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

यह भी ध्यान देने की बात है कि तीसरे तथा पाँचवें उद्देश्यों में संस्कृत के सरल साहित्य का उल्लेख किया गया है। इस दृष्टि से पंचतन्त्र, हितोपदेश, वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा कालिदास की रचनाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण समझ पड़ती हैं। भारवि, माघ आदि को तो इस स्तर पर समझना भी कठिन है।

उच्च स्तर पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य

उच्च स्तर पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित होने चाहिए—

(१) सरल एवं कठिन सभी प्रकार के गद्य-खण्डों को उचित विराम एवं उच्चारण सहित पढ़ने की योग्यता उत्पन्न करना।

(२) सभी प्रकार के श्लोकों का अभीष्ट लय के अनुसार पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।

(३) संस्कृत के अगाध साहित्य का अवगाहन करने की क्षमता प्रदान करना।

(४) भाषा एवं साहित्य के प्रति अनुसन्धानात्मक दृष्टिकोण प्रदान करना।

(५) संस्कृत साहित्य का मातृभाषा में अनुवाद करने की क्षमता प्रदान करना।

(६) मातृभाषा के सभी प्रकार के वाक्य-साँचों को संस्कृत में अनूदित करने की योग्यता उत्पन्न करना।

(७) आवश्यकतानुसार उचित अवसरों पर संस्कृत भाषा में बोलने की क्षमता प्रदान करना।

(८) संस्कृत भाषा में पत्र-लेखन, निबन्ध-लेखन, संवाद-प्रेषण आदि की योग्यता उत्पन्न करना।

उपर्युक्त विवरण को ध्यान से देखने पर पता लगता है कि संस्कृत भाषा को पढ़ाने के उद्देश्य निम्न स्तरों पर भिन्न अवश्य हैं, किन्तु मूल रूप में सभी भाषा के कौशलों और साहित्य के आनन्द से सम्बन्धित हैं। किसी भी भाषा को पढ़ाने के अग्रलिखित मूल उद्देश्य होते हैं—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१) बोलना ।
(२) पढ़ना ।
(३) सुनना ।
(४) लिखना ।

वस्तुत: हम किसी भी भाषा को इसलिए पढ़ते हैं जिससे कि हम अपने भावों को दूसरों तक पहुँचा सकें और दूसरों के भावों को ग्रहण कर सकें। इस दृष्टि से भाषा के मूल रूप में केवल दो उद्देश्य ठहरते हैं—

(१) विचारों की अभिव्यक्ति ।
(२) विचारों को समझना ।

भावाभिव्यक्ति दो प्रकार से हो सकती है—

(१) बोलकर ।
(२) लिखकर ।

इसी प्रकार विचार-ग्रहण भी दो प्रकार से हो सकता है—

(१) मौखिक रूप से व्यक्त विचारों को सुनकर ।
(२) लिखित रूप से व्यक्त विचारों को पढ़कर ।

इसलिए ऊपर भाषा के चार उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है। इन चारों उद्देश्यों के अन्तर्गत भाषा सम्बन्धी अनेक क्रियाओं का ज्ञान कराना आवश्यक हो जाता है। इनमें कुछ क्रियाएँ पहले आनी चाहिए, कुछ बाद में। इसलिए विभिन्न स्तरों पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य भिन्न बताये गये हैं। इन चारों मूल उद्देश्यों को भाषा सम्बन्धी चार कौशल भी कहा जाता है।

संस्कृत-शिक्षण की दृष्टि से आरम्भ में भाषा के चारों उद्देश्यों के अन्तर्गत सरल क्रियाएँ रखी गयी हैं। बाद में कुछ कठिन क्रियाओं का समावेश किया गया है। इस स्थल पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों एवं मातृभाषा तथा विदेशी भाषा अंग्रेजी के शिक्षण के उद्देश्यों में अन्तर भी देख लेना उचित होगा।

संस्कृत-शिक्षण एवं मातृभाषा-शिक्षण के उद्देश्य

जिस भाषा को बालक अपने माता-पिता से सुनता है और जिसे वह अनायास ही सीख लेता है, उसे मातृभाषा कहा जाता है। उत्तर प्रदेश में बालक अपने माँ-बाप से ब्रज, अवधी आदि जनपदीय भाषाएँ सीखता है, किन्तु अब इन भाषाओं में साहित्य-सृजन की धारा मन्द व रुद्ध हो गई है। उत्तर भारत की सर्वमान्य, साहित्य समृद्ध एवं सर्वप्रयुक्त भाषा अब जो हो चुकी है, वह हिन्दी है। अत: उपर्युक्त बोलियों की उसे शिक्षा न देकर हिन्दी की शिक्षा दी जाती है और हिन्दी ही उसकी मातृभाषा कही जाती है। जनपदीय भाषाओं ने हिन्दी को समृद्ध किया है। इस प्रकार हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं बिहार की जनता की मातृभाषा हिन्दी है और इन प्रदेशों को हिन्दी-भाषी प्रदेश कहा जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मातृभाषा को बालक घर पर सीखता रहता है और जब वह कक्षा १ में प्रविष्ट होता है तब तक उसे मातृभाषा का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। प्रारम्भिक विद्यालय में वह पाँच वर्ष तक मातृभाषा का अध्ययन करता है और माध्यमिक विद्यालय तक आते-आते वह मातृभाषा का बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेता है, किन्तु संस्कृत के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है। संस्कृत-शिक्षण की दृष्टि से जूनियर हाई स्कूल की कक्षाएँ प्रारम्भिक स्तर की ही कक्षाएँ हैं और छात्र को इस स्तर पर संस्कृत को दूसरी भाषा के रूप में सीखना होता है।

माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है, अतः बालक को मातृभाषा का जितना ज्ञान हो सकेगा, उतना ही ज्ञान संस्कृत के विषय में नहीं हो पायेगा। इस प्रकार की आशा भी नहीं करनी चाहिए। इसीलिए तो संस्कृत के बोलने एवं लिखने को संस्कृत-शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मध्य स्तर पर नहीं माना गया है।

मातृभाषा एवं संस्कृत—दोनों के शिक्षण में पठन की योग्यता महत्त्वपूर्ण है। पठन के कौशल का विकास दोनों भाषाओं के शिक्षण से होगा। मातृभाषा-शिक्षण में व्यापक अध्ययन या द्रुतपठन का जितना महत्त्व होगा, उतना महत्त्व संस्कृत-शिक्षण में नहीं होगा, किन्तु गहन अध्ययन के लिए पठन का महत्त्व संस्कृत में अपेक्षाकृत अधिक होगा।

संस्कृत-शिक्षण में बोध का विशेष महत्त्व है। पढ़कर अर्थग्रहण करना दोनों भाषाओं में महत्त्वपूर्ण है किन्तु मातृभाषा में केवल अर्थग्रहण को ही महत्त्व नहीं दिया जा सकता। उसमें अभिव्यक्ति या भावप्रकाशन का भी विशेष महत्त्व है। लिखकर या बोलकर आत्म प्रकाशन की क्षमता प्रदान करना मातृभाषा-शिक्षण का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है, जबकि संस्कृत-शिक्षण में अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना अर्थग्रहण की योग्यता का विकास।

बालक के जीवन में मातृभाषा का अधिक महत्त्व है और संस्कृत के शिक्षण से उनका मातृभाषा-विषयक ज्ञान सम्पुष्ट होगा, अतः संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों में अनुवाद को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

संस्कृत-शिक्षण एवं अंग्रेजी-शिक्षण के उद्देश्य

माध्यमिक विद्यालयों में बालकों को आजकल अंग्रेजी अनिवार्य रूप से पढ़नी पड़ती है। अंग्रेजी भारतवर्ष में अनेक कारणों से अभी भी विद्यमान है। इसीलिए किसी अन्य विदेशी भाषा को यहाँ प्रोत्साहन नहीं मिल पाता है।

अंग्रेजी एवं संस्कृत, दोनों को माध्यमिक विद्यालयों में बालक दूसरी भाषा के रूप में पढ़ता है। किन्तु अंग्रेजी विदेशी भाषा है, अतः इसके उद्देश्यों की तुलना संस्कृत के उद्देश्यों से नहीं की जा सकती। अंग्रेजी की प्रकृति ही भिन्न है। इसमें कर्त्ता के पश्चात् तुरन्त ही क्रिया आ जाती है और कर्म बाद में रखा जाता है तथा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रम में अन्तर आने पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है, जबकि संस्कृत के विषय में ऐसी बात नहीं है। संस्कृत में प्रत्येक पद विभक्तियुक्त होता है अतः क्रम-भेद से अनर्थ नहीं हो सकता। अंग्रेजी एक विश्लेषणात्मक भाषा है, जबकि संस्कृत संश्लेषणात्मक।

विश्लेषणात्मक भाषा में प्रत्यय तथा विभक्ति शब्द के साथ संयुक्त न होकर पृथक् लिखे जाते हैं। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी में हम लिखते हैं—There was a tall Shalmali tree on the bank of Godavari. इस वाक्य में tall Shalmali, tree, bank, Gadavari मुख्य शब्द (content words) है, और a, on, the, of क्रियात्मक शब्द (functional words) है। मुख्य शब्द का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और उनका स्वतन्त्ररूपेण कुछ अर्थ हो सकता है, किन्तु क्रियात्मक शब्दों का न तो स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और उनका स्वतन्त्ररूपेण कोई अर्थ होता है। इन शब्दों का अर्थ मुख्य शब्दों के सन्दर्भ में होता है। of का अर्थ, जैसा प्रायः बताया जाता है, 'का, की, के' सब जगह नहीं हो सकता। He died of cholera में of का अर्थ 'से' हो गया है। To का अर्थ प्रायः 'को' बताया जाता है किन्तु Friend to me या P. A. to Minister में to शब्द 'का' का अर्थ दे रहा है, तो 10 to 5 O' clock में (पाँच बजने में दस मिनट बाकी हैं) कम या शेष का अर्थ दे रहा है और From Agra to Delhi में 'तक' का अर्थ दे रहा है। यही हाल will, would, shall, should, must, can, could आदि क्रियात्मक शब्दों का भी है। वे क्रियात्मक शब्द अंग्रेजी में पृथक् रूप से लिखे जाते हैं और जिस स्थिति में होते हैं वैसा ही अर्थ देते हैं। ऊपर के वाक्य में यदि हम किंचिन्मात्र हेर-फेर करें तो अर्थ का अनर्थ हो जायगा।

संस्कृत में इस प्रकार के अनर्थ की गुंजाइश नहीं है। यह संश्लेषणात्मक भाषा होने के कारण अपने क्रियात्मक विकारों को साथ ही रखती है। प्रत्येक मुख्य शब्द क्रियात्मक शब्द को अपने साथ अविभक्त रूप से लिए रहता है। क्रियात्मक शब्द एवं मुख्य शब्द मिलकर एक नया रूप ले लेते हैं और उस नये रूप को 'पद' कहा जाता है। पद को वाक्य में इधर-उधर रखने पर अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित वाक्य देखिए :—

"अस्ति गोदावरी तीरे विशालः शाल्मली तरुः"

उपर्युक्त वाक्य में किसी भी शब्द को कहीं पर रख कर देखा जा सकता है, प्रत्येक परिस्थिति में अर्थ वही रहेगा। संश्लेषणात्मक भाषा का यह अपना गुण है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों भाषाओं की प्रकृति भिन्न है। दोनों की प्रकृति का ध्यान रखते हुए अध्यापक को आगे बढ़ना है। एक में आदरसूचक शब्द अनेक मिल सकते हैं (यथा—भवान्, अत्रभवान्, तत्रभवान्, भगवन् आदि) तो दूसरी में इनकी कमी हो सकती है। (यथा—अंग्रेजी में सबके लिए you से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही काम चलाना पड़ेगा)। एक में शब्द-शक्ति अधिक हो सकती है (यथा—आचार्य शब्द) तो दूसरी में कम (यथा teacher शब्द)।

अंग्रेजी विदेशी भाषा होने के कारण हमारी संस्कृति से सम्बन्ध नहीं रखती, जबकि संस्कृत में हमारी संस्कृति ही निहित है। अंग्रेजी के अध्ययन से क्षेत्रीय भाषाओं की उन्नति तो दूर रही, उनकी प्रगति में बाधा और पड़ती है, जबकि संस्कृत से क्षेत्रीय भाषाओं की उन्नति होती है। अंग्रेजी हमारी परतन्त्रता की द्योतक है, संस्कृत स्वतन्त्रता की। अतः संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य अंग्रेजी शिक्षा के उद्देश्यों से भिन्न हो जाते हैं। अंग्रेजी मातृभाषा से पृथक् एवं नवीन भाषा के रूप में आती है, जबकि संस्कृत बालक की परिचित भाषा के रूप में उसके समक्ष आती है और इसके अनेक शब्दों से वह पहले ही परिचित रहता है।

आजकल विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अंग्रेजी छाई हुई है। उसे वह स्थान दिया गया है जिसका उसे अधिकार नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि माध्यमिक विद्यालयों में अंग्रेजी का स्थान वैकल्पिक विषय के रूप में ही होना चाहिए। संस्कृत की भी यही स्थिति होगी, किन्तु इसका कुछ भाग अनिवार्य भी होना चाहिए।

संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों पर विचार कर लेने के पश्चात् स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि इस भाषा की शिक्षण-विधि क्या हो। अग्रिम अध्याय में संस्कृत-शिक्षण की विधियों का सिंहावलोकन करने के पश्चात् संस्कृत-साहित्य की प्रत्येक विधा के शिक्षण पर पृथक्-पृथक् विचार किया जायगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६ संस्कृत-शिक्षण की पद्धतियाँ

संस्कृत-साहित्य की विभिन्न विधाओं को किस प्रकार पढ़ाया जाय, इस पर आगे के अध्यायों में विचार किया जायगा। इस अध्याय में हम यह देखेंगे कि संस्कृत भाषा की शिक्षा किन विधियों के द्वारा दी जाय। इस स्थल पर हम विधाओं की पृथक् चर्चा न करके सम्पूर्ण संस्कृत भाषा की दृष्टि से पद्धतियों पर विचार करेंगे। संस्कृत-शिक्षण-पद्धतियों का हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे—

(१) व्याकरण-पद्धति, (२) विश्लेषणात्मक-पद्धति, (३) व्याख्या-पद्धति, (४) अनुवाद-पद्धति, (५) प्रत्यक्ष-पद्धति, (६) हरबार्टीय पञ्चपदी, (७) मूल्यांकन का दृष्टिकोण, (८) प्राचीन एवं नवीन पद्धतियों का सम्बन्ध।

व्याकरण-पद्धति

मातृभाषा के अतिरिक्त किसी भी भाषा को सीखने की एक विधि यह है कि हम उस भाषा के व्याकरण को अच्छी तरह जानें और व्याकरण सीखकर उस भाषा पर अधिकार प्राप्त करें। संस्कृत भाषा का भी इस दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। संस्कृत पाठशालाओं में यह पद्धति सर्वप्रचलित विधि के रूप में दिखाई पड़ती है। संस्कृत भाषा का व्याकरण बड़ा जटिल किन्तु सुनिश्चित है। वेदों के अध्ययन के लिए प्राचीन समय में व्याकरण पर बल दिया जाता था। शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प नामक छह वेदाङ्गों के अध्ययन में व्याकरण पर विशेष बल था।

आज भी पाठशालाओं में व्याकरण को महत्त्व दिया जाता है और व्याकरणाचार्य को अत्यधिक सम्मान दिया जाता है। शताब्दियों से यह प्रथा चली आ रही है कि संस्कृत का अध्ययन करने का अर्थ है, संस्कृत के व्याकरण का कुछ ज्ञान प्राप्त करके आगे बढ़ना। छात्र आज भी जब पाठशाला में जाता है तो उसे सर्वप्रथम 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' का अध्ययन कराया जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याकरण-पद्धति के अध्ययन करने की आजकल पर्याप्त आलोचना की जाती है। इस पद्धति में प्रायः निम्नलिखित दोष बताये जाते हैं—

१. यह विधि नीरस होती है।
२. यह विधि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। छात्र की मानसिक क्षमता एवं रुचि का व्याकरण-पद्धति में ध्यान नहीं रखा जाता।
३. यह विधि भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। इसमें वर्णों को इकाई मानकर चला जाता है और वाक्य-रचना का अभ्यास नहीं हो पाता।
४. यह विधि छात्रों को संस्कृत के प्रयोग का व्यावहारिक ज्ञान नहीं देती। शास्त्रीय व्याकरण में पटु होते हुए भी वैयाकरण संस्कृत के व्यावहारिक प्रयोग पर अधिक ध्यान नहीं देते।
५. इस विधि में भाषा के अन्य पक्ष उपेक्षित रहते हैं।

उपर्युक्त दुर्गुणों की ओर आजकल के मनोविज्ञानवेत्ता हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, किन्तु व्याकरण-पद्धति के गुणों की ओर से हम आँख नहीं बन्द कर सकते। इस पद्धति की अच्छाइयों को हम संक्षेप में नीचे अंकित कर रहे हैं—

१. संस्कृत-व्याकरण इतना जटिल है कि उसका ज्ञान बिना व्याकरण-विधि के भली प्रकार हो ही नहीं सकता।
२. व्याकरण-विधि से छात्र संस्कृत भाषा की बारीकियों को समझ जाता है।
३. व्याकरण-विधि को अव्यावहारिक कहना भूल है। इस विधि से छात्र व्याकरण के नियमों को जानकर उनका प्रयोग करते हैं।
४. इस विधि से संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने वाले पण्डितों का उदाहरण इस बात को सिद्ध करता है कि यह विधि निरर्थक नहीं है। यदि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों में यह विधि नहीं आती है तो मनोविज्ञान को अपने सिद्धान्तों को पुनः देखना चाहिए और उनमें संशोधन करना चाहिए, न कि पण्डितों की इस विधि को ही निरर्थक बताना चाहिए। इस विधि ने जीवन के सभी क्षेत्रों में उच्च कोटि के विद्वान् उत्पन्न किए हैं।
५. इस विधि से अध्ययन करने वाले छात्र भाषागत अशुद्धियाँ कम करते है। ये चाहे कम लिखें और कम बोलें, किन्तु जो भी लिखते या पढ़ते हैं, वह प्रायः शुद्ध होता है।
६. वर्तमान समय में संस्कृत एक अनति प्रचलित भाषा है। ऐसी भाषा के उच्च व विशिष्ट ज्ञान के लिए व्याकरण-पद्धति सर्वथा उपयुक्त है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्याकरण-पद्धति का अपना महत्त्व है। यद्यपि सभी छात्रों के लिए इस विधि का समर्थन नहीं किया जा सकता, किन्तु जो इस विधि से अध्ययन करना चाहें, उनके मार्ग में बाधा भी नहीं आनी चाहिए। इसके विपरीत पाठशालाओं को उचित रूप से प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि वहाँ पर छात्र अपने गहन अध्ययन द्वारा संस्कृत भाषा के सौष्ठव को बनाये रखें और सांस्कृतिक परम्परा सुरक्षित रहे। केवल माध्यमिक स्तर में संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय के रूप में आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार संस्कृत का अध्ययन कराकर जो लोग भारत की सांस्कृतिक परम्परा की सुरक्षा की बात करते हैं, सम्भवतः वे आधुनिक अच्छे या बुरे सिद्धान्तों के प्रति अत्यधिक दीवाने समझ पड़ते हैं। इस पद्धति का अपना स्थान है और यदि इस पद्धति में आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार कुछ आवश्यक (अनावश्यक नहीं) परिवर्तन कर दिये जाएँ तो यह पद्धति बहुत-से छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। व्याकरण-शिक्षण पर आगे एक पृथक् अध्याय में विस्तार से विचार किया जायगा।

विश्लेषणात्मक-पद्धति

विश्लेषणात्मक पद्धति वह है जिसमें अध्यापक जब कक्षा में शिक्षण करता है तो पहले वह पूरे पाठ की वस्तु से प्रारम्भ करता है और बाद में उस पाठ के विभिन्न अंशों का शिक्षण करता है। सम्पूर्ण विषय-सामग्री से चलकर विभिन्न भागों का विश्लेषण या विवेचन किया जाता है। यदि कोई पाठ कहानी का है तो सम्पूर्ण कहानी पहले सुनाकर बाद में कहानी के महत्त्वपूर्ण अंशों का अध्ययन होगा। यदि महाभारत की कथा पढ़ानी है या रामायण की कथा पढ़ानी हैं तो इसी विधि से चला जायगा।

इस पद्धति के पक्ष में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं—

१. यदि पद्धति 'सम्पूर्ण से अंश की ओर' चलने का परामर्श देकर मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का आश्रय लेती है।

२. इसमें साधारण एवं सरल बातों के आधार पर विशेष असाधारण एवं कठिन बातों का ज्ञान कराया जाता है।

३. इस पद्धति में बालक रुचि लेते हैं अतः उनका सीखना आनन्ददायी होता है।

इस पद्धति के विरोध में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं :—

१. यह पद्धति वहीं पर प्रयुक्त की जा सकती है जहाँ पर विषय को कई खण्डों में बाँटा जा सके। अतः कथा-कहानियों के अतिरिक्त अन्य विषयों में यह इतनी लाभदायक नहीं सिद्ध होती।

२. केवल विश्लेषण से विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। विश्लेषण और संश्लेषण दोनों होने चाहिए।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३. यह पद्धति प्रारम्भिक स्तर पर अधिक तथा मध्य स्तर पर सामान्य रूप से उपयोगी हो सकती है, किन्तु उच्च स्तर पर अनुपयोगी ही है।
४. संस्कृत भाषा के विभिन्न पक्षों का ज्ञान केवल विश्लेषण पद्धति से नहीं हो सकता। संस्कृत में स्थान-स्थान पर व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है, अतः अब हम तीसरी पद्धति 'व्याख्या' पर आते हैं।

व्याख्या-पद्धति

व्याख्या-पद्धति में शिक्षक एक-एक शब्द को लेकर उसका अर्थ स्पष्ट करता है। पद का अर्थ बताते समय वह समास-विग्रह, सन्धि-विच्छेद, व्युत्पत्ति आदि बताते हुए सम्पूर्ण वाक्य, अनुच्छेद एवं पाठ का अर्थ बताता है। तत्पश्चात् पाठ का सारांश, भावार्थ आदि भी स्पष्ट किया जाता है। लेखक या कवि की शैली आदि का भी परिचय कराया जाता है। इस विधि को व्याख्यान-विधि भी कहा जा सकता है। व्याख्या-पद्धति को समझने के लिए व्याख्यान सम्बन्धी निम्नलिखित श्लोक ध्यान देने योग्य है—

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपोऽथ समाधानं व्याख्यानं षड्विधं स्मृतम्॥

अर्थात् व्याख्यान के निम्नलिखित छह ढंग हैं:—

(१) पदच्छेद, (२) पदार्थोक्ति, (३) विग्रह, (४) वाक्य-योजना, (५) आक्षेप, (६) समाधान।

उपर्युक्त श्लोक से व्याख्या-पद्धति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। व्याख्या-पद्धति का प्रचलन प्राचीन काल में तो था ही, आज भी कुछ अच्छे शिक्षक इस पद्धति का आश्रय लेते हैं।

व्याख्यान-पद्धति के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित बातें कही जाती हैं—

१. व्याख्या के शब्दों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है और छात्र नये-नये शब्दों का अर्थ जानकर उनका प्रयोग सीख जाते हैं। इस प्रकार छात्रों के शब्द-भण्डार की वृद्धि होती है।
२. विषय-ज्ञान की दृष्टि से भी व्याख्या-विधि अच्छी होती है। इससे सामग्री पर अच्छा प्रकाश पड़ जाता है और छात्र विषय-वस्तु को ठीक समझ लेता है।
३. इस पद्धति द्वारा लेखक या कवि की शैली तथा भाषा-सम्बन्धी सौष्ठव से परिचय मिल जाता है।
४. यदि अध्यापक ने पाण्डित्यपूर्ण तथा सरस व्याख्या की है तो छात्रों की स्मृति में व्याख्या अधिक दिन तक टिक सकती है।

इस पद्धति के विरोध में प्रायः अग्रलिखित बातें कही जाती हैं—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. इस पद्धति में अध्यापक तो सक्रिय रहता है, किन्तु छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में बैठे रहते हैं।
२. इस पद्धति में छात्र रुचि नहीं लेते।
३. इस पद्धति में अध्यापक मनोवैज्ञानिक क्रम के विपरीत तार्किक क्रम पर ही अधिक ध्यान देता है।
४. इस पद्धति द्वारा छात्रों में स्वाध्याय एवं स्वानुसन्धान की आदत नहीं पड़ती।

उपर्युक्त गुणावगुणों पर विचार करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि व्याख्या-विधि अपने आप में सर्वोत्तम विधि नहीं है, किन्तु यथावसर इसका प्रयोग करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए।

अनुवाद-पद्धति

अनुवाद-पद्धति के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ लोगों के अनुसार मातृभाषा के अतिरिक्त जब किसी भी भाषा को सीखा जाय तो उसे अनुवाद-पद्धति के द्वारा ही सीखा जाय, जबकि कुछ अन्य व्यक्तियों के अनुसार अनुवाद-पद्धति का प्रयोग किसी भी भाषा के अध्ययन में नहीं करना चाहिए। दूसरी विचारधारा को हम 'प्रत्यक्ष विधि' शीर्षक के अन्तर्गत देखेंगे। यहाँ पर हम पहली विचारधारा के विषय में ही विचार करेंगे।

यह बात निर्विवाद सत्य है कि बालक मातृभाषा में अपने विचारों को अधिक सरलता, सुगमता एवं स्पष्टता से व्यक्त कर सकता है। मातृभाषा के माध्यम से विषय को ग्रहण करना भी सरल होता है। इसी आधार पर कुछ लोगों का कहना है कि बालक के मन में जो कुछ भी आये, वह मातृभाषा के माध्यम के रूप में ही आये तो अच्छा है। संस्कृत का अध्ययन द्वितीय या तृतीय भाषा के रूप में होता है। अतः संस्कृत को यदि मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाया जाय तो अधिक अच्छा है। मातृभाषा के वाक्यों, अनुच्छेदों आदि का संस्कृत में अनुवाद करना अलग बात है। इसके विषय में आगे एक पृथक् अध्याय में चर्चा की जायगी। यहाँ पर अनुवाद-पद्धति का तात्पर्य यह है कि संस्कृत भाषा को मातृभाषा में अनूदित करके पढ़ाया जाय।

इस पद्धति के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित बातें कही जाती हैं—

(१) इस पद्धति द्वारा छात्रों को विषय का सरलता एवं सुगमता से ज्ञान हो जाता है, क्योंकि मातृभाषा के माध्यम से बोध सरल होता है।
(२) इस पद्धति द्वारा मातृभाषा तथा संस्कृत भाषा के शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं विभिन्न शैलियों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इससे छात्र के शब्द-भण्डार की वृद्धि होती है।
(३) इस पद्धति में 'ज्ञात से अज्ञात', 'सरल से कठिन' आदि सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता है।
(४) अनुवाद द्वारा वाक्य-रचना ठीक से समझी जा सकती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) इस पद्धति द्वारा अनुमान, तुलना तथा निरीक्षण का अभ्यास डाला जाता है।

इस पद्धति के विपक्ष में निम्नलिखित बातें कही जाती हैं—

(१) भाषा अभ्यासजन्य है। यदि सदा अनुवाद होता रहेगा तो संस्कृत भाषा को लिखने-पढ़ने की योग्यता का विकास करना ही असम्भव हो जायगा।

(२) अनुवाद में प्रायः 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' की प्रवृत्ति रहती है जिससे भाषागत सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

(३) किसी भी भाषा के मूल भाव की पूर्ण रक्षा करना इस पद्धति द्वारा कठिन है।

(४) प्रत्येक भाषा का अपना सन्देश होता है जिसे वही भाषा वहन कर सकती है।

(५) मूल प्रकृति के रूप में है, तो अनुवाद प्रतिकृति के रूप में। प्रतिकृति से प्रकृति सदा श्रेष्ठ होती है।

किसी भी भाषा को सिखाने के लिए यह आवश्यक है कि उसी प्रकार का वातावरण हो और छात्र उस भाषा को लिखने, पढ़ने, बोलने तथा सुनने का अभ्यास करें। यदि कहीं पर अत्यधिक आवश्यक हो तो मातृभाषा का प्रयोग कर लिया जाय, नहीं तो संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया जाय। इसे प्रत्यक्ष विधि कहते हैं जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

प्रत्यक्ष पद्धति

प्रत्यक्ष पद्धति में पाठ्य-सामग्री का मातृभाषा में अनुवाद नहीं किया जाता। किसी भी भाषा को सीखने के लिए उस भाषा में लिखने, बोलने, पढ़ने तथा सुनने का अभ्यास करना आवश्यक है। कक्षा का वातावरण ही ऐसा हो कि छात्र संस्कृत भाषा को लिखने-पढ़ने में रुचि लें। आदेश संस्कृत भाषा में ही दिये जायँ। पारस्परिक वार्त्तालाप भी यथासम्भव संस्कृत में ही हो। अध्यापन भी संस्कृत भाषा में ही हो। संस्कृत में ही प्रश्न किये जायँ और यथासम्भव संस्कृत में ही उत्तरों की माँग की जाय। इससे यह लाभ होगा कि छात्रों को संस्कृत लिखने-पढ़ने का अभ्यास ही नहीं होगा, प्रत्युत उनमें संस्कृत को समझने और बोलने की सहज प्रवृत्ति भी उत्पन्न होगी।

प्रत्यक्ष पद्धति के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित बातें कही जाती हैं—

(१) यह पद्धति भाषा-शिक्षण के मूल सिद्धान्तों के अनुकूल है। किसी भी भाषा को उसी भाषा के माध्यम के द्वारा सीखा जा सकता है, न कि अन्य भाषा के माध्यम से।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२) इस पद्धति में संस्कृत भाषा को सुनने तथा बोलने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया है ।
(३) प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति है । अनुवाद में भाषा की प्रकृति प्रायः उपेक्षित रह जाती है ।
(४) प्रत्यक्ष विधि में जिस प्रकार भाषा समाज में व्यवहृत होती है, उसी प्रकार से कक्षा में भी प्रयुक्त होती है ।
(५) प्रत्यक्ष विधि में छात्रों की रुचि एवं योग्यता का ध्यान रखा जाता है ।

इस पद्धति के विपक्ष में निम्नलिखित बात कही जा सकती हैं—

(१) यह पद्धति तब सफल हो सकती है, जबकि छात्रों को उसे भाषा का कुछ प्रारम्भिक ज्ञान हो । छात्र प्रारम्भ में संस्कृत भाषा में विचारों की अभिव्यक्ति ही नहीं कर पायेंगे ।
(२) जहाँ तक संस्कृत भाषा का सम्बन्ध है, इसे बोलना एवं लिखना तभी सम्भव है, जबकि व्याकरण का प्रारम्भिक ज्ञान हो जाय ।
(३) कक्षा में कृत्रिम वातावरण बनाकर प्रत्यक्ष-विधि के अनुकूल वातावरण रचा जा सकता है । किन्तु परिवार एवं समुदाय में छात्र मातृभाषा का ही सर्वाधिक प्रयोग करता है, अतः यह कृत्रिमता अधिक आकर्षक नहीं है ।
(४) अनुवाद-प्रणाली से छात्र सरलता से संस्कृत सीख जायेंगे और संस्कृत की प्रकृति से भी परिचित होने में बाधा नहीं पड़ेगी ।
(५) प्रत्यक्ष पद्धति द्वारा केवल बुद्धिमान छात्र ही लाभान्वित होते हैं, सामान्य छात्र नहीं ।
(६) प्रत्यक्ष पद्धति में समय अधिक चाहिए । उसी तथ्य को अनुवाद-पद्धति द्वारा कम समय में समझाया जा सकता है ।
(७) प्रत्यक्ष पद्धति से पढ़ाने के लिए वर्तमान अध्यापकों को अलग हटा कर नये अध्यापक नियुक्त करने पड़ेंगे, जो असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है ।
(८) वाक्य-रचना (Structural approach) के अभ्यास द्वारा केवल कुछ ही वाक्य-रचना-साँचों का ज्ञान कराया जा सकता है । संस्कृत भाषा में सामान्य एवं अपवाद नियम इतने अधिक हैं कि सब में प्रत्यक्ष विधि अपनायी ही नहीं जा सकती । प्रत्यक्ष विधि के समर्थक प्रायः वाक्य रचना-प्रणाली का समर्थन करते हैं ।

प्रत्यक्ष पद्धति का प्रयोग कुछ दिनों पूर्व अंग्रेजी को पढ़ाने के लिए खूब अपनाया गया । कहने की आवश्यकता नहीं है कि अंग्रेजी भाषा को पढ़ाने के लिए भी प्रत्यक्ष पद्धति असफल सिद्ध हुई है । अतः संस्कृत भाषा को पढ़ाने के लिए केवल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रत्यक्ष विधि का आश्रय लेना ठीक नहीं है। हाँ, प्रत्यक्ष विधि तथा व्याकरण एवं अनुवाद विधियों का समन्वित रूप ग्रहण करने में हानि नहीं है।

हरबार्टीय पञ्चपदी

प्रसिद्ध दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक हरबार्ट के सिद्धान्तों के आधार पर उसके शिष्यों ने हरबार्टीय पञ्चपदी का विकास किया है। इन पाँचों पदों द्वारा पाठ के शिक्षण का विधान किया गया है। ये पाँचों पद निम्नलिखित हैं—

(१) प्रस्तावना, (२) विषयोपस्थापन, (३) तुलना, (४) सामान्यीकरण, (५) प्रयोग।

(१) **प्रस्तावना**—प्रस्तावना में दो-एक प्रश्नों द्वारा कवि या लेखक के विषय में वार्त्तालाप द्वारा प्रस्तुत पाठ के लिए छात्रों को तैयार किया जाता है। वर्तमान पाठ के लिए तैयारी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यदि प्रस्तावना ठीक नहीं हुई तो पाठ की सफलता भी कठिनता से मिलेगी। प्रस्तावना पिछले पाठ की पुनरावृत्ति द्वारा भी हो सकती है। प्रसंग का वर्णन करके भी प्रस्तावना की जा सकती है। आजकल कुछ प्रश्नों द्वारा प्रस्तावना अच्छी समझी जाती है।

(२) **विषयोपस्थापन**—मुख्य भाव के अनुसार पाठ को दो-तीन अन्वितियों में बाँट लिया जाता है। प्रत्येक अन्विति को प्रस्तावना के पश्चात् छात्रों के समक्ष उपस्थापित किया जाता है। उपस्थापन में ही शिक्षकों द्वारा आदर्श वाचन, छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन, सन्धि-विच्छेद, समास-विग्रह, दण्डान्वय, खण्डान्वय एवं भाव-परीक्षा के प्रश्न आते हैं।

(३) **तुलना**—तुलना में वर्तमान पाठ की तुलना बालकों को संचित ज्ञान से की जाती है। भाषा-शिक्षण में काठिन्य-निवारण, विस्तृत व्याख्या इसी पद के अन्तर्गत है। इन सबकी चर्चा आगे के अध्यायों में की जायगी।

(४) **सामान्यीकरण**—व्याकरण के पाठों में इसका विशेष उपयोग है। संचित ज्ञान की प्रस्तुत पाठ से तुलना करने पर छात्र स्वयं कुछ सामान्य सिद्धान्तों का दर्शन करते हैं। इन सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण इस पद में किया जाता है। भाषा-शिक्षण में इस स्तर पर पुनरावृत्ति के प्रश्न आते हैं। कविता-शिक्षण में समान भाव की कविताएँ दी जा सकती हैं।

(५) **प्रयोग**—प्रस्तुत पाठ की उपस्थापना एवं तुलना के बाद छात्र जब सामान्य सिद्धान्त का निर्धारण कर लेते हैं, तब बाद में यह भी आवश्यक हो जाता है कि छात्र नवार्जित ज्ञान को व्यवहृत या प्रस्तुत करें। यह प्रयोग की अवस्था है। इस पद में भाषा के पाठों में छात्रों को कुछ अभ्यास-कार्य दिया जाता है। कक्षा-कार्य एवं गृह-कार्य भी प्रयोग के लिए ही दिये जाते हैं।

हरबार्टीय पंचपदी मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। इनमें वही क्रम अपनाया गया है जो विचारों के ज्ञान में अपनाया जाता है। इस पद्धति की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आलोचना भी की जाती है। आलोचना की मुख्य बात यह है कि यह पद्धति सभी प्रकार के विषयों में प्रयुक्त नहीं हो सकती है। विज्ञान को पढ़ाने में यह असफल ही सिद्ध हुई है। भाषा-शिक्षण में भी सभी प्रकार के पाठों में इसका प्रयोग नहीं हो पाता। फिर भी यह पद्धति आवश्यक संशोधन के साथ आज भी काम में लायी जा सकती है।

1986 ✓

मूल्यांकन का दृष्टिकोण

प्रशिक्षण महाविद्यालयों में बहुत दिनों तक हरबार्टीय विधि का बोलबाला रहा है। उसके आधार पर पाठ-योजनाएँ बनाई जाती रही हैं। अब 'मूल्यांकन प्रविधि' यह शब्द प्रायः सुनने को मिलता है। इसका अभिप्राय संक्षेप में दिया जा रहा है।

मूल्यांकन-प्रविधि की दृष्टि से हम शिक्षण से सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु का मूल्य अर्थात् महत्त्व जानना चाहते हैं। यह कार्य उद्देश्य की दृष्टि से होता है। जो वस्तु उद्देश्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं होती, उसका इस प्रविधि में कोई स्थान नहीं होता। इस दृष्टि से इस विधि में पाठ्य-वस्तु, पाठन-विधि, परीक्षा-विधि आदि प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन किया जाता है और प्रत्येक वस्तु को उसी रूप में रखा जाता है, जिस रूप में वह उद्देश्य की दृष्टि से उचित होती है।

इस प्रविधि के आधार पर पाठ-योजना बनाते समय सबसे पहले पाठ का उद्देश्य निश्चित किया जाता है। उसके बाद यह विचार किया जाता है कि जिस व्यक्ति ने उक्त उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है, उसके व्यवहार में पहले की अपेक्षा क्या-क्या संशोधन हो जाते हैं। इन संशोधित व्यवहारों को व्यवहार-रूप (Behaviour Patterns) कहते हैं। व्यवहार-रूपों का निश्चय कर लेने के पश्चात् यह देखा जाता है कि पाठ्य-वस्तु के किस अंश के अध्यापन के माध्यम से वे व्यवहार-रूप छात्र के व्यक्तित्व में उत्पन्न करने होंगे। साथ ही यह भी विचार किया जाता है कि किन-किन क्रियाओं को सम्पादन करके तथा छात्रों से सम्पादन कराके अध्यापक उस पाठ्य-वस्तु को छात्रों को हृदयंगम करा सकेगा और उन क्रियाओं में से कौन-सी कक्षा में चलेंगी और कौन-सी कक्षा के बाहर। इन क्रियाओं को शिक्षण-युक्तियाँ तथा प्रविधियाँ भी कहा जाता है। अध्यापन-युक्तियों का विनिश्चय करके यह सोचा जाता है कि परीक्षा की वे युक्तियाँ क्या-क्या होंगी, जिनसे ज्ञात हो जाय कि छात्र में अभीष्ट व्यवहार-रूप उत्पन्न हो गये हैं। यदि ये युक्तियाँ प्रमाणित कर दें कि अभीष्ट व्यवहार-रूप छात्र में उत्पन्न हो गये हैं, तो माना जा सकेगा कि उनसे सम्बद्ध उद्देश्य भी प्राप्त हो गया है।

इस प्रसंग में एक प्रश्न यह उठता है कि पाठ्य-वस्तु के अध्यापन के लिए सही युक्ति अथवा क्रिया कौन-कौन-सी है और इसका निश्चय किस प्रकार किया जा सकता है। यह प्रश्न स्वाभाविक एवं महत्त्वपूर्ण है परन्तु साथ ही अत्यधिक सरल भी है। इसका सीधा उत्तर यह है कि जो-जो क्रियाएँ कराके व्यवहार-रूप की परीक्षा हो सकती है, उन्हीं-उन्हीं को कराके अध्ययन भी किया जा सकता है। साइकिल चलाने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की योग्यता की परीक्षा जिस-जिस प्रकार साइकिल चलवाकर ली जा सकती है, उसी-उसी प्रकार साइकिल चलवाकर साइकिल चलाना सिखाया भी जाता है ।

आजकल शिक्षा के क्षेत्र में नवीन विचारधाराओं के सन्दर्भ में मूल्यांकन (Evaluation Approach) का प्रायः जिक्र किया जाता है। मूल्यांकन प्रणाली के पाठ-सूत्रों में और हरवार्टीय पंचपदी के पाठ-सूत्रों में कुछ अन्तर है; किन्तु यह अन्तर बहुत-कुछ नाम का है, न कि रूप का। मूल्यांकन प्रणाली के पाठ-सूत्रों का क्रम निम्नलिखित ढंग से होता है—

(१) उद्देश्य, (२) व्यवहार-रूप, (३) पाठ्य-विन्दु, (४) शिक्षक के कार्य, (५) छात्र के कार्य, (६) मूल्यांकन ।

यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि शिक्षक एवं छात्र के कार्यों का क्रम मूल्यांकन विधि का कोई अपना दिव्य क्रम न होकर हरबार्टीय पंचपदी का ही क्रम रहता है। हाँ, मूल्यांकन प्रणाली का सबसे बड़ा गुण यह अवश्य है कि इसमें इस बात का मूल्यांकन कर लिया जाता है कि उद्देश्य प्राप्त हुए या नहीं। प्रत्येक पाठ को पढ़ाते समय उस पाठ के शिक्षण का कोई विशिष्ट उद्देश्य होता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर अध्यापक पढ़ाता है। यदि छात्रों ने सीखा नहीं तो पढ़ाना व्यर्थ होता है। पढ़ाने की सफलता का मूल्यांकन छात्रों के व्यवहारों में लाये गये परिवर्तनों की जाँच द्वारा किया जाता है।

1986

प्राचीन एवं नवीन पद्धतियों का समन्वय

भारत का प्राचीन काल संस्कृत भाषा का गौरव काल रहा है। उस समय संस्कृत भाषा की अत्यधिक उन्नति हुई। यह उन्नति शिक्षकों एवं छात्रों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हुई। उस समय अध्ययन का प्रारम्भ उपनयन-संस्कार के बाद होता था। छात्र आचार्य के पास जाता था तो आचार्य उसे गायत्री मन्त्र का उपदेश देकर विद्याध्ययन कराता था। विद्यार्थी नियम से उठते थे और प्रतिदिन अध्ययन करते थे। जिसे आज इकाई-योजना (Unit Plan) या अभिक्रमित अधिगम (Programme Learning) कहा जाता है, उसका व्यवहृत रूप उस समय देखा जा सकता था। अध्यापक छात्र पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देता था। जहाँ पर नालन्दा विश्व-विद्यालय के बड़े-बड़े कक्ष थे, वहाँ पर झोंपड़ियों में भी विश्वविद्यालय स्थापित थे। व्यक्तिगत शिक्षा पर विशेष बल था।

प्राचीन प्रणाली में स्मृति पर अधिक जोर था। आजकल छात्र की रुचि का विशेष ध्यान रखा जाता है। दोनों प्रणालियों के समन्वय की आवश्यकता है। संस्कृत भाषा का ज्ञान तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक कि छात्र स्मरण करने में पटु न हों। यदि स्मरण करने वाली सामग्री को अध्यापक अपनी सरल शिक्षण-विधि द्वारा रोचक बना दे तो छात्र को याद करने में भी सरलता होगी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तर्क-संग्रह में विचारों को ग्रहण करने का सुन्दर विवेचन किया गया है। उसमें निम्नलिखित सोपानों का वर्णन किया है—

(१) प्रतिज्ञा (Proposition), (२) हेतु (Cause), (३) उदाहरण (Example), (४) तुलना (Comparison), (५) निगमन (Conclusion)।

किसी भी विचार को ग्रहण करने में इन पाँच सोपानों का प्रयोग होता था। इन पाँचों सोपानों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि ये हरबार्टीय पञ्चपदी से भी अधिक वैज्ञानिक सोपान हैं।

हरबार्टीय पञ्चपदी में हम प्राचीन एवं नवीन का समन्वय पाते हैं। विचारों को समझने में जिन सोपानों का प्राचीन भारतीय आचार्यों ने वर्णन किया है, उसी को हेर-फेर के साथ हरबार्टीय पञ्चपदी में भी कहा गया है। अतः यह प्रश्न निरर्थक-सा हो जाता है कि संस्कृत शिक्षा में प्राचीन पद्धति का प्रयोग किया जाय या नवीन का।

आजकल प्रश्नोत्तर प्रविधि पर अधिक बल दिया जाता है; किन्तु इस प्रविधि का प्रयोग पहले भी होता था। उपनिषदों में प्रश्नोत्तर प्रणाली का प्रायः उल्लेख मिलता है। प्रश्नोपनिषद् में तो प्रश्न हैं ही, अन्य औपनिषदिक उपाख्यानों में भी प्रश्नोत्तर प्रणाली अपनायी गयी है। श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय के ३४वें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन प्ररिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

इस श्लोक में भी प्रश्न के द्वारा ज्ञान-प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

कहानी-कथन पहले खूब प्रचलित था। प्रतिदिन आचार्य अपने शिष्यों को पुराणों की कथाएँ सुनाता था। आज भी कहानी-कथन को एक मनोवैज्ञानिक युक्ति स्वीकार किया गया है।

व्यक्तिगत शिक्षण (Individual Teaching) की ओर आज लोगों का ध्यान विशेष रूप से जा रहा है। पहले व्यक्तिगत शिक्षण ही प्रचलित था।

इन सब बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि न तो नवीन प्रणाली ही सर्वथा दोषमुक्त है, न प्राचीन ही। दोनों का समन्वय करके अध्यापक को पढ़ाना चाहिए। न तो प्राचीन के प्रति और न ही नवीन के प्रति अनावश्यक आसक्ति होनी चाहिए। जिस प्रणाली में जो अच्छा हो, उसे अवश्य ग्रहण करना चाहिए। इसी आशय के विचार निम्नलिखित श्लोक में भी प्रकट किये गये हैं—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७ | ध्वनि-विचार

संस्कृत भाषा में ध्वनि-शास्त्र पर बड़ी सूक्ष्मता से विचार किया गया है। आज अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में ध्वनि-विज्ञान (Phonetics) की कुछ चर्चा सुनाई पड़ती है किन्तु संस्कृत भाषा में ही सर्वप्रथम ध्वनि का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। संस्कृत के विद्वानों ने जिस सूक्ष्मता से ध्वनियों का वर्गीकरण एवं स्थान आदि का निर्देश किया गया है, उससे उनकी प्रतिभा का पता लगता है।

वाणी के रूप

वाणी के चार रूप बताये गये हैं—

(१) परा, (२) पश्यन्ती, (३) मध्यमा, (४) वैखरी।

परा स्वयं सरस्वती है। वाक्ब्रह्म का नाम परा कहा गया है। परा रूप ही अन्य रूपों का आधार है। अन्य तीन रूपों का आविर्भाव उसी परा रूप से हुआ। परा का कुछ प्रकाशित रूप पश्यन्ती है, किन्तु पश्यन्ती भी अत्यन्त सूक्ष्म है। इस स्तर पर भी वाणी का विभाग वर्णों में नहीं है। यह 'परा' का विकृत रूप है। यह परा एवं मध्यमा को तटस्थ भाव से देखती है अतः इसे पश्यन्ती कहा गया है। मध्यमा से भी ध्वनियों का प्रकाशन नहीं है। यह मानसिक वर्णोच्चारण की अवस्था है। पश्यन्ती एवं वैखरी के बीच में स्थित होने के कारण ही यह मध्यमा है। वैखरी परा वाणी का प्रकट रूप है। इसी स्वरूप में वाणी की अभिव्यक्ति होती है, ध्वनियों का उच्चारण होता है। शब्द-समूह वैखरी के अन्तर्गत आते हैं। वैखरी वाणी के अन्तर्गत वर्णों का उच्चरित रूप होता है। यह वर्णोच्चारण किस प्रकार होता है, यह भी जानना आवश्यक है।

वर्णोद्भव

महामुनि पाणिनि ने वर्णों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार किसी भी वर्ण का उच्चारण करने के पहले

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मा बुद्धि के साथ संयोग स्थापित करती है और अर्थ का पूर्व ज्ञान प्राप्त कर लेती है। क्या कहा जायगा और किस अर्थ में कहा जायगा, इसका ज्ञान शीघ्रता से आत्मा प्रज्ञा के साथ मिलकर प्राप्त कर लेती है। जब आत्मा को अर्थ का ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो आत्मा मन को बोलने के लिए प्रेरित करती है। मन में जब बोलने की इच्छा हो उठती है तब मन जठराग्नि को क्रियाशील करता है। यह जठराग्नि नाभि से नीचे मणिपुर चक्र में स्थित होती है। जब जठराग्नि क्रियाशील होती है तो वह नाभि में स्थित समान वायु को प्रेरित करती है। कुछ लोगों के अनुसार नाभि में प्राणवायु क्रियाशील होती है। इसके पश्चात् प्रेरित हुई यह वायु ऊपर उठती है और हृदय में आकर ध्वनि उत्पन्न करती है। यह प्रारम्भिक गम्भीर ध्वनि है और गायत्री मन्त्र में इसी ध्वनि का प्रयोग करने को कहा गया है। फिर वह वायु और ऊपर उठकर कण्ठ में ध्वनि उत्पन्न करती है। यह ध्वनि मध्यम होती है और त्रिष्टुप्छन्दों के उच्चारण में प्रयुक्त होती है। पुनः वायु और ऊपर उठकर सिर में तीव्र स्वर उत्पन्न करती है। वर्ण इसी तृतीय ध्वनि से उत्पन्न होते हैं। जब वायु सिर पर टकराकर नीचे की ओर आती है तो उसका स्पर्श दन्त, तालु, कण्ठ, मूर्द्धा आदि स्थानों से होता है। वर्णों की उत्पत्ति यहीं से होती है।

वर्णों के प्रकार

मूल रूप में वर्ण दो प्रकार के होते हैं—(१) स्वर, (२) व्यंजन।

स्वर वर्णों का उच्चारण स्वतन्त्र रूप से होता है किन्तु व्यंजन वर्णों के उच्चारण में स्वर की सहायता लेनी पड़ती है। ये वर्ण निम्नलिखित हैं—

अ	आ	आ	३	
इ	ई	ई	३	
उ	ऊ	ऊ	३	
ऋ	ॠ	ॠ	३	
ऌ	ॡ			
	ए	ए	३	
	ऐ	ऐ	३	
	ओ	ओ	३	
	औ	औ	३	
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
	य	र	ल	व
	श	ष	स	ह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चार यम (कुं खुं गुं घुं)
अनुस्वार (ं)
विसर्ग (:)
जिह्वामूलीय (⌢क) ; (⌢ख)
उपध्मानीय (⌢प) ; (⌢फ)

जिह्वामूलीय की एक ही संख्या मानी जाती है और उपध्मानीय की भी एक संख्या मानी जाती है। इस प्रकार कुछ वर्णों की संख्या ६३ है। कुछ लोग लृकार को प्लुत भी मानते हैं। यदि लृकार को प्लुत मान लिया जाय तो वर्णों की कुल संख्या ६४ हो जाती है। यही संस्कृत के वर्ण हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजी के मुख से हुई, ऐसा कहा जाता है। इनसे कम या अधिक ध्वनियों की सम्भावना ही नहीं हो सकती। संसार की सभी भाषाओं की ध्वनियों को इतने ही वर्णों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इन वर्णों में स्वर २१ हैं, स्पर्श व्यंजन वर्ण २५, अन्तस्थ व्यंजन ४, ऊष्म ४, यम ४, अनुस्वार १, विसर्ग १, जिह्वामूलीय १, उपध्मानीय १, द्विःस्पृष्ट १ हैं। इन्हें इस क्रम से नीचे दिया जा रहा है :

स्वर—अ आ आ ३, इ ई ई ३, उ ऊ ऊ ३, ऋ ॠ ॠ ३, लृ, ए ए ३, ओ ओ ३, ऐ ऐ ३, औ औ ३। (२१)

व्यंजन—स्पर्श—क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म। (२५)

यादि (१) अन्तस्थ—य र ल व	(४)
(२) ऊष्म—श ष स ह	(४)
यम—कुं, खुं, गुं, घुं	(४)
अनुस्वार—(ं)	(१)
विसर्ग—(:)	(१)
जिह्वामूलीय—(⌢क, ⌢ख)	(१)
उपध्मानीय—(⌢प, ⌢फ)	(१)
द्विःस्पृष्ट—लृ	
कुल योग—६३	

+लृ ३=६३+१=६४

ये ही वर्ण संस्कृत तथा उससे उत्पन्न अन्य भाषाओं में होते हैं, जैसा कि निम्नलिखित श्लोकों से प्रकट होता है—

त्रिषष्ठिश्चतुषष्ठिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
संस्कृते प्राकृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा॥
स्वराः विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यथाः स्मृताः॥
अनुस्वारो विसर्गश्च⌢क⌢पौ चापि पराश्रितौ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपर्युक्त वर्णों के निम्नलिखित पाँच प्रकार के भेद किये गये हैं—

१. स्वर से उत्पन्न भेद
२. काल से उत्पन्न भेद
३. स्थान से उत्पन्न भेद
४. आभ्यन्तर प्रयत्न से उत्पन्न भेद
५. बाह्य प्रयत्न से उत्पन्न भेद

स्वर से उत्पन्न भेद निम्नलिखित तीन प्रकार के हैं—

१. उदात्त, २. अनुदात्त, ३. स्वरित।

काल से उत्पन्न भेद निम्नलिखित तीन प्रकार के हैं—

१. ह्रस्व, २. दीर्घ, ३. प्लुत।

स्थान से उत्पन्न भेद निम्नलिखित हैं—

१. कण्ठ्य, २. तालव्य, ३. मूर्धन्य, ४. दन्त्य, ५. ओष्ठ्य, ६. अनुनासिक, ७. कण्ठ तालव्य, ८. कण्ठोष्ठ्य, ९. दन्तोष्ठ्य, १०. जिह्वामूलीय, ११. उरस्य।

इन वर्णों के विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण बात इनका उच्चारण-स्थान ही है। पाणिनि ने प्रत्येक वर्ण का उच्चारण की दृष्टि से स्थान निर्देशित किया है। यह कार्य बड़े ही वैज्ञानिक ढङ्ग से हुआ है और पश्चिमी ध्वनि-विज्ञानवेत्ता भी इसे देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। पाणिनि के सूत्र निम्न प्रकार हैं—

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।
एदैताः कण्ठतालु।
इचुयशानां तालु।
औदौतोः कण्ठोष्ठम्।
ऋटुरषाणां मूर्धा।
वकारस्य दन्तोष्ठम्।
लृतुलसानां दन्ताः।
जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।
उपूपध्मानीयानामोष्ठौ।
नासिकानुस्वारस्य च।
ञमङणनानां नासिका च।

उपर्युक्त सूत्रों से विदित होता है कि प्रत्येक वर्णन का उच्चारण किस स्थान से किया जाता है। इन सूत्रों से यह पता चलता है कि कुछ वर्णों का उच्चारण गले से होता है, कुछ का तालु से, कुछ का मूर्धा से, कुछ का दाँतों से, कुछ का ओष्ठ से, कुछ का नाक से, कुछ का कण्ठ और तालु दोनों से, कुछ का कण्ठ और ओष्ठ से, कुछ का दाँत और ओष्ठ से, कुछ का जिह्वामूल से और कुछ का उर से। इन स्थानों पर वायु टकराती है, जिह्वा वायु को रोक लेती है और वर्ण का उच्चारण होता है। मुख में ओष्ठ और दाँत स्पष्ट ही हैं। दाँतों से ऊपर की ओर तालु हैं, तालु से भी ऊपर मूर्धा है। कण्ठ से कुछ वर्ण निकलते हैं और कुछ ध्वनियाँ जीभ की जड़ के पास जब वायु टकराती है तब निकलती हैं। इन्हें ही जिह्वामूलीय कहा गया है। नासिका से निकलने वाली ध्वनि स्पष्ट ही है। स्थान के क्रम से सूत्र का स्पष्टीकरण निम्नलिखित होगा—

कण्ठ—अ क ख ग घ ङ ह :
तालु—इ च छ ज झ ञ य श
मूर्धा—ऋ ट ठ ड ढ ण र ष

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दन्त—ल त थ ध न ल स

ओष्ठ—उ प फ ब भ म ⌣प ⌣फ

नासिका—ञ म ङ ण न

कण्ठतालु—ए ऐ

कण्ठोष्ठ—ओ औ

दन्तोष्ठ—व

जिह्वामूल—⌣क ⌣ख

स्वर्गीय ईश्वरचन्द विद्यासागर के अनुसार कवर्ग का उच्चारण जिह्वामूल से होता है और कण्ठ से केवल अ और ह का होता है। किन्तु पाणिनि के अनुसार कवर्ग का उच्चारण कण्ठ से होता है। जिह्वामूलीय ध्वनि की ओर उन्होंने अलग से निर्देश किया है। कुछ लोगों के अनुसार जिह्वामूलीय ध्वनि का उच्चारण पहले उसी प्रकार होता था, जिस प्रकार आजकल फारसी के क, ख़, ग़, आदि वर्णों का होता है।

विसर्ग का उच्चारण कण्ठ से बताया गया है, किन्तु एक अन्य सूत्र में इस पर विशेष रूप से विचार किया गया है और विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय का उच्चारण-स्थान अपने आश्रय-वर्ण के स्थान के समान हो जाता है; जैसे—बालकः में विसर्ग का उच्चारण 'अ' के अनुसार कण्ठ है, किन्तु मुनिः में 'इ' के अनुसार तालु स्थान है। वह सूत्र निम्नलिखित हैं—

अयोगवाहाः विज्ञेया, आश्रयस्थानभागिनः।

हकार का उच्चारण-स्थान कण्ठ माना गया है, किन्तु इस पर भी निम्नलिखित श्लोक में विशेष रूप से विचार किया गया है—

हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम्।
उरस्थं तं विजानीयात्, कण्ठ्यमाहुरसंयुतम्॥

अर्थात् यदि हकार वर्णों के अन्तिम अक्षर—ङ, ञ, ण, न, म तथा अन्तस्थ वर्ण य र ल व से युक्त हो तो ह का उच्चारण-स्थान कण्ठ न होकर उर होता है। ब्राह्मण, चिन्ह आदि में ह का उच्चारण-स्थान उर ही है।

आभ्यन्तर प्रयत्न से उत्पन्न भेद निम्नलिखित हैं—

(१) स्पृष्ट, (२) ईषत् स्पृष्ट, (३) ईषत् विवृत, (४) विवृत, (५) संवृत्त।

स्पृष्ट वर्ण निम्नलिखित हैं—

क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न

प फ ब भ म, अर्थात् सभी स्पर्श वर्ण।

ईषत् स्पृष्ट वर्ण निम्नलिखित हैं—

य र ल व अर्थात् सभी अन्तःस्थ वर्ण।

ईषत् विवृत्त वर्ण निम्नलिखित हैं—

श ष स ह, अर्थात् सभी ऊष्म वर्ण।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विवृत्त वर्ण निम्नलिखित हैं—

अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ, अर्थात् सभी स्वर।

प्रयोग में ह्रस्व अकार संवृत भी होता है। ह्रस्व इकार तथा उकार भी संवृत कहे जा सकते हैं।

वाह्य प्रयत्न से उत्पन्न भेद निम्नलिखित हैं—

(१) विवार, (२) संवार, (३) श्वास, (४) नाद, (५) घोष, (६) अघोष, (७) अल्पप्राण, (८) महाप्राण, (९) उदात्त, (१०) अनुदात्त, (११) स्वरित।

सभी स्वर उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित हो सकते हैं, 'ह' वर्ण महाप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। 'श ष स' महाप्राण तो हैं, किन्तु विवार, श्वास और अघोष हैं। वर्णों के प्रथम व द्वितीय वर्ण अल्पप्राण, महाप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। वर्णों के तृतीय तथा पंचम वर्ण अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। वर्णों के चतुर्थ वर्ण महाप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। 'य र ल व' अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष वर्ण हैं।

आभ्यन्तर प्रयत्न उस समय होता है, जब किसी ध्वनि का उच्चारण करते समय जिह्वा मुख के भीतर स्पर्श या संघर्ष करती है। इसीलिए कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग को स्पर्श वर्ण कहा जाता है और आभ्यन्तर प्रयत्न की दृष्टि से वे स्पृष्ट वर्ण हैं। अन्तस्थ वर्ण अर्द्ध स्पर्श वर्ण हैं, अर्थात् वे आधे स्वर और आधे व्यंजन हैं। इसीलिए उन्हें ईषत् स्पृष्ट कहा गया है। श, ष, स, ह के उच्चारण करने में एक प्रकार का घर्षण होता है। इसलिए उन्हें ऊष्म वर्ण कहते हैं। इन वर्णों के उच्चारण में हवा को अन्दर से फेंका जाता है और मुखद्वार थोड़ा-सा खुला रहता है तथा स्वर-यंत्र पर रगड़ उत्पन्न होती है, इसीलिए इन्हें ईषत् विवृत कहा जाता है। स्वरों के उच्चारण में जीभ की विशेष सहायता नहीं ली जाती है और हवा को अन्दर से फेंककर इनका उच्चारण किया जाता है। मुखद्वार खुला रहता है। इसीलिए इन्हें विवृत कहा गया है। संवृत वर्णों के उच्चारण में स्वर-यंत्र बहुत कम खुला रहता है।

बाह्य प्रयत्न और आभ्यन्तर प्रयत्न में अन्तर है। बाह्य प्रयत्न यह इङ्गित करता है कि वर्ण का उच्चारण करते समय उसे कितनी साँस के साथ ध्वनित करके मुख के बाहर निकालना पड़ता है। इनके भेदों का वर्णन ऊपर किया गया है। अल्पप्राण और महाप्राण विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। जिन व्यंजनों में कुछ हकार की ध्वनि सुनाई देती है, वे महाप्राण और शेष अल्पप्राण हैं। अघोष और घोष भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जिनकी ध्वनि गम्भीरता के साथ निकलती है, उन्हें घोष और जिनकी ध्वनि कुछ कोमलता से निकलती है, उन्हें अघोष कहा गया है।

वाह्य प्रयत्न से स्वर पर भी प्रभाव पड़ता है, या यों कहिए कि स्वर भी एक प्रकार से वाह्य प्रयत्न है। इसीलिए उदात्त, अनुदात्त और स्वरित की वाह्य प्रयत्न-कृत भेदों में भी रखा गया है और स्वरकृत भेदों में भी। उदात्त में हम वर्णों का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्चारण उच्च स्वर से करते हैं, अनुदात्त में मन्द स्वर से और स्वरित में मध्यम स्वर से, अर्थात् न अधिक मन्द और न अधिक तीव्र स्वर से। कालकृत भेदों का भी वर्णन किया गया है। एक मात्रा के उच्चारण में या सामान्य रूप से एक ध्वनि के उच्चारण में कितना समय लगता है, इसके आधार पर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेद किये गए हैं। ह्रस्व में एक वर्ण शीघ्रता से उच्चारण किया जाता है। दीर्घ वर्ण दो ह्रस्व वर्णों की मात्रा का समय लेता है और प्लुत में कम से कम तीन या अधिक ह्रस्वों का समय लगता है।

संस्कृत वर्णमाला

पाणिनीय शिक्षा के अनुसार जिन ६३ या ६४ ध्वनियों की ऊपर चर्चा की गयी है, वे सभी ध्वनियाँ लौकिक संस्कृत में नहीं प्रयुक्त होतीं। धीरे-धीरे कुछ ध्वनियों का प्रयोग कम होता गया; उदाहरणार्थ, प्लुत स्वरों का प्रयोग वेदमन्त्रों के ही उच्चारण में होता है, लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग उठ-सा गया और सभी वर्ण ह्रस्व या दीर्घ रूप में ही प्रयुक्त होने लगे।

यही हाल लृकार का है। प्लुत लृकार तो वैदिक संस्कृत में भी विकल्प से स्वीकार किया गया है। लृकार का प्रयोग वैदिक संस्कृत में भी बहुत कम है। लौकिक संस्कृत में तो इसका प्रयोग एक प्रकार से नहीं होता है। इस लृ को स्वर माना गया है। इसका उच्चारण किस प्रकार किया जाता था, इसके विषय में कोई निश्चित आधार नहीं मिलता। कुछ विद्वानों के अनुसार इसका उच्चारण अंग्रेजी शब्द 'बॉट्ल' या 'लिट्ल' के ल् की तरह होता था। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का भी प्रयोग वैदिक संस्कृत में होता था, किन्तु लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग नहीं मिलता है।

लौकिक संस्कृत की वर्णमाला में निम्नलिखित वर्ण हैं—

अ,	इ,	उ,	ऋ,	लृ,	ए,	ऐ,	ओ,	औ,
क,	ख,	ग,	घ,	ङ,	च,	छ,	ज,	झ,
ञ,	ट,	ठ,	ड,	ढ,	ण,	त,	थ,	द,
ध,	न,	प,	फ,	ब,	भ,	म,	य,	र,
ल,	व,	श,	ष,	स,	ह,	(ं)	(ः)	(ँ)

लृ के विषय में ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। ऋ भी संस्कृत में स्वर के रूप में प्रयुक्त है। आज 'ऋ' का उच्चारण उत्तर भारत में 'रि' के रूप में होता है और दक्षिण भारत में 'रु' के रूप में। अमृताञ्जन, कृष्ण, भर्तृहरि, ऋषि का उच्चारण उत्तर भारत में लोग अम्रितांजन, क्रिष्ण, भर्त्रिहरि रिषि की भाँति करते हैं तो दक्षिण भारतीय विद्वान् इन शब्दों को अम्रुताञ्जन, क्रुष्ण, भर्त्रुहरि और रुषि कहते हैं। प्राकृत और पालि में 'ऋ' का प्रयोग नहीं मिलता। इन भाषाओं में ऋ के स्थान पर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उ, इ, या अ हो जाता है। ऋषि को इन भाषाओं में 'इसि' कहते हैं। ऐसी दशा में यह भी भ्रम होता है कि ऋ में रकार ध्वनि थी या नहीं किन्तु महाभाष्य में पतञ्जलि ने 'ऋ' में रकार ध्वनि का संकेत दिया है अतः ऋ में रकार ध्वनि तो होगी, किन्तु वह इकारान्त या उकारान्त नहीं होगी। ऋकार का उच्चारण सम्भवतः र में थोड़ा-सा एकार लगाकर रही होगी। इस तरह कृष्ण का उच्चारण सम्भव है क्रेष्ण तथा भर्तृहरि का उच्चारण भर्त्रेहरि की भाँति रहा हो।

लौकिक संस्कृत में ह्रस्व 'अ' का उच्चारण संवृत होता है, किन्तु वैदिक काल के पूर्वार्द्ध में इसका उच्चारण विवृत होता था।

'ष' का उच्चारण कुछ संस्कृत के पंडित 'ख' की भाँति करते हैं, किन्तु यह अशुद्ध है।

'ए' संध्यक्षर है और इसका उच्चारण प्राचीन काल में अइ की भाँति होता था। आजकल हिन्दी में इसका उच्चारण दो स्वरों के रूप में न होकर एक ही स्वर के रूप में होता है और एक को अइक न पढ़कर एक ही पढ़ते हैं।

'ओ' का भी यही हाल है। आजकल 'ओ' एक स्वर के रूप में उच्चरित होता है, किन्तु प्राचीन काल में इसका उच्चारण अउ की भाँति होता था और इसे संध्यक्षर माना गया था।

'ऐ' भी संध्यक्षर है और इसका प्राचीन उच्चारण आइ के रूप में था, किन्तु आजकल इसका उच्चारण अइ या अए के रूप में होने लगा है।

'औ' का प्राचीन उच्चारण आउ है, किन्तु आजकल यह अउ अथवा अओ के रूप में उच्चरित होता है।

प्राकृत में भी 'ऐ' का अइ और 'औ' का अउ हो जाता है। हिन्दी में इनका उच्चारण सम्भवतः प्राकृत से इन रूपों में आया हो।

लौकिक संस्कृत में ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' नहीं मिलते, किन्तु वैदिक संस्कृत में ह्रस्व ए और ओ का उच्चारण था, जैसा कि महाभाष्य के निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होता है :—

ननु चैङ संस्थानतरावर्द्ध एकारोऽर्द्ध ओकारः। न तौ स्तः। यदि तौ स्यातां तावेवायमुपदिशेत। ननु च भोश्छन्दोगानां सात्यमुग्रिराणनीया अर्द्धमेकारमर्द्ध-मोकारं चाधीयते। "सुजाते ए अश्वसूनृते।" "अध्वर्यो ओ अद्रिभिः सुतम्।" "शुक्रं ते ए अन्यत्।" "यजतं ते ए अन्यत्।" इति।

क्ष, त्र और ज्ञ संयुक्त वर्ण हैं। त्र के उच्चारण में तो अशुद्धि नहीं होती किन्तु क्ष और ज्ञ के उच्चारण प्रायः अशुद्ध किये जाते हैं। 'क्ष' की रचना क् + ष से होती है और 'ज्ञ' की रचना ज् + ञ से होती है। 'क्ष' का उच्चारण प्रायः 'क्छ' के रूप में छात्र कर बैठते हैं और ज्ञ का ग्य, ग्यँ, द्न्य के रूप में पंजाब, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र में विद्वान् लोग भी उच्चारण करते हैं। गुजरात में इसे 'ग्न' की भाँति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बोलते हैं। अक्षरों की रचना स्पष्ट है और इसमें भ्रम की गुंजाइश नहीं है। यथा-सम्भव इनका उच्चारण 'क्ष' और 'ज्ञ, के रूप में करना चाहिए।

'ञ' वर्ण स्वर वर्णों से किसी शब्द में नहीं मिलता। अञ्जन, चञ्चल आदि शब्दों में वह व्यंजनों से संयुक्त है किन्तु वहाँ पर भी आजकल उसका उच्चारण अनुस्वार और न की भाँति होने लगा है और अंजन, अञ्जन तथा अन्जन एवं चंचल, चन्चल तथा चञ्चल के उच्चारण में समानता-सी दिखाई पड़ती है, किन्तु ङ, ञ, ण, म तथा न के शुद्ध उच्चारणों की रक्षा होनी चाहिए।

संस्कृत की वर्णमाला ही दो-एक वर्णों के हेर-फेर के साथ हिन्दी में स्वीकृत हुई है। ये ध्वनियाँ तो दिव्य हैं, अक्षय हैं किन्तु इन ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए जो लिपि अपनायी गयी है, वह भी महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इस लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें वर्णों के नाम और उच्चारण एक ही हैं। 'क ख ग घ' अक्षरों का जो नाम है वही इनका उच्चारण भी है। अन्य लिपियों में यह विशेषता नहीं है। उदाहरणार्थ, रोमन लिपि में A B C D E अक्षर लिखे जाते हैं जिनके नाम 'ए बी सी डी ई' हैं किन्तु उनका उच्चारण 'अ ब स द इ' की भाँति होता है। इसीलिए जब हम किसी का नाम के० पी० सिंह जानते रहते हैं और जब बाद में हमें बताया जाता है कि उनका नाम 'क्षेत्रपालसिंह' है तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है। यू० एन० ओ०, सीटो, सेण्टो, नेफा, यूनेस्को आदि शब्द वर्णों के नाम के आधार पर बना लिए गये हैं, जिनका उनके असली नाम के उच्चारण से कोई सम्बन्ध नहीं है।

देवनागरी लिपि की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें एक ध्वनि के लिए एक ही लिखित रूप स्वीकार किया गया है। रोमन लिपि की भाँति यह नहीं है कि 'क' ध्वनि व्यक्त करने के लिए C, K, Ch, Q जैसे अनेक लिपि प्रतीक हों, देवनागरी में यदि 'ख' लिखना है तो वह इसी 'ख' प्रतीक के रूप में लिखा जायगा। इस लिपि में एक प्रतीक से एक ही ध्वनि निकलती है। यह इस लिपि की तीसरी विशेषता है। जैसे 'उ' प्रतीक से 'उ' ध्वनि निकलती है, अन्य नहीं। रोमन लिपि में u प्रतीक से But में 'अ', Put में 'उ', Unit में 'यू' तथा Babu में 'ऊ' की ध्वनियाँ निकलती हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८ उच्चारण-शिक्षण

उच्चारण का महत्त्व

संस्कृत में शुद्ध उच्चारण का विशेष महत्त्व है। शिक्षा नामक वेदाङ्ग उच्चारण की विद्या से ही सम्बद्ध है। अन्य भाषाओं में भी उच्चारण को महत्त्वपूर्ण माना गया है, किन्तु शुद्धोच्चारण की जितनी महत्ता संस्कृत में है उतनी अन्य भाषाओं में नहीं है। महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में यहाँ तक लिख दिया है कि 'एको शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति' अर्थात् एक भी शब्द अच्छी तरह जाना हुआ और अच्छी तरह प्रयोग किया हुआ, इस लोक एवं परलोक में इच्छाओं की पूर्ति करने वाला होता है।

वेदाध्ययन में उच्चारण का विशेष महत्त्व था, इसलिए वेदों को गुरु अपने शिष्य को व्यक्तिगत रूप से पढ़ाता था। पाणिनि में लिखा है—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रु : स्वरतोऽपराधात्॥

अर्थात् स्वरों एवं वर्णों के शुद्ध उच्चारण से रहित मन्त्र अर्थ का अनर्थ कर देता है। इस प्रकार का अशुद्ध मन्त्र यजमान के लिए भी वज्र की भाँति घातक होता है, जिस प्रकार इन्द्र का शत्रु स्वर से मिथ्या प्रयोग के कारण स्वयं मारा गया। इसका संकेत एक वैदिक कथा की ओर है। विश्वरूप नामक असुर त्वष्टा का पुत्र था। विश्वरूप ने अपनी कठिन तपस्या से इन्द्र का आसन विचलित कर दिया। घबड़ाए हुए इन्द्र ने विश्वरूप को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। वे सफल हुए और विश्वरूप का अन्त हो गया। इस पर त्वष्टा को बहुत शोक एवं क्रोध हुआ। अतः त्वष्टा ने एक अभिचारिक यज्ञ किया। इस यज्ञ में पुरोहितों ने 'इन्द्रशत्रुर्विवर्द्धस्व' (इन्द्र के शत्रु अर्थात् वृत्रासुर की वृद्धि हो) मन्त्र का उच्चारण करके यज्ञ में आहुति दी। 'इन्द्रशत्रु' समस्त पद है। इसका समास-विग्रह दो प्रकार से हो सकता है—एक तो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'इन्द्र का शत्रु' और दूसरा 'इन्द्र ही हो शत्रु जिसका'। प्रथम विग्रह के अनुसार यह षष्ठी तत्पुरुष समास होगा और द्वितीय विग्रह के अनुसार बहुव्रीहि समास होगा। प्रथम के अनुसार वृत्रासुर की वृद्धि की कामना है किन्तु दूसरे के अनुसार इन्द्र की ही वृद्धि की कामना है। इस समस्त पद में निहित दोनों अर्थ उच्चारण के भेद से हो जायेंगे। पहली दशा में मन्त्र का उच्चारण 'इन्द्रशत्रुर्विवर्द्धस्व' के रूप में होगा और दूसरी में 'इन्द्रशत्रुर्विवर्द्धस्व' होगा। दूसरे उच्चारण में इन्द्र पर अधिक बल दिया गया है। पुरोहितों ने दूसरे अर्थ के अनुसार ही मन्त्र-पाठ किया जिससे यज्ञ के अन्त में वृत्रासुर नामक असुर का आविर्भाव तो हुआ, किन्तु इन्द्र ने अन्त में उसको मारने में सफलता प्राप्त कर ली।

शुद्ध उच्चारण की महत्ता दर्शाने वाला एक अन्य श्लोक संस्कृत में बहुत प्रचलित है। वह श्लोक इस प्रकार है—

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत, सकलं शकलं सकृच्छकृत्॥

इस श्लोक में पिता पुत्र से कहता है कि हे पुत्र! यद्यपि तुमने बहुत अध्ययन कर लिया है तथापि अब व्याकरण पढ़ो। यदि तुम व्याकरण पढ़ लोगे तो 'स्वजन' के स्थान पर 'श्वजन', 'सकल' के स्थान पर 'शकल' और 'सकृत्' के स्थान पर 'शकृत्' का उच्चारण न करोगे।

इस श्लोक में उच्चारण-भेद से ही अर्थ का अनर्थ दिखाया गया है। 'स' और 'श' के उच्चारण में छात्र प्रायः भूल सकते हैं। किन्तु इस भूल से अर्थ ही बदल जाता है। स्वजन का अर्थ आत्मीय लोग है तो श्वजन का अर्थ है कुत्ते लोग; सकल सम्पूर्ण के लिए आता है तो शकल खण्ड के लिए और सकृत् का अर्थ एक बार है तो शकृत् का अर्थ है विष्टा।

पाणिनि ने भी शुद्ध उच्चारण की महत्ता को निम्नलिखित श्लोकों में व्यक्त किया है—

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः नाऽव्यक्ताः न च पीड़िताः।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते॥
सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नायं सुव्यवस्थितम्।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते॥

अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति भी सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित, सुस्वर एवं सुप्रयुक्त वर्णों से होती है, अतः वर्णों का प्रयोग अव्यक्त या पीड़ित न हो।

वर्णोच्चारण

वर्णों का उच्चारण किस प्रकार हो, इसके विषय में पाणिनीय शिक्षा में पाणिनि ने बताया है—

व्याघ्री यथाऽहरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोजयेत्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् जिस प्रकार बाघिन अपने बच्चों को मुँह में लेकर चलते समय इस बात का ध्यान रखती है कि न तो बच्चों को दाँत चुभें और न ही वे मुँह से गिर पड़ें, इसी प्रकार वर्णों का उच्चारण करते समय उनका स्थानादि ठीक हो और स्पष्ट स्वरित हों, किन्तु ऐसा न हो कि अक्षर मुँह के अन्दर ही रह जायँ या फिर बाहर गिरे हुए दिखाई पड़ें।

इसी बात को महर्षि याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार कहा है—

मधुरं च न चाव्यक्तं व्यक्तं चापि न पीडितम्।
स नाथस्यैकदेकस्य न वर्णाः संकर गताः॥
यथा सुमतो नागेन्द्रः पदात्पदं निधापयेत्।
एवं पदं पदाद्यतं दर्शनीयं पृथक् पृथक्॥

अर्थात् वर्णों का उच्चारण मधुर हो तथा व्यक्त (स्पष्ट) हो। व्यक्त होते हुए भी अन्य वर्णों से प्रभावित न हो। सभी वर्णों का उच्चारण इस प्रकार किया जाय कि वे एक-दूसरे से मिले हुए न प्रतीत हों। जिस प्रकार मदमत्त गज एक पैर रखने के पश्चात् बड़ी सावधानी से दूसरा पैर रखता है, उसी प्रकार एक पद बोलने के पश्चात् दूसरे पद को बड़ी सावधानी से बोला जाय जिससे सभी पद स्पष्ट हों और पृथक् रूप से दर्शनीय हों।

पदोच्चारण

कभी-कभी पदों के उच्चारण में स्पष्टता का ध्यान न रखने के कारण या किसी पद पर अनभीष्ट बलाघात करने देने के कारण अर्थ में परिवर्तन हो जाता है; उदाहरणार्थ, निम्नलिखित संस्कृत वाक्य का उच्चारण करना है—

स: फलं खादति।

इस वाक्य में यदि स: का उच्चारण व्यक्त न हुआ और आगे के वर्ण से प्रभावित हो गया तो सम्भव है कि विसर्ग का लोप हो जाय और 'स: फलं' के स्थान पर 'सफल' हो जाय। किसी पद पर विशेष बलाघात करने से अर्थ बदल जाता है। जैसे, यदि स: पर बल दे दिया जाय तो अर्थ होगा कि वही व्यक्ति फल खा रहा है, कोई अन्य व्यक्ति नहीं। स: पर ही बल तो दिया जाय किन्तु कुछ कम, तो पूरा वाक्य प्रश्नसूचक बन जायगा और अर्थ होगा कि क्या वह फल खाता है। यदि फल पर बल दिया जाय तो अर्थ बदल जायगा और तात्पर्य यह निकलेगा कि वह फल ही खा रहा है, कोई अन्य पदार्थ नहीं। यदि खादति पर बलाघात हो तो अर्थ निकलेगा कि वह फल को खा रहा है, कुछ और नहीं कर रहा है। इसीलिए याज्ञवल्क्य ने हाथी की चाल का उदाहरण दिया है; अर्थात् सामान्य अर्थ में एक पद के बाद दूसरा पद स्पष्ट रूप से बोला जाय, ताकि किसी पद पर अनभीष्ट बलाघात न हो जाय।

उच्चारण-दोष

वर्णों का उच्चारण किस प्रकार न करना चाहिए; इस पर भी विचार किया गया है। इस सन्दर्भ में पाणिनि का अग्रलिखित श्लोक हमारा मार्गदर्शन करता है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपांशुद्रष्टं त्वरितं निरस्तं,
विलंबितं गद्‌गदितं प्रगीतम् ।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च,
वदेन्नदीन न तु सानुनास्यम् ।

अर्थात् वर्णों का उच्चारण निम्नलिखित ढंग से करना उचित नहीं है—

(१) जीभ दवाकर उच्चारण करना और वर्णों को मुख में काट देना ।
(२ त्वरित, अर्थात् वर्णों को बड़ी जल्दी-जल्दी बोलना ।
(३) निरस्त, अर्थात् वर्णों को फेंकता हुआ बोलना ।
(४) विलम्बित, अर्थात् रुक-रुक कर बोलना ।
(५) गद्‌गदित, अर्थात् गद्‌गद स्वर में बोलना ।
(६) प्रगीत, अर्थात् गा-गा कर बोलना ।
(७) निष्पीडित, अर्थात् तुतलाकर एवं मुख के भीतर ही बुदबुदाते हुए बोलना या वर्णों को पीड़ित करना ।
(८) ग्रस्तपदाक्षर, अर्थात् अक्षरों व पदों को बीच में खा जाना या अपूर्ण उच्चारण करना ।
(९) दीन, अर्थात् दीनता के स्वर में बोलना ।
(१०) सानुनास्य, अर्थात् सभी वर्णों को नाक से मिमियाकर बोलना ।

शुद्धोच्चारण की सामर्थ्य

उपर्युक्त दस लक्षण वर्णों के अशुद्ध उच्चारण के हैं । इन दसों को दूर करना आवश्यक है । पाणिनीय शिक्षा में इस बात की ओर भी संकेत किया है कि किस प्रकार के पुरुष शुद्धोच्चारण करने में समर्थ हैं । उच्चारण में कुछ शारीरिक अंगों की आकृति एवं उच्चारणकर्त्ता की प्रकृति का भी प्रभाव पड़ता है । इसी बात को पाणिनीय शिक्षा में इस प्रकार कहा गया है—

प्रकृतिर्यस्य कल्याणी दन्तोष्ठौ यस्त शोभना ।
प्रगल्भश्च विनीतश्च स वर्णान् वक्तुमर्हति ॥

अर्थात् जिसकी प्रकृति अच्छी है या जिसकी संवेगात्मक दशा सन्तुलित है, जिसके दाँत और ओष्ठ अच्छे हैं, जो उच्चारण करने में प्रगल्भ है, जो विनयी है, और वर्णों का उचित उच्चारण कर सकता है । इसीलिए कहा गया है कि प्रसन्नचित्त होकर तथा चेष्टाओं पर नियन्त्रण करके उच्चारण करना चाहिए । इसी सन्दर्भ में महर्षि पाणिनि का दूसरा श्लोक देखिए—

न करालो न लम्बोष्ठो नाव्यक्तो नानुनासिकः ।
गद्‌गदो बद्धजिह्वश्च न वर्णान् वक्तुमर्हति ॥

अर्थात् जिसकी आकृति भयंकर है, ओष्ठ लम्बे हैं, जो नाक से बोलता है, जो अत्यधिक भावुक है और गद्‌गद् हो जाता है और जिसकी जीभ बँधी हुई है, ऐसा व्यक्ति वर्णों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाता ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्चारण की शिक्षा

छात्रों को उच्चारण की विधिवत् शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे वर्णों का स्थान, प्रयत्न आदि जानकर शुद्ध उच्चारण कर सकें। स्थान, प्रयत्न आदि के सम्यक् ज्ञान के अभाव में छात्र ऋ, ज्ञ, श, ऐ, औ, क्ष, त्र, ष, द्य, व आदि वर्णों का उच्चारण अशुद्ध करते हैं और अर्थ का अनर्थ कर देते हैं।

वर्णों के अशुद्ध उच्चारण में पदों का भी उच्चारण अशुद्ध हो जाता है। कमी उदात्त-अनुदात्त स्वरित में तथा ह्रस्व और दीर्घ में भी भ्रम हो जाता है। इनकी ओर भी छात्रों को प्रारम्भ में ही बता दिया जाय तो अच्छा रहेगा। शब्दों के उच्चारण में कभी-कभी किसी वर्ण के उच्चारण का शीघ्रतावश लोप हो जाता है। यह प्रारम्भिक छात्रों में सामान्य दोष रहता है। इस प्रकार भारतीय, पर्वतीय, उद्देश्य आदि को वे भारती, पार्वती, उद्देश्य की भाँति कहने लगते हैं। कभी-कभी छात्र बीच के भी किसी अक्षर का लोप कर देते हैं, जैसे अध्ययन को अध्यन कह देते हैं। लोप की ही भाँति कभी-कभी शब्द के आदि में किसी वर्ण का आगम भी कर लेते हैं। स्पष्ट को अस्पष्ट, स्थान को अस्थान, स्पर्श को अस्पर्श, स्नान को अस्नान कहने में छात्र 'अ' का आगम कर लेते हैं जो अशुद्ध है। कभी-कभी कोई छात्र वर्णों का लोप या आगम न करके विद्यमान वर्णों के स्थानों में परिवर्तन कर देता है। ब्राह्मण को ब्राह्मण, ब्रह्म को ब्रम्ह तथा विशेषण को विषेशण कहने में छात्र वर्ण-विपर्यय की अशुद्धि कर देता है।

पदों के उच्चारण के उपर्युक्त दोषों से छात्रों को बचाना चाहिए। पदों पर कभी-कभी अनावश्यक बल दे दिया जाता है जिससे समूचे वाक्य का अर्थ बदल जाता है। पीछे 'सः फलं खादति' का उदाहरण लेकर इस बात को स्पष्ट किया गया है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्णों, पदों एवं वाक्यों की सार्थकता तभी है जबकि वे शुद्ध रूप से उच्चरित हों, अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो जाने का भय बना रहता है।

ङ, ञ, ण, न्, म् को प्रायः (ं) अनुस्वार रखकर लिख दिया जाता है। मुद्रण की सुविधा की दृष्टि से प्रायः संगम, चंचल, पंडित, संतान, संभव, संबंध लिखा जाता है, किन्तु उच्चारण की दृष्टि से इनमें ऊपर का अनुस्वार एक-सा नहीं है। संगम और संतान को एक-दो बार कहकर पाठक स्वयं इसका अन्तर पहचान लेंगे, उच्चारण सङ्गम, सन्तान की ही भाँति होता है; संगम या सङ्तान कहना भी कठिन है। इसी प्रकार सम्बन्ध शब्द को देखिये। इससे दोनों अनुस्वारों का उच्चारण भिन्न है। इसे सम्बन्ध कहना शुद्ध होगा, न कि सम्बन्ध या सन्बम्ध। इस प्रकार के दोषों की ओर छात्रों का ध्यान प्रारम्भ में ही दिला देना चाहिए।

शिक्षक को चाहिए कि बड़े धैर्य से बालक के अशुद्ध उच्चारण के दोष को दूर करके उसे शुद्ध एवं स्पष्ट ढंग से बोलना सिखाये। इस दिशा में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संस्कृत के अध्यापक का स्वयं का उच्चारण शुद्ध और यथासम्भव छात्र को अन्य विषय पढ़ाने वाले शिक्षकों का उच्चारण भी स्पष्ट एवं शुद्ध हो। शुद्ध उच्चारण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बहुत कुछ अनुकरण से आता है। यदि बालक वर्णों एवं पदों का शुद्ध उच्चारण सुनता रहता है तो वह भी शुद्ध उच्चारण करने लग जाता है। यदि वह अशुद्ध एवं अस्पष्ट उच्चारण अपने गुरुओं से ही सुनता है तो वह भी अशुद्ध बोलने लगता है। शुद्ध उच्चारण की दिशा में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना लाभदायक होगा—

१. छात्र ज्यों ही अशुद्ध उच्चारण करे, उसे तत्काल रोका जाय और शुद्ध उच्चारण बताया जाय।

२. वर्णों के उच्चारण-स्थानों का छात्रों को ज्ञान करा देना लाभदायक होगा।

३. अभ्यास मुख्य विधि है। आवृति एवं पुनरावृत्ति से छात्र को शुद्ध उच्चारण करना सिखाया जाय। अभ्यास से जीभ, जबड़े और ओठ मँज जाते हैं तथा उच्चारण सरलता से होने लगता है।

४. छात्र का बहुश्रुत होना चाहिये। यदि वह अनेक बार वर्णों को सुनेगा तो उनका उच्चारण सरलता से करेगा।

५. अध्यापकों को अपना उच्चारण भी शुद्ध रखना चाहिए।

६. गद्य पाठ, पद्य पाठ, नाटक, कहानी, द्रुत पाठ आदि सभी से कठिन शब्दों का अनुवाचन एवं उच्चारणाभ्यास पूरी कक्षा से करा लिया जाय। इससे अयोग्य विद्यार्थी भी धीरे-धीरे शुद्ध उच्चारण सीख जाते हैं।

७. किन्तु उच्चारण-शिक्षण जितना ही व्यक्तिगत होगा, उतना ही कारगर होगा, अतः छात्रों के उच्चारणों पर व्यक्तिगत ध्यान दिया जाना चाहिए।

८. केवल एक वर्ग का उच्चारणाभ्यास करना भाषा-शिक्षण-सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। भाषा में वाक्य पूर्ण इकाई है। शब्द भी सार्थक इकाई हैं। अतः सम्पूर्ण वाक्य का अथवा शब्दों का उच्चारणाभ्यास कराया जाय, न कि किसी वर्ण का। यदि व, श, ष, ऋ, ज्ञ आदि वर्णों का शुद्ध उच्चारण-ज्ञान देना है तो कम से कम इतना किया जाय कि शब्द ऐसे लिये जायँ जिनमें ये वर्ण आदि, मध्य एवं अन्त में आये हों और उन शब्दों का उच्चारणाभ्यास कराया जाय; जैसे—वन, आवश्यक, सम्भव द्वारा 'व' का; शयन, विशेषण, स्पर्श द्वारा श' का; षडानन विशेषण, वर्ष द्वारा 'ष' का; ऋषि, भर्तृहरि, कर्तृ द्वारा ऋ का तथा ज्ञान, विज्ञान एवं यज्ञ द्वारा 'ज्ञ' का उच्चारणाभ्यास कराया जाय।

९. यदि पद समस्त या संधियुक्त है तो पहले उनका समास-विग्रह या संधि-विच्छेद कर लिया जाय, तब उच्चारण का अभ्यास कराया जाय।

१०. उच्चारण-शिक्षण में शीघ्रता नहीं बरतनी चाहिये। जितने ही विलम्ब एवं धैर्य से अध्यापक अपने छात्रों का उच्चारण सिखायेगा, उतना ही अच्छा होगा।

११. यदि सम्भव हो, तो टेप-रिकार्डर की भी सहायता ली जाय।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९ | व्याकरण-शिक्षण

भारत में व्याकरण की परम्परा

भारतवर्ष में व्याकरण-शिक्षा की परम्परा की जड़ें बहुत गहरी हैं। यहाँ पर व्याकरण की शिक्षा को सदा से ही प्रमुख स्थान मिलता रहा है। वेदाङ्ग छह माने गये हैं—शिक्षा, कल्प अर्थात् कर्मकाण्ड, व्याकरण, निरुक्त, अर्थात् भाषाविज्ञान, छन्द और ज्योतिष। इन वेदाङ्गों में व्याकरण को प्रमुख स्थान दिया गया है—"प्रधानं च षडंगेषु व्याकरणम्।"

व्याकरण शब्द वि+आ+कृ धातु+ल्युट् प्रत्यय के योग से बना है। इसका आशय है, 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्द अनेनेति व्याकरणम्' अर्थात् जिसके द्वारा अर्थस्वरूप शब्द-सिद्धि हो। व्याकरण की शिक्षा के बिना बालक शुद्ध रूप से भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। इसके द्वारा भाषा को व्यवस्थित किया जाता है। व्याकरण को लक्षण-शास्त्र नहीं माना जा सकता; वस्तुतः यह लक्ष्य-शास्त्र है और इनका अध्ययन भाषा की शुद्धता के लिये किया जाता है। भाषा को व्यवस्थित करने के लिये उसका विश्लेषण आवश्यक होता है। यह विश्लेषण व्याकरण द्वारा ही सम्भव है। इसीलिये प्रसिद्ध आंग्ल-मनीषी डॉ० स्वीट ने व्याकरण को भाषा का विश्लेषण कहा है। उनके मतानुसार व्याकरण द्वारा ही भाषा-रचना का ज्ञान होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि व्याकरण की शिक्षा के बिना रचना एवं अनुवाद की शिक्षा अपूर्ण रहती है। वाक्य-रचना का आधार व्याकरण ही है। शब्द-रचना भी व्याकरण द्वारा ही सम्भव है। अतः व्याकरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

ब्रह्मा को संस्कृत का आदि ज्ञाता माना जाता है। ब्रह्मा ने व्याकरण का ज्ञान आचार्य वृहस्पति को दिया, ऐसा ऋक् तन्त्र में उल्लेख है। वृहस्पति से यह ज्ञान इन्द्र के पास पहुँचा और इन्द्र से भरद्वाज के पास। वैयाकरण के रूप में वृहस्पति का उल्लेख महाभाष्य में भी है। वृहस्पति ने प्रतिपद पाठ द्वारा इन्द्र को शब्दोपदेश किया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था। इन्द्र ने व्याकरण को संपत एवं परिमार्जित करने के लिए पदों के प्रकृति प्रत्यय आदि का विभाग किया था। इन्द्र के अनेक शिष्यों का उल्लेख है जिसमें भरद्वाज, धन्वन्तरि, कश्यप, वशिष्ठ, भृगु और अत्रि का नाम महत्त्वपूर्ण है। ऋक्तन्त्र में भरद्वाज को ही चौथा वैयाकरण बताया गया है। भगुर के पुत्र को भागुरि व्याकरण का प्रणेता माना जाता है। काशकृत्स्न ने तीन अध्यायों का एक व्याकरण लिखा था और इनके नाम का उल्लेख महाभाष्य में भी है। काशिका के अनुसार वैयाघ्रपद और माध्यन्दिनि भी वैयाकरण थे। चरक संहिता में शौनक का भी नाम आया है। गौतम का उल्लेख महाभाष्यकार ने किया है। महाभाष्यकार ने व्याडि की भी प्रशंसा की है।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में दस वैयाकरणों का उल्लेख किया है। आपिशालि बड़े प्रमुख वैयाकरण थे। अष्टाध्यायी में कश्यप का दो बार एवं गार्ग्य का तीन बार उल्लेख मिलता है। गालव का नाम पाणिनि ने चार बार लिया है। चाक्रवर्मण कश्यप के पुत्र थे और व्याकरण में इनका योगदान है। भरद्वाज का वैयाकरण के रूप में केवल एक बार उल्लेख हुआ है। अष्टाध्यायी में शाकटायन का उल्लेख तीन बार, शाकल्य का चार बार और सेनक का एक बार हुआ है। स्फोटायन का उल्लेख स्फोट सिद्धान्त के प्रवर्त्तक के रूप में हुआ है।

पाणिनि के बाद भी व्याकरण की परम्परा चलती रही। परवर्ती वैयाकरणों में कात्यायन और पतंजलि का नाम उल्लेखनीय है। कात्यायन वार्तिककार थे और पतंजलि महाभाष्यकार। बाद में भर्तृहरि और नागेश भट्ट द्वारा स्फोटवाद पर गहन चिन्तन-मनन किया गया।

संस्कृत भाषा में व्याकरण का विशेष महत्त्व है। पाणिनि की अष्टाध्यायी उच्च कोटि का व्याकरण ग्रन्थ है। पतंजलि का 'महाभाष्य', भट्टोजि दीक्षित की 'सिद्धान्त कौमुदी' इस दिशा में उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। पतंजलि ने 'महाभाष्य' में व्याकरण को 'शब्दानुशासन' कहा गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है। व्याकरण कोई काल्पनिक नियम नहीं बनाता। वह भाषा के आगे-आगे नहीं चलता। व्याकरण शब्दों का शासन नहीं करता है, वरन् उनका अनुशासन करता है। भाषा का जो प्रवाह जनसाधारण द्वारा व्यवहृत होता है, व्याकरण उस प्रवाह को व्यवस्थित करता है। वह प्रचलित भाषा के नियमों को खोज निकालता है। ध्यान रहे, वह नियमों को खोजता है, नये नियम नहीं बनाता। इसीलिए व्याकरण को शब्दानुशासन कहा गया है। किन्तु इसका तात्पर्य यही है कि व्याकरण की शिक्षा गौण है। आजकल कुछ इसी प्रकार की मनोवृत्ति दिखाई पड़ती है। लोग व्याकरण को झंझट समझते हैं। कुछ लोगों के अनुसार भाषा-ज्ञान के लिए व्याकरण की शिक्षा आवश्यक नहीं। यह मत किसी अन्य भाषा के लिए चाहे उपयोगी हो, किन्तु संस्कृत भाषा के लिए बड़ा घातक है। संस्कृत भाषा में व्याकरण का स्थान निर्विवाद है। बिना व्याकरण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के सही ज्ञान के संस्कृत भाषा का ज्ञान अपूर्ण रहेगा। अतः शुद्ध एवं परिष्कृत संस्कृत सीखने के लिए व्याकरण सीखना अनिवार्य है।

प्राचीन समय में व्याकरण की शिक्षा का बड़ा प्रचलन था। जो व्यक्ति व्याकरण का शुद्ध ज्ञान नहीं रखता था, उसे संस्कृत समाज में आदर नहीं मिलता था। कहा जाता है कि एक पण्डितजी अपनी पुत्री और एक शिष्य को साथ-साथ व्याकरण पढ़ाया करते थे। दोनों की आयु लगभग समान थी। शिष्य सुशील एवं कुलीन था अतः पण्डितजी अपनी पुत्री का विवाह उसी शिष्य से करना चाहते थे। एक दिन उन्होंने अपनी पुत्री के समक्ष जब यह प्रस्ताव रखा तब उसने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा—

यस्य षष्टी चतुर्थी च विहस्य च विहाय च।
यस्याहं च द्वितीयास्याद् द्वितीयास्यामहं कथम्॥

विहस्य तथा विहाय क्रियापद हैं और अहम् सर्वनाम का रूप है। किन्तु पण्डितजी का शिष्य विहस्य का संज्ञा के षष्ठी विभक्ति का रूप, विहाय को संज्ञा के चतुर्थी का रूप और अहम् को संज्ञा के द्वितीया विभक्ति का रूप बताया करता था। उसकी इस बात का मजाक उड़ाती हुई पंडितजी की कन्या ने कहा कि ऐसे मनुष्य की मैं द्वितीया (पत्नी) कैसे हो सकती हूँ।

संस्कृत-व्याकरण की विशेषता

जब वैदिक संस्कृत का अन्त होने लगा था और लौकिक संस्कृत का उदय हो रहा था, उस समय संस्कृत भाषा के क्षेत्र में भी बड़ी अव्यवस्था फैली हुई थी। उस समय विद्वान् लोग एक नवीन व्याकरण की आवश्यकता का अनुभव करने लगे थे। पाणिनि का प्रादुर्भाव ऐसे ही काल में हुआ था। पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना करके एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की थी। पाणिनि की अष्टाध्यायी अपने ढङ्ग का अनूठा ग्रन्थ है। इसमें भाषा का इतनी बारीकी से विश्लेषण किया गया है और सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का प्रतिपादन इतनी मौलिकता से किया गया है कि भारत ही नहीं, वरन् संसार के विद्वानों को पाणिनि की प्रतिभा पर आश्चर्य होता है। अष्टाध्यायी व्याकरण का मुकुटायमान ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ केवल व्याकरण के नियमों का संकलन मात्र न होकर भाषाविज्ञान एवं व्याकरण पर सर्वोत्कृष्ट मौलिक रचना है। अष्टाध्यायी की रचना सूत्र प्रणाली से हुई है। पाणिनि द्वारा एक भी पद व्यर्थ नहीं प्रयुक्त किया गया है। आज भी पण्डित लोग सूत्र-प्रणाली का बड़ा आदर करते हैं और आधी मात्रा को भी यदि वे बचा लेते हैं तो पुत्र-जन्म का-सा उत्सव मनाते हैं (अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः)।[1]

---

1. "This grammar (of Panini), which dates from some where round 450 to 350 B. C., is one of the greatest monuments of human intelligence."—**Leonard Bloomfield : Language, p. 11.**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गण व धातुएँ—पाणिनि ने 'गणों' की रचना करके संस्कृत भाषा को सुरक्षित बना दिया है। अनेक शब्दों को एक नियम-विशेष के अनुसार एक समूह में एकत्र कर लिया गया और उनका संचालन एक ही नियम द्वारा होने लगा। 'गण-पाठ' करके पाणिनि ने भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि शब्दों को एक 'सूत्र' में रख दिया। गद्य-पाठों का क्षेत्र विस्तृत है और इनमें नियमों के अनुसार अन्य नवीन शब्दों का रूप भी चलाया जा सकता है। काशिका में गणों की संख्या एवं प्रत्येक के अन्तर्गत आये हुए शब्दों की सूची सुरक्षित है। पतंजलि एवं कात्यायन ने भी इन गणों की रक्षा करने में योगदान दिया है। गणों की रचना का आधार ध्वनि है। धातुओं का भी वर्गीकरण गणों के रूप में है। इनका भी आधार ध्वनि ही है। ध्वनि एवं उससे निकलने वाले अर्थ का बार-बार अवलोकन करके पाणिनि ने गणों की रचना की है। पाणिनि ने समस्त धातुओं को दस गणों में बाँट दिया है। अष्टाध्यायी के अनुसार संस्कृत में कुल १९४४ धातुएँ हैं, जो भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि गणों में विभक्त हैं। धातुओं का एक अन्य वर्गीकरण आत्मनेपदी, परस्मैपदी तथा उभयपदी के रूप में भी है। आत्मनेपदी धातुएँ कर्त्ता अपने लिए प्रयुक्त करता है। परस्मैपदी दूसरों के लिए तथा उभयपदी दोनों के लिए। संस्कृत में १०१० धातुएँ भ्वादि हैं। यदि केवल भ्वादि धातुओं का ही ज्ञान संस्कृत के छात्र को करा दिया जाय तो वह संस्कृत के वाक्य सरलता से लिख सकता है।

संस्कृत भाषा का अपना ध्वनि-विचार (Phonology), शब्द-विचार (Morphology), अर्थ-विचार (Semantics) तथा वाक्य-विचार (Syntax) है। इन सभी का विचार संसार में सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में ही हुआ है।

सन्धि—संस्कृत भाषा में सन्धि तथा समास बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। जो छात्र सन्धि-विच्छेद एवं समास-विग्रह करने में असमर्थ रहता है, वह संस्कृत भाषा के अमृत का पान नहीं कर पाता। आजकल हाई स्कूल कक्षाओं के छात्र सन्धि एवं समास को प्रायः बहुत कठिन समझते हैं और उन्हें टालने का प्रयत्न करते हैं। कुछ व्यक्तियों ने यह प्रचार भी करना प्रारम्भ कर दिया है कि संस्कृत लिखने में सन्धि न की जाय तो ठीक रहेगा। संस्कृत को सरल बनाने के नाम पर कुछ लोगों ने सन्धिविहीन शब्द लिखना प्रारम्भ कर दिया है। किन्तु संस्कृत की परम्परा रही है कि लिखित संस्कृत में सन्धि अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक ध्यान देने योग्य है—

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

अर्थात् सुबन्त या तिङन्त पद में, उपसर्गयुक्त धातुओं में तथा समास में सन्धि अनिवार्य है। वाक्य में ऐसी अनिवार्यता नहीं है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्धि कोई कृत्रिम प्रक्रिया नहीं है। छात्रों को यह भली-भाँति समझा देना चाहिए कि सन्धि एक प्राकृतिक प्रक्रिया है और हम बोलने में सदा सन्धि करते ही रहते हैं। संसार की भाषाओं में ध्वनियों का मेल हो जाता है। बिना सन्धि किये ध्वनियों का प्रवाहयुक्त उच्चारण सम्भव ही नहीं। अंग्रेजी में जब हम 'दिस इज ए ब्वाय' बोलते हैं तो 'दिसिज' ही कहते हैं। संस्कृत में ध्वनियों का मेल केवल बोलने तक ही सीमित नहीं रहता। हम सन्धि को लेख में भी व्यक्त करते हैं। अन्य भाषाओं में भी कुछ शब्दों का लिखित रूप सन्धि प्रदर्शित करता है; उदाहरणार्थ, Description शब्द Describe+tion से ही मिलाकर बना है। हिन्दी में 'लाना' शब्द 'ले+आना' से ही बना है। किन्तु अन्य भाषाओं में लिखित रूप में सन्धि को आवश्यक नहीं माना जाता। हमें यह समझ लेना चाहिए कि रमा+ईश को अलग-अलग करने में विलम्ब होगा। प्रवाह में रमा+ईश, रमेश के रूप में ही उच्चरित होगा। यदि हम उच्चरित रूप में रमेश बोलते हैं तो लिखित रूप में रमा ईश क्यों रहे? इसीलिये संस्कृत में सन्धि अनिवार्य कर दी गई है। अतः संस्कृत में छात्र को सन्धि का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। उसे यह भी विदित होना चाहिये कि कुछ शब्दों में सन्धि-विच्छेद करते समय सावधानी बरतनी होती है; यथा—विश्वामित्र, मित्रावरुणा, सूर्याचन्द्रमसौ, सत्यानाश, अष्टावसु, विश्वावसु, अष्टापद, वैश्वानर, सर्वाबाधा, सनातन, अष्टागव, चन्द्रापीड, मूसलाधार, दीनानाथ, अष्टावक्र आदि शब्द कुछ विशिष्ट वैदिक शब्द हैं। संस्कृत में सन्धि पर बड़े विस्तार से विचार किया गया है।

समास—सन्धि के अतिरिक्त समास भी संस्कृत की अपनी विशेषता है। अन्य भाषाओं में भी समास के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। अंग्रेजी में जब हम un+able अथवा in+ability अथवा co+operation को मिलाकर एक समस्त पद बना लेते हैं तो वहाँ पर समास स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। हिन्दी में भी जब हम पनघट, पनचक्की, पनडुब्बी आदि शब्द कहते हैं तो वहाँ पर समास की करामात साफ दिखाई पड़ जाती है। संस्कृत में समास मुख्य रूप से चार प्रकार के हैं—द्वन्द्व, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, अव्ययीभाव। द्वन्द्व के तीन भेद हैं और तत्पुरुष छह प्रकार का होता है। कर्मधारय तथा द्विगु समास एक प्रकार से तत्पुरुष के ही भेद हैं। समासों की संख्या निश्चित है। अतः उनकी शिक्षा में कोई विशेष कठिनाई नहीं आनी चाहिए।

लिङ्ग—संस्कृत में संज्ञा शब्दों का लिंग-निर्धारण प्रत्यक्ष के आधार पर होता है। अंग्रेजी में लिंग-भेद पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व के आधार पर है। यदि कोई शब्द पुरुष का अर्थ देता है तो अंग्रेजी में वह मैसकुलिन जेण्डर (पुल्लिग), स्त्री का अर्थ देता है तो फेमिनिन जेण्डर (स्त्रीलिङ्ग), निर्जीव पदार्थ का अर्थ देता है तो न्यूटर जेण्डर (नपुंसक लिङ्ग) और स्त्री तथा पुरुष दोनों का अर्थ देता है तो कॉमन जेण्डर (उभयलिङ्ग) हो जाता है। हिन्दी में लिङ्ग-निर्धारण अंग्रेजी की तरह न होकर संस्कृत की तरह होता है। अंग्रेजी का व्याकरण पढ़ने के कारण छात्रों को हिन्दी व

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृत के लिङ्ग-निर्धारण में कठिनाई होती है और वे इसे एक समस्या समझ लेते हैं। संस्कृत में लिङ्ग का आधार प्रत्यय है और अभ्यास से ही इसका ज्ञान हो सकता है।

वचन—संस्कृत में वचन के सम्बन्ध में भी एक बात ध्यान देने योग्य है। अंग्रेजी तथा हिन्दी में एकवचन तथा बहुवचन ही होते हैं किन्तु संस्कृत में 'द्विवचन' भी होता है। सामान्यतया छात्र की समझ में यह नहीं आता कि एक और अनेक के बीच में दो को क्यों रखा गया। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि संस्कृत के विद्वानों ने जगत् का अत्यन्त बारीकी से निरीक्षण किया है। जगत् में एक और अनेक के ही समान 'दो' भी प्रबल हैं। पदार्थों की 'जोड़ी' की आवृत्ति एक और अनेक से कम नहीं है। यह 'युगल' बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रत्यय है। बिना 'युगल' के सृष्टि ही सम्भव नहीं। स्त्री-पुरुष, माँ-बाप, भाई-बहिन, पाप-पुण्य, दिन-रात, संयोग-वियोग, उपकार-अपकार, रथ के दो चक्र, दो नेत्र, दो कान, दो हाथ, दो पैर आदि के 'युगल' ने व्यक्ति को 'दो' का बोध कराया और संस्कृत के आचार्यों ने उस 'दो' को भाषा में भी अभिव्यक्त किया तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

कारक—जहाँ तक कारकों का प्रश्न है, इनका ज्ञान बड़ी सावधानी से कराना चाहिये। संस्कृत में निम्नलिखित छह कारक कहे गये हैं :—

कर्त्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥

अर्थात् कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छह कारक हैं। सम्बन्ध और सम्बोधन को कारक नहीं कहा जाता, क्योंकि उनका क्रिया से सीधा सम्बन्ध नहीं होता। संज्ञा शब्दों के आठ रूप होते हैं और छात्रों को रूप के बनने की प्रक्रिया के झंझट में न डालना ही उचित है। किसी रूप की सिद्धि व्याकरणों का विषय है। छात्रों को बने-बनाये रूप समझा देना ही उचित है। संज्ञा शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्दों को सर्वनाम कहा जाता है। सर्वनाम शब्दों के रूपों का भी अध्यापन आवश्यक है, क्योंकि इनका प्रयोग बहुत करना पड़ता है। सर्वनाम शब्दों के अन्त में त, त्र, था, दा आदि लगाने कर **अव्यय** बनाया जाता है; जैसे—सर्वतः; कुतः; यतः, सर्वत्र, कुत्र, सर्वदा आदि।

विशेषण—विशेषण शब्दों के प्रयोग की ओर भी छात्रों का ध्यान आकृष्ट करना चाहिये। अंग्रेजी में विशेषण शब्द सभी लिंगों में समान रूप में ही रहते हैं। हिन्दी में विकल्प है, अर्थात् कुछ विशेषण शब्द एक-से ही रहते हैं और कुछ के रूपों में लिङ्ग तथा वचन के अनुसार भेद हो जाता है। संस्कृत में अनिवार्य रूप से विशेष्य के अनुसार ही विशेषण का लिंग व वचन निर्धारित होता है।

काल—विभिन्न क्रियाओं का ज्ञान कराते समय 'काल' का ज्ञान भली प्रकार देना चाहिये। संस्कृत में 'ल' काल का सूचक है। संस्कृत में क्रियाओं को दस लकारों—लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लुङ्, तथा लृङ्,—में विभक्त किया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गया है। हिन्दी में केवल पाँच ही लकार प्रयुक्त होते हैं, शेष लकारों का प्रचलन अब नहीं रह गया है। छात्रों को केवल पाँच लकारों का ज्ञान करा देना ही ठीक है। कुछ क्रियाओं के रूप पाँचों लकारों में याद करा देना ठीक रहेगा। क्रियाओं के रूपों की सिद्धि यहाँ पर अभीष्ट नहीं है। थोड़ी-बहुत जानकारी कृदन्तों की भी करा दी जाय तो ठीक रहेगी।

उपसर्ग—संस्कृत में उपसर्ग अमूल्य निधि हैं। ये उपसर्ग निम्नलिखित हैं—

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अभि, अपि, अति, सु, उत्, प्रति, परि, उप।

उपसर्गों के योग से धातुओं के अर्थ बदल जाते हैं; यथा—हरति, विहरति, प्रहरति, अपहरति आदि। इसी बात को निम्नलिखित श्लोक में भी व्यक्त किया गया है—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहार-संहार-विहार परिहारवत्॥

पाठ्य-पुस्तक में व्याकरण का अंश

व्याकरण की अलग से पाठ्य-पुस्तक हो सकती है। किन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि छात्रों की पाठ्य-पुस्तक में ही व्याकरण का कुछ अंश हो। यह अंश इस प्रकार हो सकता है :—

(१) छात्रों से व्याकरण की जटिलता, कठिनता और दुर्बोधता का भय दूर करते हुये विषय को अधिक से अधिक रोचक बनाने की चेष्टा की जाए।

(२) सामान्यतया प्रारम्भिक कक्षाओं में लट्, लोट्, लङ्, और विधिलिङ् लकारों का ही प्रयोग होना चाहिये।

(३) कृदन्त में क्त, तव्य और अनीयर जैसे प्रत्ययों का विशेष प्रयोग हो।

(४) विशेषण और विशेष्य का स्वरूप दिखाने के लिये कुछ विशेष पाठों का समायोजन होना चाहिये।

(५) उपसर्ग, वचन, कारक, समास, सन्धि आदि से सम्बन्धित प्रश्न व अभ्यास कार्य पुस्तक में प्रत्येक पाठ के अन्त में आवश्यकतानुसार होने चाहिये।

(६) प्रारम्भिक पाठों में भाषा का क्रमिक विकास परिलक्षित हो, तदनन्तर शनैः-शनैः शब्दावली तथा व्याकरण के नियमों में प्रवेश हो।

(७) प्रारम्भिक कक्षाओं में सन्धियों का प्रयोग न्यूनतम हो और कक्षा ७ तक समासों का प्रयोग तो होना ही नहीं चाहिये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(८) चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग षष्ठी, सप्तमी की अपेक्षा कम होता है अतः उसका प्रयोग षष्ठी या सप्तमी के पूर्व सिखाना अनिवार्य नहीं होना चाहिये। पष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियों के प्रयोगयुक्त पाठ चतुर्थी विभक्ति के प्रयोग से पहले आ सकते हैं।

(९) व्याकरण के अंश का सम्बन्ध यदि व्याकरण की पृथक् पुस्तक से और हिन्दी तथा अंग्रेजी व्याकरण के कुछ अंशों से जोड़ दिया जायगा तो उत्तम रहेगा।

व्याकरण-शिक्षण की उपयोगिता

आजकल शिक्षा-शास्त्री कभी-कभी यह प्रश्न भी कर बैठते हैं कि व्याकरण पढ़ाया जाय या नहीं। वे सभी भाषाओं के विषय में प्रायः चर्चा कर बैठते हैं। उनके इन विचारों पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा।

व्याकरण-शिक्षण के विषय में आजकल प्रचलित विचारों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

प्रथम वर्ग उन व्यक्तियों का है जो व्याकरण की शिक्षा को अनिवार्य समझते हैं। उनके मतानुसार व्याकरण की शिक्षा के बिना भाषा-शिक्षा सर्वथा अपूर्ण रहती है।

द्वितीय वर्ग के विद्वान् व्याकरण की शिक्षा को निरर्थक समझते हैं। उनके अनुसार भाषा बोलने, सुनने, लिखने तथा पढ़ने से अपने आप आ जाती है; उसके सीखने के लिये व्याकरण के नियमों को याद करना व्यर्थ है। वे प्रायः मनोविज्ञान के सिद्धान्तों की दुहाई देते हैं और कहते हैं कि भाषा केवल अनुकरण से आती है।

एक **तीसरा वर्ग** उन विद्वानों का है जो मध्यम मार्ग अपनाने का प्रयत्न करते हैं और कहते हैं कि व्याकरण के बिना काम चल ही नहीं सकता। नियमों से मुक्त भाषा अटपटी हो जायगी, अतः कुछ अंश तक व्याकरण अवश्य पढ़ाया जाय, किन्तु यह व्याकरण, व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक (Functional) हो। वे औपचारिक रूप से व्याकरण पढ़ाने को अच्छा नहीं समझते। औपचारिक व्याकरण में सबसे पहले व्याकरण के नियम आते हैं और नियमों का प्रयोग बाद में बताया जाता है। व्यावहारिक व्याकरण में इसका उल्टा होता है। सबसे पहले व्याकरण का प्रयोग बताया जाता है, उसके बाद नियमों की जानकारी करायी जाती है।

उपर्युक्त तीनों मतों में दूसरे मत से कोई समझौता नहीं हो सकता। संस्कृत भाषा का ज्ञान तब तक असम्भव होगा, जब तक व्याकरण न पढ़ाया जाय। तृतीय मत कुछ सत्य अवश्य है किन्तु व्यावहारिक व्याकरण प्रौढ़ों को संस्कृत सिखाने में तो कुछ उपयुक्त भी हो सकता है पर बालकों को संस्कृत की शिक्षा देने में क्रियात्मक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याकरण से काम नहीं चलेगा। बालकों को संस्कृत के अभ्यास का अवसर नहीं रहता और वे अपने दैनिक जीवन में संस्कृत का स्वयं प्रयोग नहीं करते। ऐसी स्थिति में उनसे यह आशा करना कि वे पहले व्याकरण का प्रयोग सीख जायँ और उसके पश्चात् नियमों की ओर ध्यान दें, दुराशा मात्र होगी। मातृभाषा के लिए क्रियात्मक व्याकरण उपयुक्त हो सकता है। किन्तु संस्कृत के शिक्षण में इसकी उपयोगिता संदिग्ध है। क्रियात्मक व्याकरण का सिद्धान्त इस परिकल्पना (Hypothesis) पर आधारित है कि छात्र उस भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान रखते हैं। संस्कृत की शिक्षा के लिए तो व्याकरण की शिक्षा अनिवार्यतः देनी ही होगी और उसकी उपयोगिता के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता।

संस्कृत में व्याकरण को वेद का मुख बताया गया है—

छन्दः पादौ तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
ज्योतिषामयनं चक्षुः, निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥

रामायण में भी कहा गया है—-

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपभाषितम्॥

व्याकरण-शिक्षण के उद्देश्य

संस्कृत-शिक्षण के सभी स्तरों (प्रारम्भिक, मध्य, उच्च) पर व्याकरण की शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखना चाहिए—

१. छात्रों को संस्कृत भाषा के ध्वनि-तत्त्व से परिचित कराना।
२. शब्दों के विभिन्न रूपों का ज्ञान प्रदान करना।
३. शुद्ध वाक्य-रचना की योग्यता प्रदान करना।
४. छात्रों की तर्क-शक्ति एवं रचनात्मक वृत्ति का विकास करना।
५. उनकी भाषा के गुण-दोषों को परखने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे शुद्ध-शुद्ध लिख व बोल सकें।
६. सैद्धान्तिक व्याकरण का ज्ञान प्रदान करते हुये सिद्धान्तों का प्रयोग करने का अवसर प्रदान करना।

व्याकरण की पाठ्य-सामग्री का क्रम

व्याकरण-शिक्षण के सम्बन्ध में प्रश्न उठता है कि छात्रों को सर्वप्रथम क्या पढ़ाया जाना चाहिये। पाठ्य-सामग्री को अनुस्तरित करने में मनोवैज्ञानिक क्रम तथा तार्किक क्रम दोनों का ध्यान रखना चाहिये। मनोवैज्ञानिक क्रम से तात्पर्य यह है कि छात्र की मानसिक योग्यता एवं तत्परता के आधार पर सामग्री का चयन किया जाय और तार्किक क्रम से तात्पर्य यह है कि विषय-वस्तु के विकास का क्रम ध्यान में रखा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाय जिससे पूर्वापर पक्ष स्पष्ट हो जाय। आजकल बहुत-से विद्वान केवल मनोवैज्ञानिक क्रम अपनाने का परामर्श देते हैं। संस्कृत व्याकरण के सम्बन्ध में यह परामर्श अधिक उपयोगी नहीं है। वस्तुतः संस्कृत व्याकरण की पाठ्य-सामग्री का चयन करते समय दोनों ही दृष्टिकोणों का आश्रय लिया जाना चाहिए। इन दोनों दृष्टियों से व्याकरण की पाठ्य-सामग्री का क्रम निम्नलिखित ढंग से हो तो अच्छा रहेगा—

(१) **संस्कृत-वर्णमाला**—शुद्ध उच्चारण, वर्णों का वर्गीकरण।

(२) **सन्धि**—स्वर तथा व्यंजन—पहले सरल, बाद की कक्षाओं में कठिन सन्धियाँ। तत्पश्चात् विसर्ग सन्धि।

(३) **नाम-शब्द**—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण। लिंग तथा वचन-भेद का स्पष्ट ज्ञान। विभिन्न कारकों का ज्ञान।

(४) **आख्यात**—पहले भ्वादि गण की, तत्पश्चात् अन्य गणों की धातुएँ। पहले आत्मनेपदी, बाद में परस्मैपदी तथा उभयपदी। पहले केवल पाँच लकार, बाद में अन्य लकारों का ज्ञान।

(५) **समास**—लगभग सभी समासों का ज्ञान प्रारम्भ से ही कराया जाय तो अच्छा है।

(६) **कृदन्त तथा तद्धित प्रत्यय।**

(७) **उपसर्ग**—कुछ उपसर्गों का ज्ञान प्रारम्भ से ही करा देना उचित है।

शिक्षण-विधि

व्याकरण की शिक्षण-विधि पर अत्यधिक विवाद खड़ा कर दिया गया है। वर्तमान तथाकथित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों ने व्याकरण-शिक्षण में बड़ी शिथिलता ला दी है। छात्राध्यापकों से प्रायः उनके प्रशिक्षक कहा करते हैं कि व्याकरण का पाठ रुचिकर बनाया जाय। संस्कृत के व्याकरण की शिक्षा को रुचिकर बनाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इस स्थल पर एक बात पुनः दोहरा देना उचित है कि संस्कृत में व्याकरण की शिक्षा आनुषङ्गिक या प्रासङ्गिक न होकर मुख्य है और इसे विशेष रूप से विशेष समय पर पढ़ाना उचित है।

व्याकरण-शिक्षण की दो रीतियाँ मुख्य रूप से प्रचलित हैं—(१) निगमन रीति, तथा (२) आगमन रीति। निगमन रीति में पहले नियम बता दिया जाता है, बाद में उसे उदाहरणों द्वारा पुष्ट किया जाता है। सिद्धान्त या परिभाषा को पहले बता दिया जाता है, बाद में उस सिद्धान्त का प्रयोग बताया जाता है। दूसरे शब्दों में, निगमन रीति में, 'सामान्य' से 'विशेष' की ओर चलते हैं। उदाहरणार्थ, पहले एक नियम बता दिया गया "सह-साकम्, साधर्म, समम् के योग में तृतीया विभक्ति होती है" और बाद में "रामेण सह सीता अगच्छत् वनम्, मया साकम् सः फलं खादति" आदि उदाहरण सामने रखे जाते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आगमनात्मक रीति में पहले पर्याप्त उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। इन उदाहरणों का अध्ययन किया जाता है और तत्पश्चात् उन दृष्टान्तों के आधार पर व्यापक नियम का अनुसन्धान होता है। यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि उदाहरणों की सरलता एवं उनके औचित्य पर ही व्यापक नियम निर्भर करेगा। अतः उदाहरणों का चयन बड़ी सावधानी से होना चाहिए। आजकल अंग्रेजी एवं हिन्दी का अध्यापन करने वाले छात्राध्यापक व्याकरण को प्रायः इसी विधि से पढ़ाते हैं। इस विधि में छात्र रुचि लेते हैं एवं उनकी तर्क-शक्ति तथा अनुसन्धानात्मक वृत्ति का विकास होता है।

आचार्य पाणिनि के समय में सम्भवतः 'परायण' पद्धति प्रचलित थी। पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'पारायणिक' का उल्लेख है। पारायणिक परायण करने वाले को कहा जाता है। 'परायण' में छात्र नियमों को रटता था, कई बार आवृत्ति करता था। पाँच बार पढ़ने को 'पंचक अध्ययन', पाँच बार बोलने को 'पंच वार,' पाँच प्रकार से पढ़ने को 'पंच रूप' कहा जाता था। इसी प्रकार सप्तक, अष्टक आदि परायण भी होते थे। उस समय व्याकरण में परीक्षा भी ली जाती थी। यह परीक्षा बहुत कुछ अशुद्धियों की गणना से सम्बन्धित थी। एक अशुद्धिकर्त्ता छात्र को 'ऐकायनिक', दो अशुद्धिकर्त्ता को 'द्वैनयिक' तथा तीन अशुद्धिकर्त्ता को 'त्रैनयिक' कहते थे। परायण कई प्रकार के होते थे। कभी कोई सहिता-परायण करता था, कोई पद-परायण तो कोई कर्म-परायण। परायण करने वाले छात्र को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता था। आजकल की भाँति गद्दीदार कुर्सी पर बैठकर परायण नहीं होता था। कुशासन पर बैठकर सूर्याभिमुख को ब्रह्मचारी कठोर परिश्रम से परायण करता था। कभी-कभी वह मौन-व्रत करता था, कभी वह केवल फल या दूध ग्रहण कर और कभी केवल पानी पीकर ही परायण करता था। किन्तु इससे यह समझ लेना चाहिए कि उस समय व्याकरण-शिक्षण की विधि यान्त्रिक थी। परायण की नीरसता को अन्य प्रविधियों द्वारा रोचक बनाया जाता था। 'व्याकरण' के नियमों को समझाने की अन्य विधियों का भी कुछ उल्लेख मिलता है। पाणिनि के व्याकरण में प्राक्कथन, भाषण, सम्यक बोध, प्रतिश्रवण, व्याख्यान आदि का उल्लेख मिलता है। बिना पूर्व तैयारी के तत्काल कुछ कहना प्राक्कथन कहा जाता है। भली प्रकार स्पष्टीकरण करना भाषण था, सच्चे ज्ञान का विश्लेषण करना एवं उसका मनन करना सम्यक् बोध था, ज्ञान चर्चा को सुनना-सुनाना प्रतिश्रवण के अन्तर्गत था। व्याख्यान बड़ी ही प्रचलित प्रणाली थी। व्याख्यान के चार अंग थे—(१) चर्चा, (२) उदाहरण, (३) प्रत्युदाहरण, तथा (४) वाक्याव्याहार। चर्चा में पद-विग्रह होता था और सूत्र को तोड़ दिया जाता था। उदाहरण और प्रत्युदाहरण में दृष्टान्त दिये जाते थे तथा वाक्याव्याहार में वाक्य के अर्थ का विश्लेषण किया जाता था। पतंजलि ने अपने ग्रन्थ-लेखन में भी इसी व्याख्यान पद्धति का अनुसरण किया है। महाभाष्य के प्रथम अध्याय में वे लिखते हैं—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न केवलानि चर्चापदानि—वृद्धः आत् ऐच, इति। किं तर्हि ? उदाहरणं प्रत्युदाहरणं वाक्याध्याहार इत्येतत्समूदितं भवति।

पतंजलि के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि वे व्याकरण-शिक्षण में निगमन रीति का समर्थन करते हैं तथा भाषा का प्रयोग पक्ष उपेक्षित नहीं है। उदाहरण, प्रत्युदाहरणों द्वारा वे भाषा के व्यवहृत रूप को सामने रख देते हैं।

व्याकरण चाहे केवल क्रियात्मक रूप में पढ़ाया जाय, चाहे वह औपचारिक रूप से पढ़ाया जाय, चाहे हम निगमन रीति अपनाएँ या आगमन रीति को व्यवहृत करें, किन्तु एक बात यहाँ मैं स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि संस्कृत भाषा के व्याकरण-शिक्षण में स्मरण का विशेष महत्त्व है। संस्कृत भाषा को अच्छी तरह से समझने एवं प्रयोग करने की दृष्टि से व्याकरण के नियमों को याद करना, शब्द-रूपों एवं धातु-रूपों को याद करना बहुत आवश्यक है। प्रारम्भ से ही संस्कृत के विद्वानों ने 'पुस्तकस्था विद्या' को 'परहस्तगतं धनम्' की भाँति कार्यकाल में अनुपयोगी बताया है। सहस्रों वर्षों से संस्कृत के पण्डित व्याकरण एवं अन्य विधाओं की महत्त्वपूर्ण बातों को याद करते रहे हैं। स्मृति से ही वे न जाने कितने ग्रन्थों को सुरक्षित रखे रहे हैं। कभी-कभी तो संस्कृत के पण्डितों की स्मरण-शक्ति पर आश्चर्य होता है। कुछ पण्डित तो सम्पूर्ण ग्रन्थ कण्ठस्थ किये रहते हैं। संस्कृत की पाठशाला पद्धति में आज भी महत्त्वपूर्ण सूत्रों एवं सुभाषितों को कंठाग्र करना पाठ्यक्रम का आवश्यक अङ्ग है।

कंठाग्र करने की विधि में आज के मनोवैज्ञानिक चाहे जो भी दोष बताएँ, किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि स्मृति मेधा का अनिवार्य लक्षण है और आज के मनोवैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि यदि किसी बात को समझ-बूझकर याद किया जाय तो उससे कोई हानि नहीं। विषय पर अधिकार स्मृति द्वारा ही आता है, चाहे विषय को समझने के पश्चात् याद किया जाय या विषय को याद करके समझा जाय। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि एक विधि रुचिकर है तो दूसरी नीरस। इससे परिणामों पर विशेष अन्तर नहीं पड़ता। इसीलिए संस्कृत के विद्वान् इन सुकुमार मनोवैज्ञानिक नियमों को ज्ञानार्जन जैसी तपश्चर्या के लिए अधिक उपयुक्त नहीं समझते।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं कि व्याकरण को यथासम्भव आगमन रीति से पढ़ाया जाय, पर्याप्त उदाहरण दिये जायँ, तब नियम निर्धारण किया जाय और जहाँ तक हो सके, उदाहरण संस्कृत-साहित्य में पहले से ही आए हुए दृष्टान्तों से लिए जायँ, किन्तु जहाँ आवश्यकता पड़े वहाँ पर निगमन रीति का भी आश्रय लेने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। छात्रों को इस बात के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे महत्त्वपूर्ण नियमों को कण्ठाग्र करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिक्षण-क्रम

व्याकरण के शिक्षण की योजना बनाते समय निम्नलिखित क्रम ध्यान में रखना लाभदायक होगा—

(१) **सामान्य प्रारम्भिक बातें**

(२) **सामान्य उद्देश्य**

(३) **विशिष्ट उद्देश्य**

(४) **पूर्व-ज्ञान**

(५) **सहायक सामग्री**

(६) **प्रस्तावना**—पूर्व पठित प्रकरण पर आवृत्त्यात्मक प्रश्न जिससे पहले की सामग्री को दुहराया जा सके। तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार उद्देश्य-कथन।

(७) **पाठ्योपस्थापन**—प्रस्तुत प्रकरण से सम्बन्धित कई उदाहरण प्रस्तुत किये जायेंगे। कुछ वाक्य होंगे और उन पर प्रश्न किये जायेंगे। यह सोपान उदाहरण तथा तुलना का है।

नोट—आगमन रीति से व्याकरण की शिक्षा देने में प्रस्तावना एवं पाठ्योपस्थापन में ही सर्वाधिक समय लगेगा। इसे शिक्षण-दोष न समझा जाय।

(८) **नियम-निर्धारण**—प्रस्तुत उदाहरणों के आधार पर सामान्य नियम अध्यापक छात्रों की सहायता से निकालेगा और बाद में सूत्र रूप में श्यामपट पर लिख देगा।

(९) **पुनरावृत्ति**—उदाहरण के रूप में प्रस्तुत संस्कृत वाक्यों का छात्र हिन्दी में अनुवाद करें और उसके पश्चात् उपर्युक्त नियमों का प्रयोग करें। प्रस्तुत नियम से सम्बन्धित कुछ हिन्दी वाक्य अध्यापक श्यामपट पर लिखे और छात्रों को यह निर्देश दे कि उन हिन्दी वाक्यों का वे संस्कृत में अनुवाद करें।

(१०) **गृह-कार्य**—गृह-कार्य के रूप में निम्नलिखित कार्य दिये जा सकते हैं—

(अ) संस्कृत वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद।

(आ) हिन्दी वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद।

(इ) रिक्त स्थानों की पूर्ति—कुछ संस्कृत वाक्य लिखे जायँ जिनमें कुछ शब्दों का स्थान रिक्त छोड़ दिया जाय। पठित नियम के आधार पर छात्र उस वाक्य को पूरा करें।

व्याकरण पाठ-योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम..............	**दिनांक**..........
अध्यापक का नाम........	**कक्षा**—७, **वर्ग**—ख
विषय—संस्कृत-व्याकरण	**कालांश**—चतुर्थ
शीर्षक—स्वर-सन्धि (गुण-सन्धि)	**अवधि**—४० मिनट

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामान्य उद्देश्य—१. छात्रों को संस्कृत भाषा के ध्वनि तत्त्व से परिचित कराना।
२. शब्दों के विभिन्न रूपों का ज्ञान प्रदान करना।
३. शुद्ध वाक्य-रचना का ज्ञान प्रदान करना।
४. छात्रों की तर्क-शक्ति एवं रचनात्मक वृत्ति का विकास करना।
५. उनकी भाषा के गुण-दोषों को परखने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे शुद्ध लिख सकें।
६. सैद्धान्तिक व्याकरण का ज्ञान प्रदान करते हुए, सिद्धान्तों के प्रयोग करने का अवसर प्रदान करना।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों की स्वर-सन्धि के द्वितीय भेद 'गुण सन्धि' का अर्थात् अ या आ के परे किसी भिन्न स्वर इ, ई, उ, ऊ, या ऋ के होने पर दोनों को मिलकर क्रमशः ए, ओ या अर् हो जाता है—इसका सम्यक् ज्ञान एवं अभ्यास कराना।

पूर्व-ज्ञान— १. छात्र सन्धि के सामान्य अर्थ और महत्त्व से परिचित हो चुके हैं।
२. छात्र स्वर-सन्धि के प्रथम भेद 'दीर्घ-सन्धि' का अध्ययन और अभ्यास कर चुके हैं।

सहायक सामग्री— श्यामपट पर लिखे हुए कतिपय सन्धिष्ठ और सन्धेय पद।

प्रस्तावना— छात्राध्यापक कक्षा के श्यामपट पर निम्नलिखित पदों को लिखकर छात्रों से प्रश्न करेगा—

१. देवालयः २. मुनीशः

प्रश्न—१. प्रथम पद का सन्धि-विच्छेद करो।
२. इन दोनों शब्दों में किन-किन वर्णों की सन्धि हुई ?
३. वर्णमाला में ये वर्ण किस नाम से विख्यात हैं ?
४. द्वितीय पद का सन्धि-विच्छेद करो।
५. इन दोनों शब्दों में किन-कित्त वर्णों का मेल हुआ है ?
६. वर्णमाला में ये वर्ण किस नाम से प्रसिद्ध हैं ?
७. स्वरों के मध्य होने वाली सन्धि का क्या नाम है ?
८. स्वर-सन्धि का यह कौन-सा भेद है ?

उद्देश्य-कथन— इन शब्दों में दोनों ओर समान स्वरों के मध्य ही सन्धि हुई है किन्तु यदि अ या आ के सामने उनसे भिन्न स्वर इ, ई, उ, ऊ या ऋ आ जायें तो उनके मेल से जो स्वर-सन्धि होती है, आज हम उसी का अध्ययन करेंगे।

पाठ्योपस्थापन— छात्राध्यापक छात्रों से प्रश्न करता जायगा और श्यामपट पर लिखता जायगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. सुरेन्द्र शब्द का क्या अर्थ है ?
२. इस नाम का सन्धि-विच्छेद करो।
३. प्रथम शब्द के अन्त में कौन-सा स्वर है ?
४. द्वितीय शब्द के आरम्भ में कौन-सा स्वर है ?
५. सन्धि होने से, अ और इ स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है ?
६. देवताओं में सर्वप्रथम किसकी पूजा की जाती है ?
७. गणेश शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
८. इन दोनों शब्दों में किन-किन वर्णों का मेल हुआ है ?
९. सन्धि होने से, अ और ई के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है ?
१०. महेन्द्र नाम का सन्धि-विच्छेद करो।
११. इन दोनों शब्दों में किन वर्णों का मेल हुआ है ?
१२. सन्धि होने से, आ और इ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है ?
१३. अपने मित्र रमेश के नाम में सन्धि-विच्छेद करो।
१४. इस सन्धि में किन वर्णों का मेल हुआ है ?
१५. सन्धि होने से, आ और ई के स्थान पर कौन सा वर्ण हो गया है ?
१६. 'परोपदेशे पाण्डित्यम्'—इस वाक्य में सन्धियुक्त पद कौन-सा है ?
१७. परोपदेश का सन्धि-विच्छेद करो।
१८. इस सन्धि में किस-किस वर्ण का मेल हुआ है ?
१९. अ और उ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है ?
२०. 'जलोर्मि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
२१. इन दोनों शब्दों में किन स्वरों का मेल हुआ है ?
२२. अ और ऊ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है ?
२३. 'महोर्मि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
२४. इन दोनों शब्दों में किन स्वरों का मेल हुआ है ?
२५. आ और ऊ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है ?
२६. 'महोदधि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
२७. इन दोनों शब्दों में किन वर्णों का मेल हुआ है ?
२८. आ और ऊ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है ?
२९. 'ब्रह्मर्षि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
३०. इन दोनों में किस-किस वर्ण का मेल हुआ है ?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३१. अ और ऋ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है ?
३२. 'महर्षि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो ।
३३. इन दोनों शब्दों में किस-किस वर्ण का मेल हुआ है ?
३४. आ और ऋ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है ?

नियम-निर्धारण— इन उदाहरणों के आधार पर हम क्या नियम निर्धारित कर सकते हैं ?
"यदि अ या आ के आगे इ या ई, उ या ऊ अथवा ऋ आये तो उन दोनों स्वरों के मेल से क्रमशः ए, ओ और अर् हो जाता है।" इसे गुण-सन्धि कहते हैं ।

अध्यापक-कथन— प्राचीन संस्कृत में ॠ और ॡ स्वर भी वर्णमाला में स्वीकार किये जाते थे तथा इनका प्रयोग भी होता था; किन्तु जिस संस्कृत का हम अध्ययन करते हैं, उसमें ॠ तथा ॡ का प्रयोग नहीं होता है। अतः इनके उदाहरण नहीं बताये गये हैं। पाणिनि ने, सन्धि में अ या आ के आगे ऋ होने पर अर् तथा ऌ होने पर अल् होना बताया है। इस सन्धि को पाणिनि ने अपने व्याकरण में 'अदेङ्गुणः' सूत्र द्वारा गुण-सन्धि बताया है। (अध्यापक सूत्र को श्यामपट पर लिखेगा ।)

प्रयोग और अभ्यास या पुनरावृत्ति— छात्राध्यापक पूर्वलिखित पदों और शब्दों वाले लपेट श्यामपट्ट को खोलकर भित्ति पर लटकायेगा और छात्रों के अभ्यास हेतु कुछ पदों में सन्धि-विच्छेद का आदेश देगा एवं कुछ शब्दों में सन्धि करायेगा; यथा—
सन्धि-विच्छेद करो—
(१) नरेन्द्रः, (२) महेशः, (३) महोदयः, (४) देवर्षिः, (५) सूर्योदयः ।
सन्धि करो—
(१) सर्व + ईशः; (२) पर + उपकारः, (३) राजा + ऋषिः, (४) ग्रीष्म + ऋतुः, (५) तीर्थ + उदकम् ।

गृह-कार्य— अपनी पाठ्य-पुस्तक के प्रथम गद्य-पाठ से इस सन्धि के दस उदाहरण छाँटिए एवं उनका सन्धि-विच्छेद कीजिए ।

व्याकरण पाठ-योजना

[द्वितीय]

विद्यालय का नाम........ .. .... **दिनाङ्क**................
छात्राध्यापक का नाम............ **कक्षा—१०, वर्ग—अ**
विषय—संस्कृत व्याकरणम् **कालांश—**पञ्चम
प्रकरण—भूतकालिक 'क्त' और 'क्तवतु' कृदन्त प्रत्यय । **अवधि—**४० मिनट

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामान्य उद्देश्य—१. छात्रों को संस्कृत भाषा की विशेषता से परिचित कराना।
२. उन्हें शब्दों के विभिन्न रूपों का ज्ञान प्रदान करना।
३. उनमें शुद्ध वाक्य-रचना की योग्यता प्रदान करना।
४. छात्रों की तर्क-शक्ति एवं रचनात्मक वृत्ति का विकास करना।
५. उनको भाषा के गुण-दोषों को परखने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे शुद्ध-शुद्ध लिख व बोल सकें।
६. उन्हें सैद्धान्तिक व्याकरण का ज्ञान प्रदान करते हुए सिद्धान्तों के प्रयोग करने का अवसर प्रदान करना।
७. छात्रों को संस्कृत भाषा के ध्वनि तत्त्व से परिचित कराना।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को भूतकालिक 'क्त' और 'क्तवतु' कृदन्त प्रत्ययों का ज्ञान कराना।

पूर्व-ज्ञान— छात्रों को कृत्य प्रत्यय—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत् आदि—का ज्ञान है।

सहायक सामग्री— लपेट श्यामपट पर लिखे हुए संस्कृत के कुछ वाक्य।

प्रस्तावना— अध्यापक लपेट श्यामपट पर लिखे हुए निम्नलिखित उदाहरणों को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करेगा—

१. एषः गन्तव्यः मार्गः।
२. का एषा कथनीया वार्ता ?
३. 'दातव्यमिति द्दयानँदीयते ऽनुपकारिणे।' (गीता)
४. 'अस्यशब्दानुरूपेण पराक्रमेण भाव्यं भवितव्यम् वा।' (पंचतन्त्र)
५. एतद् पठनीयं पुस्तकम्।

उपर्युक्त उदाहरणों पर निम्नलिखित प्रश्न किये जायेंगे—

१. प्रथम वाक्य में 'गन्तव्यः' शब्द में कौन-सा प्रत्यय है ?
२. उपर्युक्त उदाहरणों में अन्य कौन-से ऐसे शब्द हैं, जिनमें 'तव्यत् प्रत्यय' हैं ?
३. 'कथनीया' तथा 'पठनीय' में कौन-से प्रत्यय हैं ?
४. ये प्रत्यय किस अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं ?

उद्देश्य-कथन— आज हम लोग इसी प्रकार के कुछ अन्य कृदन्त प्रत्ययों का अध्ययन करेंगे, जो भूतकालिक हैं।

पाठ्योपस्थापन— प्रस्तुत पाठ को सुविधा की दृष्टि से दो अन्वितियों में विभक्त किया जायगा।

(प्रथमान्विति—'क्त' प्रत्यय)

उदाहरण तथा तुलना—अध्यापक अग्रलिखित उदाहरणों को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. 'गतोऽहं कलिंगान्' (दशकुमारचरित)

२. 'जलं पातुं यमुनाकच्छमवतीर्णः ।' (पंचतन्त्र)

३. 'गर्भस्थस्य च मे पूर्वं पिता पञ्चत्वमागतः' ।
मन्मातुश्च तदा पापैर् गोत्रजैः सकलं हृतम् ॥
(कथासरित्सागर)

४. 'अहो विस्मृतं मे हृदयम्' (विक्रमोर्वशीयम्)

५. 'प्रतिबुद्धामिदानीं मकरन्दपूर्णचन्द्रेण' (मालती माधव)

६. 'आपदां कथितः पथा इन्द्रियाणामसंयमः' (चाणक्यनीति)

७. 'जितम् अपत्यस्नेहेन' (उत्तररामचरितम्)

८. 'लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः' (सिद्धान्त कौमुदी)

उपर्युक्त उदाहरणों का अर्थ स्पष्ट करते हुए इन पर निम्नलिखित प्रश्न किये जायेंगे—

१. गतोऽहं, यमुनाकच्छमतीर्णः, पञ्चत्वमागतः, प्रतिबुद्धमिदानीं तथा लक्ष्मीमाश्लिष्टो में सन्धि-विच्छेद करो ।
२. रेखाङ्कित शब्द किन-किन क्रियाओं से बने हैं ?
निम्नलिखित मूल क्रियाओं को एक-एक करके अध्यापक श्यामपट पर लिखता जायगा—
गम्, अव+तृ, आ+गम्, हृ, वि+स्मृ, प्रति+बुध्, कथ्, जि आ+श्लिष ।
३. छात्रो ! उपर्युक्त वाक्यों के अर्थों को ध्यान से देखो और यह पता लगाओ कि इनमें प्रयुक्त गतः, अवतीर्णः आदि रेखाङ्कित शब्द किस काल का बोध कराते हैं । (भूतकाल)
४. उपर्युक्त उदाहरणों में क्रियाएँ किस वाक्य में है ?
(कर्मवाच्य तथा कर्तृवाच्य)
५. रेखाङ्कित पदों के लिङ्ग और कारक बताओ ।
६. रेखाङ्कित पद मूल क्रियाओं में कौन-सा प्रत्यय जोड़ने पर बने हैं ?

नियम-निर्धारण— उपर्युक्त रेखाङ्कित शब्दों में 'क्त' प्रत्यय लगाया गया है । 'क्त' प्रत्यय किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराता है, अतः यह भूतकालिक प्रत्यय है । यह कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य में प्रयुक्त होता है । भूतकालवाची क्रियार्थक विशेषण है । अंग्रेजी में इसी अर्थ में 'पास्ट पार्टिसिपिल' (Past Participle) का प्रयोग होता है । 'क्त' प्रत्यय से युक्त पद विशेषण के अर्थ में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रयुक्त होने के कारण विशेष्य (कर्त्ता अथवा कर्म) के ही लिंग और कारक में रखे जाते हैं।

(द्वितीयान्विति--'क्तवतु' प्रत्यय)

उदाहरण तथा तुलना—

१. सारस्वतश् चापि जगाद वेदं।
नष्टं पुनर् यं ददृशुर्न पूर्वे।।
व्यासम् तथैनं बहुधा चकार।
न यं वसिष्ठः कृतवान्न शक्तिः।। (बुद्ध चरितम्)

२. धिक् चापलम्! किमुक्तवानसि? (उत्तररामचरितम्)

३. स तस्मिन् पुरेऽन्यदेशादागतांश् चतुरो विप्रान् बहूनि वस्तूनि विक्रीणतो दृष्ट्वा चिन्तितवान्—अहो! केनोपायेनैषां धनं लभे? (पंचतंत्र)

४. एकैकः काष्ठिकः प्रीत्या काष्ठे द्वे द्वे ददौ मम।
विक्रीतवान हंतानि नीत्वा काष्ठानि चापणे।।
(कथासरित्सागर)

५. अनेन मधुरालापेन सा क्षपां क्षपितवती।

६. रामः बाणेन रावणं हतवान्।

उपर्युक्त उदाहरणों का अर्थ स्पष्ट करते हुए इन पर निम्नलिखित प्रश्न किये जायेंगे—

१. किमुक्तवानसि, विक्रीतवानहं में सन्धि-विच्छेद करो।

२. रेखांकित शब्द किन-किन क्रियाओं से बने हैं?
निम्नलिखित मूल क्रियाओं को एक-एक करके अध्यापक श्यामपट्ट पर लिखता जायगा—

कृ, वच्, चिन्त, वि+क्री, क्षप्, हन्।

३. उपर्युक्त उदाहरणों में रेखांकित शब्द किस काल का बोध कराते हैं?

४. उपर्युक्त उदाहरणों में क्रियाएँ किस वाच्य की हैं?

५. रेखांकित पदों के लिंग और कारक बताओ।

६. रेखांकित पद मूल क्रियाओं में कौन-का प्रत्यय जोड़ने पर बने हैं?

नियम-निर्धारण—उपर्युक्त रेखांकित शब्दों में 'क्तवतु' प्रत्यय लगाया गया है। यह भी 'क्त' प्रत्यय की भाँति भूतकालिक क्रियार्थक विशेषण है और विशेष्य के लिंग और कारक से अनुशासित है। अन्तर केवल इतना

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है कि यह कर्तृवाच्य में प्रयुक्त होता है जबकि 'क्त' कर्मवाच्य' और कर्तृवाच्य दोनों में ।

पुनरावृत्ति—

१. उपर्युक्त उदाहरणों का हिन्दी में अनुवाद कीजिए ।

२. निम्नलिखित क्रियाओं में 'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्यय जोड़िये—
पठ्, स्ना, पा, भू, कृ, त्यज्, लिख् ।

३. निम्नलिखित पदों में क्रिया और प्रत्यय पृथक् कीजिये—
सिक्तवतो, तृप्तवान्, कीर्णः, उदितवान्, उषितवान् ।

४. 'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्ययों का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

(क) उसने कार्य किया ।

(ख) राम ने लेख लिखा ।

(ग) सुधा ने अपना पाठ पढ़ा ।

(घ) सरला ने स्नान किया ।

(ङ) हरि ने देवों की रक्षा की ।

गृह-कार्य—

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

(क)·······अहं मद्रपुरम् ।

(ख) वकुण्ठम्·······सः ।

(ग) अत्रभवतोः परस्परेण ज्ञानसंघर्षो·······।

(घ) विष्णुः शेषं·······।

(ङ) सः शिवम्·······।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१० | काव्य-शिक्षण

काव्य का स्वरूप

कहा जाता है किसी भी भाषा का आदि साहित्य हमें कविता के रूप में मिलता है। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, बँगला, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं के साहित्य को देखने से इस कथन की सत्यता भी प्रमाणित हो जाती है। कविता से सौन्दर्यानुभूति होती है और मनुष्य का हृदय सदा से सौन्दर्य पर रीझता चला आया है। इसीलिए जितना अधिक कविता हृदय को स्पर्श करती है, उतना अधिक साहित्य की अन्य विधाएँ नहीं कर पाती हैं। कविता कवि के हृदय से निकलती है और पाठक के हृदय तक सीधी पहुँचती है। जब किसी घटना या विचार पर कवि का हृदय रसातिरेक से विभोर हो उठता है तो उस समय रस कविता के रूप में फूट पड़ता है। ऐसी ही घटना तो आदि कवि वाल्मीकि के समक्ष घटी थी। कामातुर की क्या दशा होती है, यह सभी जानते हैं। क्रौञ्च का एक कामातुर जोड़ा विहार करने जा रहा था कि उसी समय एक व्याध ने बाण से क्रौञ्च को मारने की चेष्टा की। क्रौञ्च बाण से बचने का प्रयत्न कर रहा था और उसकी दशा को देखकर उसकी स्त्री करुणाजनक विलाप कर रही थी। महर्षि यह सब अपनी आँखों से देख रहे थे। करुणातिरेक से ऋषिवर के मुख से अचानक निकल पड़ा—

मा निषाद ? प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम ॥

इसी प्रकार की रसानुभूति से कविता का जन्म होता है। इसी आशय का विचार प्रकट करते हुए 'ध्वन्यालोक' में ध्वनिकार आनन्दवर्धनाचार्य लिखते हैं—

काव्यस्यात्मा स एवार्थः स चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपर्युक्त श्लोक में ध्वनिकार स्पष्ट करते हैं कि क्रौञ्च के जोड़े के भावी वियोग से आदि कवि के हृदय में उत्पन्न शोक ही श्लोक के रूप में वाहर आ गया। कवि के हृदय में उत्पन्न रस ही वस्तुतः कविता के रूप में बाहर आता है। विश्वनाथ कविराज ने भी कहा है—

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"

अर्थात् रसयुक्त वाक्य ही काव्य है। कविराज के अनुसार काव्य की आत्मा रस है। किन्तु ध्वनिकार आनन्दवर्धनाचार्य ने रस को महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी उसे काव्य की आत्मा नहीं माना है। उनके अनुसार काव्य की आत्मा ध्वनि है—

"काव्यस्यात्मा ध्वनिः।"

अन्य आचार्यों ने काव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए अपने पृथक् मत व्यक्त किये हैं। आचार्य वामन लिखते हैं—

"रीतिरात्मा काव्यस्य।"

रीतियाँ तीन होती हैं—गौड़ी, वैदर्भी और पांचाली। ये रीतियाँ ध्वनि से सम्वन्ध रखती हैं। हमारे कानों पर विभिन्न ध्वनियों का जो प्रभाव पड़ता है, रीति उसी प्रभाव से सम्बन्धित है। इसी दृष्टि से वामनाचार्य एवं आनन्दवर्धनाचार्य पर्याप्त निकट आ जाते हैं।

काव्य के ऊपर विचार करते हुए पण्डितराज जगन्नाथ ने शब्द की शक्ति को महत्त्वपूर्ण माना है। वे कहते हैं—

"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।"

अर्थात् वह शब्द जो रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करे, काव्य है। जहाँ तक रमणीयता का सम्बन्ध है, कविवर कालिदास की निम्नलिखित पंक्ति को याद दिला देना ही पर्याप्त है—

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में काव्य की परिभाषा करते हुए लिखा है—

"तददोषौ शब्दार्थो सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।"

अर्थात् अदोष (दोषरहित), सगुण (गुणसहित) प्रायः अलंकृत पर यदा-कदा अनलंकृत शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

भामह, रुद्रट और उद्भट ने अलंकारों को काव्य की आत्मा या सर्वप्रमुख तत्त्व माना है। उनके अनुसार अलंकारविहीन काव्य निर्जीव होता है।

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य का प्राण मानते हुए कहा है—

"वक्रोक्ति काव्यः जीवितम्।"

अभिनव भरत के मतानुसार प्रबन्ध की सरसता ही काव्य है। 'प्रबन्ध सारस्यं काव्यम्' कहकर उन्होंने प्रबन्ध में दिव्य वस्तुओं, व्यक्तियों एवं व्यापारों के सरल भाषा एवं सरस शैली में वर्णन को महत्त्व दिया है। प्रबन्ध ऐसी शैली में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होना चाहिए जिसमें पाठक की उत्सुकता आद्योपान्त बनी रहे। अभिनय भरत का कथन है—

"कौतूहलाविरलत्वं काव्यसारस्यम्।"

अर्थात् अनवरत कौतूहल ही काव्य की सरसता है। काव्य इस प्रकार की भाषा व शैली में हो और उसका विषय इस प्रकार का हो कि पाठक के मन में कुतूहल की वृद्धि होती चले और यह कुतूहल अन्त तक समाप्त न हो।

हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा होती है और उसका निर्वाह होता है।" कविता की परिभाषा करते हुए कहते हैं, "जब मनुष्य प्रकृति के नाना रूपों और व्यापारों से ऊँचा उठकर अपने योग-क्षेम, हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि को भूलकर तथा अपनी पृथक् सत्ता से छूटकर केवल अनुभूति-मात्र रह जाता है, अर्थात् जब उसके व्यक्तित्व का सामान्यीकरण हो जाता है, तब, हम उसे मुक्त हृदय कहते हैं। हृदय की इसी मुक्ति-साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।"

अंग्रेजी के विद्वानों ने भी काव्य के स्वरूप का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया है। प्रसिद्ध कवि शैली का कथन है, "चिरन्तन सत्य में अभिव्यक्ति जीवन की प्रतिच्छाया ही काव्य है।" मैथ्यु आर्नल्ड के अनुसार, "कविता मूलतः जीवन की समालोचना है।" ख्यातिप्राप्त लेखक एवं उच्च विचारक कार्लाइल ने "कविता को संगीतमय विचार" माना है और कॉलरिज ने "सर्वोत्तम क्रम में सर्वोत्तम शब्द" को काव्य की संज्ञा दी है। वर्ड्सवर्थ ने कविता में प्रकृति के साथ तादात्म्य को प्रमुखता दी, तो कीट्स ने काव्य में सौन्दर्य की उपासना को ही मुख्य माना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भिन्न-भिन्न आचार्यों ने कविता के स्वरूप पर भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं। जिसे जो रूप जँचा, उसी को उसने काव्य की आत्मा कह डाला। आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा कहा है, किन्तु रीति या संगीत-तत्त्व काव्य में केवल सहायक का काम करता है; वह तो बाह्य प्रभाव है। तब उसे आत्मा कैसे कह सकते हैं? कुन्तल ने वक्रोक्ति को ही कविता का प्राण बता डाला है। यह तो वैसे ही है जैसे कोई कहे कि वस्त्र ही व्यक्ति है। दंडी, भामह, रुद्रट और उद्भट ने अलंकार को काव्य की आत्मा कहा है। अलंकारों से शोभा बढ़ती है। प्रश्न है किसकी? अलंकारों से अलंकार की शोभा कैसे बढ़ेगी? इसके उत्तर में जो कुछ आयेगा, वह काव्य होगा और उसका लक्षण अलग से करना होगा। अलंकारों से शोभा बढ़ती है। वे बाह्य तत्त्व हैं। काव्य की आत्मा अलंकार नहीं हो सकती। कंकण, किंकिण और नूपुर से नारी की शोभा बढ़ती है किन्तु ये आभरण नारी की आत्मा नहीं हैं। इसी प्रकार आनन्दवर्धनाचार्य विश्वनाथ कविराज, पण्डितराज जगन्नाथ, आचार्य मम्मट आदि विद्वानों ने काव्य के ऊपर बहुत सुन्दर विचार किया है, किन्तु कविता केवल अलंकार, केवल रस, केवल गुण, केवल ध्वनि, केवल रीति,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केवल वक्रोक्ति, केवल शब्द न होकर इन सबका समवाय है। पाश्चात्य साहित्यकारों ने भी इसके एकांगी रूप का ही दर्शन किया है। कविता केवल जीवन की समालोचना या प्रतिच्छाया अथवा संगीतमय विचार या सर्वोत्तम शब्द ही न होकर इन सभी तत्त्वों का समन्वित रूप है। ये सभी गुण काव्य के विविध रूप हैं।

काव्य की शक्ति

कविता में गद्य से अधिक शक्ति होती है। कहा जाता है कि 'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि।' कवि की दृष्टि बड़ी पैनी होती है। कवि नपुंसकों में भी शक्ति भर देता है, कायरों में भी ओज ला देता है और रोते हुए को भी हँसा देता है। एक कवि ने ठीक ही कहा है—

> **क्लीवों के शरीर में भी, खौल उठता है खून,**
> **त्यौरियाँ बदलती हैं जोश चढ़ जाता है।**
> **लेकर हथेली पर जान बढ़ता है वीर,**
> **हारी हुई बाजी को तुरन्त पलटाता है।**
> × × ×
> **होने लगता है प्रलयंकर-सा नग्न नृत्य,**
> **नाश का कलेजा भी कली-सा लहराता है।**
> **तीनों लोक चूमने अंगूठे लगते हैं, तेरे,**
> **कवि ! तू सगर्व जब लेखनी उठाता है।**

उपनिषद् में तो इस सृष्टि की उपमा कविता से दी गई है। इस जगत् को ईश्वर की कविता कहा गया है और परमात्मा को कवि माना गया है। एक आधुनिक कवि ने अपनी कविता में इस आशय का विचार प्रकट किया है कि "भगवान् राम ने तो रावण को एक ही बार मारा है, किन्तु तुलसी का मारा रावण हर साल जलाया जाता है।"

यहाँ पर इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि संस्कृत के श्लोकों में अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक काव्य-शक्ति होती है। संस्कृत के अधिकतर श्लोक सरल एवं सरस होते हैं। दुरूह शब्दावली एवं विचारावली से युक्त श्लोक कठिन होने के कारण कभी-कभी उतने शक्तिशाली नहीं होते, जितने सरल श्लोक।

सरल कविता की सभी प्रशंसा करते हैं। प्रसंगवश, महाकवि तुलसीदासजी ने 'श्रीरामचरितमानस' के बालकाण्ड में कहा है—

> **सहज कवित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।**
> **सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान॥**

कविता व्यक्ति के हृदय का परिष्कार करती है। यदि व्यक्ति के हृदय के आवेगों का समुचित विकास न किया जाय तो व्यक्ति पशु के समान आचरण कर सकता है। उसमें ईर्ष्या, द्वेष, निराशा आदि कुभावनाओं का निवास हो जायगा। महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखते हैं—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन रमा रमणी रमणीयता,
मिलि गई यदि यह विधि योग से ।
पर मिली न जिसे कविता सुधा,
रसिकता सिकता सम है उसे ।

काव्य का महत्त्व

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कविता का महत्त्व जीवन में अत्यधिक है । अतः कविता का पठन-पाठन दोनों आवश्यक हैं । कविता को क्यों पढ़ा और पढ़ाया जाय, इसके विषय में संस्कृत के आचार्यों ने बड़े विस्तार से विचार किया है । प्राचीन आचार्यों के अनुसार कविता के पठन-पाठन से धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है । इन चारों को संस्कृत में चतुर्वर्ग की संज्ञा दी गई है । स्तोत्र के पठन-पाठन से धर्म, राजाश्रय प्राप्त कर कविता की रचना से अर्थ और काम, तथा निष्काम भाव से कविता में प्रवृत्त होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । इन चारों वर्गों में से जिस पुरुष की किसी में प्रवृत्ति न हो, उसके जीवन को संस्कृत में बकरी के गले के स्तन के समान निरर्थक बताया है । देखिए—

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ।।

कविता चतुर्वर्ग की प्राप्ति का साधन है, अतः कहा जा सकता है कि इससे व्यक्ति अपना जीवन सार्थक बना सकता है ।

आचार्य कुन्तक ने कविता का प्रयोजन चतुर्वर्ग की प्राप्ति के साथ-साथ व्याधिनाश, अज्ञाननाश तथा अमृतवत् आनन्द की प्राप्ति बताया है । वे लिखते हैं—

चतुर्वर्गफलस्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम् ।।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते ।।
कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशम् ।
आह्लाद्यमृतवत्काव्यमविवेकगदापहम् ।।

आचार्य भामह ने भी काव्यालंकार में उच्च-कोटि की कविता रचने से चतुर्वर्ग की प्राप्ति तथा अन्य कलाओं में दक्षता एवं कीर्ति की प्राप्ति भी बताया है । वे लिखते हैं—

धर्मार्थकाममोक्षाणां वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति प्रीतिं कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम् ।।

कविता से कीर्ति प्राप्त होती है; आचार्य भामह के इस कथन में अत्युक्ति किंचिन्मात्र भी नहीं है । कालिदास, भवभूति, माघ, वाल्मीकि, सूर, तुलसी, मीरा, निराला, कीट्स, शैली आदि कवि कविता के द्वारा ही इतनी ख्याति प्राप्त कर सके । सूर, तुलसी आदि भक्त-कवियों ने धर्म की प्राप्ति काव्य से ही की । केशव, भूषण, चन्दवरदाई आदि कवियों ने राजाश्रय प्राप्त करके कविता के द्वारा ही अर्थ प्राप्त किया । कविवर मयूर ने सूर्य का स्तोत्र रचकर अपने कुष्ठ निवारण की कामना

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की। काम (इच्छा) की प्राप्ति के अन्य अनेक उदाहरण मिलते हैं। कहा जाता है कि आचार्य उदयन एक वार जगन्नाथपुरी में भगवान् के दर्शन की कामना से गये, किन्तु वहाँ उन्हें पहले दर्शन न हो सके। आचार्य उदयन ने तुरन्त ही निम्नलिखित श्लोक की रचना करके उसका पाठ किया—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि मामवज्ञाय वर्त्तसे।
उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तवस्थितिः॥

कहा जाता है कि इस श्लोक के पाठ के बाद भक्ति से विह्वल उदयनाचार्य को भगवान् जगन्नाथ के दर्शन हो गए। वाल्मीकि, कबीर, सूर, तुलसी आदि को कविता के द्वारा मोक्ष प्राप्त हो गया। कविता के पठन-पाठन से चतुर्वर्ग की प्राप्ति उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है।

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में कविता के प्रयोजन पर विचार करते हुए लिखा है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदं शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासंमिततयोपदेशयुजे॥

अर्थात् काव्य से यश एवं अर्थ की प्राप्ति होती है, लोकाचार का ज्ञान होता है, अशिव (अमंगल) का निवारण होता है तथा सद्यः परमानन्द की अनुभूति के साथ-साथ कान्तासम्मत उपदेश प्राप्त होता है।

उपर्युक्त श्लोक के अन्तिम अंश पर विचार आवश्यक है। उपदेश प्रायः तीन प्रकार से दिये जाते हैं। एक उपदेश बिलकुल आदेश की तरह होता है। उसका अक्षरशः पालन आवश्यक है। राजाओं की आज्ञा, वेदाज्ञा, इसी प्रकार के उपदेश हैं। इनको न मानने से दण्ड मिलता है या प्रायश्चित्त करना पड़ता है। उपदेश की दूसरी विधि मित्रोपदेश की है जिसमें एक मित्र की भाँति किसी कार्य की अच्छाई-बुराई का वर्णन कर दिया जाता है और यह सुनने वाले मित्र की इच्छा पर है कि वह उस कार्य को करे या न करे। पुराणों के उपदेश मित्रोपदेश हैं। तीसरा उपदेश कान्ता का कमनीय उपदेश है। पत्नी नम्रता, भक्ति, श्रद्धा आदि भावों से अभिभूत होकर सुन्दर वचन, मधुर वाणी एवं कमनीय सूक्तियों द्वारा अपने पति को उपदेश देती है और अपने आकर्षण से वह पति से कार्य करा लेती है। तीसरे प्रकार का उपदेश मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। आचार्य मम्मट के अनुसार कविता में जो उपदेश दिया जाता है, वह कान्ता के उपदेश के समान कमनीय होता है।

कविता और पद्य

कविता और पद्य में अन्तर होता है। पद्य के लिए रस आदि की नितान्त आवश्यकता नहीं है। कोई भी तुकबन्दी पद्य कहला सकती है, उदाहरण के लिए, आगे एक श्लोक दिया जा रहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अलंकार विद्यां विना तर्कविद्यां विना काव्यशक्ति फल किं बुधस्य।
विना मातृहस्तं विना भ्रातृवर्गं विना गोरसं को रसो भोजनस्य ॥

उपर्युक्त श्लोक को हम पद्य तो कहेंगे ही, किन्तु इसका रसास्वादन की दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व नहीं है। किसी भी तुकबन्दी को हम पद्य कह सकते हैं, किन्तु कविता के लिए सरस होना अनिवार्य है। यद्यपि पद्य और कविता में भेद है, किन्तु कविता पद्यमय होने से उत्कृष्ट हो जाती है। पद्यविहीन कविता को संस्कृत के आचार्य कविता मानते ही नहीं हैं, यद्यपि हिन्दी में अतुकान्त एवं पद्यविहीन कविताओं का खूब चलन हो गया है।

संस्कृत काव्य की परम्परा

'कवनीयं काव्यम्' अर्थात् जो कवनीय या वर्णनीय हो, वह काव्य है। इस प्रकार वर्णनीयता भी काव्य का प्रमुख तत्त्व है। नाटक, काव्य, इतिहास आदि सभी में वर्णनीयता पाई जाती है। किन्तु आगे चलकर इस काव्य के अनेक वर्गीकरण प्रस्तुत किये गए जिनमें भामह का वर्गीकरण बहुत कुछ संगत प्रतीत होता है। भामह ने लिखा है—

सर्गबद्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिका कथे।
अनिबद्धं च काव्यादि तत् पूनः पञ्चधोच्यते ॥

अर्थात् (१) सर्गबद्ध-काव्य, खण्ड-काव्य, महाकाव्य, गीति-काव्य, (२) नाटक, (३) आख्यायिका, (४) कथा, और (५) मुक्तक आदि का समावेश है।

संस्कृत-महाकाव्य को पाश्चात्य वर्गीकरण के आधार पर दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—(१) विकासशील महाकाव्य (Epic of growth) और (२) दरबारी काव्य (Epic of court)। प्रथम को संस्कृत साहित्य में उपजीव्य-काव्य की संज्ञा दी गई और इसके अन्तर्गत रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भागवत आदि प्रमुख पुराण आते हैं। इन वृहद्काय ग्रन्थों का प्रणयन एक काल-विशेष में नहीं हुआ, अपितु एक सुदीर्घकालीन परम्परा में विकसित होकर ये ग्रन्थ वर्तमान रूप में उपलब्ध हैं।

रामायण संस्कृत का ही नहीं, अपितु विश्व-साहित्य का आदिकाव्य है। इसके प्रणेता आदिकवि वाल्मीकि हैं जो क्रौञ्च-मिथुन में से एक को वध्यमान देखकर द्रवीभूत हुए और उनके मुख से अकस्मात् लौकिक छन्द अनुष्टुप् निकल पड़ा, जिसका कि वैदिक काल में अस्तित्व ही नहीं था। प्रकृत महाकाव्य २४००० श्लोकों तथा ७ काण्डों (बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्ध-काण्ड तथा उत्तरकाण्ड) में है। इनमें बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड की शैली अन्य काण्डों से नहीं मिलती है अतः ये बाद की रचना हैं। साथ ही कुछ उपाख्यान भी हैं जो पौराणिक कथाओं के आधार पर जोड़े गये प्रतीत होते हैं और जिनके कारण कथा-प्रवाह में रुकावट पड़ती है। ये भी प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। उस काल में छापेखाने का अभाव था। हस्तलिखित प्रतियों के होने से यह स्वाभाविक समझ पड़ता है कि उसमें अनेक प्रक्षिप्त अंश बाद में जोड़े गये होंगे। इस प्रकार इस विशालकाय ग्रन्थ को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्तमान रूप लेते-लेते लगभग १,००० वर्ष का समय लगा होगा। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर रामायण का रचना-काल ५०० ई० पू० से लेकर ५०० ई० तक माना जाता है। इसमें मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का पावन चरित वर्णित है। काव्य के सभी रस उपलब्ध हैं, लेकिन शान्त रस अंगी रस है। काव्यात्मकता की दृष्टि से प्रकृत महाकाव्य एक अनुपम ग्रन्थ है। बाद में अनेक कवियों ने इस ग्रन्थ से 'कथा-वस्तु' लेकर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं, अतः यह उपजीव्य-काव्य कहलाया।

रामायण की भाँति 'महाभारत' भी एक उपजीव्य-काव्य है। इसका वर्तमान रूप बहुत ही विशाल है। १८ पर्वों में विभक्त यह विशाल ग्रन्थ लगभग सवा लाख श्लोकों का है। इसके प्रणेता वेदव्यास ही माने जाते हैं। इसमें भी अनेक उपाख्यान हैं जो बाद में जोड़े गये हैं। इसको भी वर्तमान रूप लेते-लेते रामायण की भाँति सहस्रों वर्षों का समय लगा होगा। इसके तीन रूपान्तर माने जाते हैं। प्रथम 'जय' जिसमें ८,००० श्लोक थे, दूसरा 'भारत' जिसमें २४,००० श्लोक थे, तीसरा 'महाभारत' जिसमें ९५,८२६ श्लोक हैं और १६,००० श्लोकात्मक हरिवंश इसका परिशिष्ट मात्र है। यह ग्रन्थ रामायण के कुछ वर्ष बाद की रचना है। इसमें कौरवों और पाण्डवों के विशद् चरित को गाया गया है।

रामायण और महाभारत की भाँति पुराण भी संस्कृत साहित्य के उपजीव्य रहे हैं। इनमें से कुछ तो बहुत प्राचीन हैं और कुछ बाद के हैं। किन्तु १८ पुराणों तथा इतने ही उपपुराणों का संस्कृत साहित्य में विशेष महत्त्व है। इनकी वर्णन शैली उत्तम है। वेदव्यास को इसका रचयिता बतलाया जाता है। किन्तु ये सब एक काल की रचना नहीं हैं. यह बात इस तथ्य का खण्डन करती है। सभी पुराणों की श्लोक संख्या लगभग ४ लाख है किन्तु इन सभी पुराणों में श्रीमद्भागवत का संस्कृत साहित्य में विशेष महत्त्व है।

महाकाव्य परम्परा में सर्वप्रथम **अश्वघोष** का नाम आता है। वैसे, इसके पूर्व पाणिनि द्वारा रचित पाताल-विजय' और 'जाम्बवन्ती विजय' नामक दो काव्यों का उल्लेख मिलता है, किन्तु वे अप्राप्य हैं। अतः अश्वघोष से ही यह परम्परा प्रारम्भ होती है। इनके दो महाकाव्य 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरानन्द' हैं। प्रथम में भगवान गौतम बुद्ध का जीवन चरित है। यह २८ सर्गों का है। किन्तु प्रथम सर्ग के अन्तिम तीन-चौथाई अंश से लेकर १४ वें सर्ग के एक-चौथाई अंश तक ही यह उपलब्ध है शेष चीनी भाषा में अनूदित है। सौन्दरानन्द १८ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें बुद्ध के विमातृज नन्द व उसकी स्त्री सुन्दरी की कथा है, जैसा कि इनके नाम से प्रतीत होता है। अश्वघोष का समय ईसा की प्रथम शताब्दी ठहरता है। अश्वघोष के उपरान्त दूसरे कवि **कालिदास** हैं। इनका समय गुप्त-काल (ईसा की चतुर्थ शताब्दी) है। इनके द्वारा रचित काव्य कालक्रम के अनुसार ऋतु-संहार, मेघदूत, कुमार-सम्भव तथा रघुवंश हैं। इनमें अन्तिम दो लघुत्रयी में गिने जाते है। प्रथम दो का **वर्णन**

८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काव्यों में होगा। १७ सर्गात्मक महाकाव्य कुमारसम्भव जैसा कि इसके नाम से ही प्रतीत होता है, कुमार अर्थात् स्वामी कार्तिकेय की उत्पत्ति के विषय में लिखा गया है। इसके प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास द्वारा रचित माने जाते हैं। बाद के सभी सर्ग रचना-शैली की दृष्टि से किसी बाद के कवि की रचना प्रतीत होते हैं। शिव-पार्वती विवाह तथा स्वामी कार्तिकेय का जन्म व तारकासुर का वध आदि प्रसंग बहुत ही रोचक हैं। रघुवंश १६ सर्गों का महाकाव्य है। इसकी कथा रामायण पर आधारित है। इसमें रघुवंश के प्रमुख प्रतापी राजाओं के पावन चरित के साथ-साथ भगवान् राम के चरित्र का विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। काव्य-कला की दृष्टि से दोनों महाकाव्य उत्कृष्टतम हैं।

भारवि का समय सप्तक शतक का पूर्वार्द्ध है। इसकी अमर कीर्तिलता एक ही काव्य वृक्ष 'किरातार्जुनीयम्' पर आश्रित है। 'किरातार्जुनीयम्' वृहत्त्रयी के अन्तर्गत आता है। इसमें १८ सर्ग हैं। इसकी कथा-वस्तु बहुत ही संक्षिप्त है, किन्तु वर्णनों की विशदता है। यदि कृत्रिमता का अभाव होता तो यह काव्य केवल ५ सर्ग में ही समाप्त हो जाता। चित्र-काव्य के साथ-साथ इसमें अद्भुत संवाद तथा कला-पूर्ण वर्णन हैं। कथा-वस्तु महाभारत से ली गई है। अर्थ-गौरव के लिए भारवि बहुत प्रसिद्ध हैं। भारवि की सूक्तियाँ भी अनूठी हैं। सर्ग के आदि में श्री शब्द का प्रयोग है और अन्त में 'लक्ष्मी' वाचक शब्द का।

महाकवि **भट्टि** प्रणीत भट्टिकाव्य या रावण-वध नामक २२ सर्गात्मक द्वयाश्रय महाकाव्य है। रामायण की कथा के वर्णन के साथ-साथ यह काव्य संस्कृत व्याकरण के रूपों की सिद्धि करता है। इसकी स्थिति लघुत्रयी में है। वैसे कृत्रिमता इसमें भी पर्याप्त है। इसका रचना-काल छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। काव्य-कला की दृष्टि से यह काव्य उतना उत्कृष्ट नहीं, जितने रघुवंश और कुमारसम्भव हैं।

कुमारदास रचित 'जानकी हरण' नामक काव्य भी रामायण पर आश्रित है। इनका समय ६५० ई० से ७५० ई० के बीच का माना जाता है। इसमें कुछ विद्वान् २५ सर्ग तथा अन्य विद्वान् २० सर्ग मानते हैं। इसके नाम से ज्ञात होता है कि इसमें जानकी-हरण तक की कथा होगी, किन्तु राम के जन्म से लेकर रावण-वध तक की पूरी कथा इस काव्य में वर्णित है। कवि ने बहुश्रुत राम-कथा को इस काव्य में मौलिकता प्रदान की है।

महाकवि **माघ** का भी एक ही 'शिशुपाल-वध' रूपी कीर्ति-स्तम्भ है। इनका समय ६५०-७०० ई० के आसपास ठहरता है। २० सर्गात्मक इस महाकाव्य में १६,५०० श्लोक हैं। भारवि के किरातार्जुनीयम् की भाँति इस काव्य का प्रत्येक सर्ग 'श्री' शब्द से प्रारम्भ होता है और सर्गान्त में भी 'श्री' शब्द का प्रयोग है, कथानक महाभारत का है। इसकी गणना भी वृहत्त्रयी में की जाती है। उसमें उपमा, अर्थ-गौरव और पदलालित्य तीनों गुणों का सामंजस्य है। खड्ग, वेध, भुरजबन्ध आदि चित्र-काव्यों की भरमार है। कथानक भी प्रायः संक्षिप्त ही है, लेकिन उतना नहीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जितना कि 'किरातार्जुनीयम्' का। नीति-वाक्य और सूक्तियों की भरमार है। काव्य-कला की दृष्टि से यह काव्य उत्कृष्ट है।

रत्नाकर का रचा हुआ 'हरविजय' नामक महाकाव्य है। इसका रचना-काल नौवीं शताब्दी है। कथानक पौराणिक है। इसमें शिव की विजय का वर्णन है। इसमें ५० सर्ग और ४,३२० श्लोक हैं। इसमें कवि ने उत्कृष्ट काव्य-कला ही नहीं दिखाई है, अपितु अपना पूर्ण दाण्डित्य दर्शाया है। उनका दावा है कि—"अपि शिशुरकविः कवि प्रभावत् भवति कविश्च महाकवि क्रमेण।"

कविराज कृत राघवपाण्डवीय द्विसंधान महाकाव्य है। इसमें ६६८ श्लोक व १३ सर्ग हैं तथा श्लेष के द्वारा रामायण एवं महाभारत की कथा साथ-साथ वर्णित है। यह काव्य संसार-भर की भाषाओं में अनूठा काव्य है। आगे चलकर इसके आधार पर हरिदत्तसूरि का राघव नैषधीय, चिदम्बर कृत 'राघवपाण्डवयादवीय', विद्यामाधव रचित "पार्वती रुक्मिणीय', वेंकटाध्वरि का 'यादवराघवीय' आदि महाकाव्यों की परम्परा चलती रही जो द्विसंधानात्मक थे।

श्रीहर्ष कृत 'नैषधीय-चरित्र' महाकाव्य वृहत्त्रयी के अन्तर्गत आता है। "नैषधे पदलालित्य" को उक्ति बहुत प्रसिद्ध है। इसका रचना-काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। श्रीहर्ष एक सुकवि एवं प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ-साथ दार्शनिक भी थे। उनकी वाणी विषय के अनुसार जटिल एवं मृदु हो जाती थी। उनका दावा था कि उनकी वाणी साहित्य तथा दर्शन दोनों विषयों के लिए उपयुक्त है—

साहित्ये सुकुमारवस्तूनि दृढन्यायग्रहग्रन्थिले,
तर्के वा मयि संविधातरिसमं लीलायते भारती।
शय्यावाऽस्तु मृदुच्छरवती दर्भाङ्कु रैरास्तृता,
भूमिर्वा हृदयङ्गमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम्॥

'नैषधीय-चरित' में २२ सर्ग तथा २,७९८ श्लोक हैं। कथानक महाभारत (वन पर्व) से लिया गया है। सम्पूर्ण नलोपाख्यान न लेकर कवि ने नल और दयमन्ती का प्रेम, विवाह तथा विवाह के उपरान्त की क्रीड़ा का वर्णन मात्र लिया है। शृङ्गार-वर्णन उत्कृष्ट है। काव्य-कला की दृष्टि से यह काव्य अनुपम है। अलङ्कारों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया गया है। यत्र-तत्र पाण्डित्य-प्रदर्शन की भी छटा है। पाणिनि के 'अपवर्गे तृतीया' सूत्र का कवि ने श्लोक में सुन्दर ढङ्ग से प्रयोग किया है—

उभयी प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मनः।
अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि॥

कवि होने के साथ-साथ श्रीहर्ष एक उत्कृष्ट दार्शनिक भी थे। यत्र-तत्र कवि की दार्शनिकता की झलक प्रकृत महाकाव्य में दर्शनीय है।

अभिनन्द कृत 'रामचरित' महाकाव्य भी रामकथा पर आश्रित है। इनका समय १०२५ से ११०० ई० तक ठहरता है। रामचरित ३६ सर्गों में है। इसमें रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा वर्णित है। फिर भी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह काव्य पूर्ण नहीं हो सका है। इसकी पूर्ति के लिए अन्त में ४ सर्गों का परिशिष्ट जोड़ा गया है।

शिवस्वामी (८५५-८३ ई०) कृत 'केफ्फिणाभ्युदय' नामक २० सर्गात्मक महाकाव्य है। इसकी कथा बौद्धों के अवदानशतक के एक अवदान का काव्यीभूत रूप है। ऋतु-वर्णन, अलङ्कार तथा भाषा-शैली की दृष्टि से यह अनूठा काव्य है। यत्र-तत्र चित्र-काव्य के उदाहरण भी देखने को मिलते हैं।

काश्मीरी कवि **हयग्रीव** (पंचम शतक पूर्वार्द्ध) का 'हृदयग्रीव' नामक महाकाव्य अभी उपलब्ध नहीं हो सका है।

क्षेमेन्द्र (१०२८-८९ ई०) ने रामायण-मंजरी और भारत-मंजरी की रचना १०३७ ई० में की। ये दोनों ग्रन्थ रामायण और महाभारत की विशालकाव्य कथा को जो कि लोगों के लिए समझने में दुर्लभ थी, सुलभ कराने के लिए लिखे गये। तीसरा ग्रन्थ वृहत्कथा-मंजरी है जो कि हाल द्वारा पैशाची भाषा में रचित वृहत्कथा का संस्कृत अनुवाद है।

मंखक (११२९-५० ई०) कृत 'श्रीकण्ठचरित' २५ सर्गों का काव्य है। इसमें भगवान शंकर और त्रिपुर का युद्ध वर्णित है। इतने छोटे कथानक को लेकर कवि ने इतना विशालकाय काव्य रच डाला। इसमें महाकाव्य के सभी लक्षण मिलते हैं। अन्तिम सर्ग में काश्मीरी कवियों का परिचय भी मिलता है।

भीमभट्ट ने 'रावणार्जुनीयम्' नामक एक २७ सर्गों का श्लेष काव्य रचा है। इसमें रावण और कार्तवीर्यार्जुन के युद्ध का वर्णन है। साथ ही साथ पाणिनि की अष्टाध्यायी के पदों का क्रम से निदर्शन किया है।

जयद्रथ (१२०३-२६ ई०) शैव थे। इन्होंने भगवान शङ्कर के पावन चरित्रों तथा लीलाओं का वर्णन 'हरचरित-चिन्तामणि' नामक काव्य में किया है। अनुष्टुप् छन्द में होने से इनकी भाषा सरल और सुबोध है।

धनेश्वर सूरि के १४ सर्गात्मक 'शत्रुञ्जय' नामक महाकाव्य में प्राचीन राजाओं की दन्त-कथाएँ वर्णित हैं। **वाग्भट्ट** का १५ सर्गों का 'नेमि-निर्माण' नामक महाकाव्य है। इसमें नेमिनाथ के निर्वाण प्राप्ति की कथा वर्णित है। **अभयदेव** कृत 'जयन्त-विजय' नामक काव्य १९ सर्ग और २,००० श्लोकों का है। **अमरचन्द सूरि** कृत 'बाल-भारत' ४० सर्गात्मक है। कथा महाभारत की है। **वीरनन्दी** की एक ही अमर कृति है। वह 'चन्द्रप्रभ-चरित' है। **वादिराज** का 'यशोधर-चरित' ४ सर्गात्मक ३०० श्लोकों का काव्य है। **हेमचन्द्र** ने 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष-चरित' की रचना की। **देवप्रभसूरि** ने 'पाण्डव-चरित' नामक १८ सर्गात्मक महाकाव्य रचा। **हरिश्चन्द्र** (११ वीं सदी) ने 'धर्माभ्युदय' नामक काव्य की रचना की। **वास्तुपाल** का १६ सर्गात्सक 'नरनारायणानन्द' नामक महाकाव्य है। **बालचन्द्र सूरि** कृत 'वसन्त-विलास' काव्य और **देवविमलमणि** कृत 'हरि सौभाग्य' नामक १७ सर्गात्मक महाकाव्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य और काव्य साहित्य को उपरिलिखित जैन कवियों का भारी योगदान रहा है ।

ऐतिहासिक काव्यों में कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' बहुत प्रसिद्ध है । इसमें काश्मीर के राजाओं का चरित्र वर्णित है । **पद्मपरिमल गुप्त** कृत 'नवसाहसाङ्कचरित' का रचनाकाल ग्यारहवीं सदी का पूर्वार्द्ध है । इसमें नवसाहसाङ्क (सिन्धुराज) और शशिप्रभा नामक राजकुमारी के विवाह का रुचिर वर्णन किया है । यह काव्य १८ सर्गों में है । **विल्हण** कृत 'विक्रमाङ्कदेव-चरित' नामक काव्य है । इसका समय १०७६ से ११२७ ई० है । इस ग्रन्थ में कवि ने अपने आश्रयदाता उसकी वंशावलि का वर्णन किया है । **जैनाचार्य हेमचन्द्र** द्वारा रचित १८ सर्गात्मक 'कुमारपाल चरित' नामक द्वयाश्रय काव्य है । प्रथम २० सर्ग संस्कृत और शेष प्राकृत में हैं । इसमें कुमारपाल एवं उसके पूर्ववर्ती राजाओं के चरित्र-वर्णन के साथ-साथ संस्कृत और प्राकृत भाषा के व्याकरणों के उदाहरण रखे गये है । **सोमेश्वर** (११७९-१२६२ ई०) ने गुजरात के राजा के मन्त्री वस्तुपाल का जीवन-चरित 'कीर्ति-कौमुदी' नामक काव्य में लिखा है । गद्य व पद्य—दोनों में होने से यह काव्य न होकर **चम्पू** है । वस्तुपाल की तीर्थयात्रा का वर्णन **अरिसिंह** के 'सुकृत संकीर्तन' नामक काव्य में है । **राजनाथ डिंडिम** का १२ सर्गात्मक 'अच्युतरामाभ्युदय' नामक एक महाकाव्य है । **गंगादेवी** कृत 'वीरकम्पराय-चरित' नामक तथा **सन्ध्याकरनन्दी** कृत 'रामपाल-चरित' नामक श्लेष काव्य भी इस परम्परा में उपलब्ध होते हैं ।

इसी प्रकार **काव्य-परम्परा** की धारा भी अबाध गति से प्रवाहित होती रही । कालिदास कृत दो काव्य 'मेघदूतम्' व 'ऋतुसंहारम्' हैं । 'मेघदूतम्' एक दूत काव्य है । इसमें विरही यक्ष अपनी प्रेयसी के पास मेघ के द्वारा सन्देश भेजता है । प्रकृति वर्णन बहुत ही उत्कृष्ट है । 'ऋतुसंहारम्' में छहों ऋतुओं का वर्णन है । कुछ काव्यों का वर्णन महाकाव्यों के वर्णन के सन्दर्भ में भी किया जा चुका है । इनके अतिरिक्त **उत्प्रेक्षावल्लभ** कृत भिक्षाहन; **नीलकण्ठ दीक्षित** कृत शिव लीलार्णव, नीलकण्ठ विजय, चम्पू, गङ्गावतरण, कलिविडम्बन, सभारंजन, अन्यायदेश शतक, **लोलम्बिराज** कृत हरिविलास, **वेदान्त देशिक** कृत यादवाभ्युदय, **राजचूड़ामणि** कृत रुक्मिणी कल्याण-**कृष्णराज** कृत गोविन्द लीलामृत, चैतन्य चरितामृत, **कृष्णानन्द** कृत सहृदयानन्द, **वामन भट्टबाण** कृत नलाभ्युदय, पार्वती परिणय, **वस्तुपाल** कृत नरनारायणानन्द, **साकल्य मल्ल** कृत उदार राघव, **वेंकटेश्वर** कृत रामचन्द्रोदय, **सोमेश्वर** कृत सुर-थोत्सव आदि काव्यों का प्रणयन हुआ । **गीति-काव्य** में गीतिगोविन्दम् मूर्धन्य है । **नीति-काव्य** में विदुर नीति, कामन्दक नीति; **स्मृतियों** में मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य-स्मृति तथा **शतकों** में भर्तृहरि के शतक-त्रय संस्कृत काव्य की अनुपम देन हैं ।

यह तो रही पूर्ववर्ती संस्कृत काव्य-परम्परा । वर्तमान शताब्दी में भी संस्कृत काव्यों का प्रणयन हुआ है । इनमें **छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर** कृत सुल्तान

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चरितम्; **श्रीभगवदाचार्य** कृत भारत पारिजातम्, रामानन्द दिग्विजयम्; **श्री अखिलानन्द शर्मा** कृत सनातन धर्म विजयम्, दयानन्द दिग्विजयम्; **श्री मेघाव्रत जी** रचित दयानन्द दिग्विजयम्; **दिलीपदत्त शर्मा** कृत मुनि चरितामृतम्; **द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री** कृत स्वराज्यम्, **उमापति द्विवेदी** कृत पारिजातहरणम्; **श्री हरिदास सिद्धान्त** कृत रुक्मिणी हरणम्; **श्री कालीपद तर्काचार्य** कृत सत्यानुभवम्; **बदरीनाथ झा** कृत रुक्मिणी परिणयम्; **उमामहेश्वर** कृत कंस संहारम्, दुर्गानुग्रहम्, वीर कृष्ण विजयम्, सत्यविजयम्; **रेवा प्रसाद** कृत जानकी मोहनम्; **विद्याधर** कृत हरिनामामृतम; **वनमालिदास** कृत हरिप्रेष्ठम्; **लक्ष्मीनारायण जी** कृत पुरुसिकन्दरीयम्; **श्रीधर शास्त्री** कृत शिवराजोदयम्; **पेडूवेड़कर जी** कृत कुरुक्षेत्रम्; **स्वामी लक्ष्मणशास्त्री** कृत विष्णुचरितामृतम्; **राधाकृष्ण जी शास्त्री** कृत दशावतारचरितम्; **रामावतार शर्मा** कृत भारत गीतिका, विजय राघवाचार्य, गांधी माहात्म्यम्; तिलक वैदिग्ध्यम्, नेहरू विजयम्, जवाहर वसन्त साम्राज्यम्; **शालिग्राम शास्त्री** कृत भारतीय कृषक; **श्रीमती क्षमाराव देवी** कृत ग्राम ज्योति, सत्याग्रह गीता; **श्री साधुशरणजी** कृत गांधि चरितम् आदि प्रमुख काव्य हैं।

उपयुक्त कविता का चयन

छात्रों के मनोविकास की दृष्टि से उपयुक्त कविता का चयन अत्यावश्यक है। इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में हम संस्कृत-साहित्य के इतिहास का सिंहावलोकन कर चुके हैं। संस्कृत का साहित्य संसार का सर्वोत्कृष्ट साहित्य है एवं उसकी विशालता, उसकी श्रीसम्पन्नता तथा उसकी विविधता की तुलना किसी भी साहित्य से नहीं की जा सकती। वह सागर है। उसमें से हीरे, जवाहरात, मोती, शंख, कौड़ी आदि का चयन करना चयनकर्ता के ऊपर निर्भर है। उपयुक्त कविताओं के चयन करने में संकलनकर्त्ता को मनोविज्ञान के सिन्द्धातों का अनुसरण करना चाहिए। यहाँ कुछ ऐसे सिद्धान्तों की ओर संकेत किया जा रहा है जो इस दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं—

१. कविता में वर्णित भाव छात्रों की आयु के अनुकूल हों। ऐसा न हो कि प्रारम्भिक अवस्था में ही श्रृंगार रस की कविता पढ़ायी जाने लगे।

२. कविता की भाषा छात्रों की बोध-शक्ति के बाहर न हो। संस्कृत में सरल एवं कठिन दोनों प्रकार की कविताएँ पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। उनमें से उपयुक्त कविता का चयन करते समय बालक की क्षमता का विचार कर लेना चाहिए।

३. कविता बालक की रुचि के अनुसार होनी चाहिए। जहाँ तक बालकों एवं किशोरों की रुचियों का प्रश्न है, पाठकों का ध्यान लेखक की 'आवर एडोलेसेण्ट्स : देयर इन्टेरेस्ट्स एण्ड एजूकेशन'[1] नामक पुस्तक की ओर आकर्षित किया जा रहा है।

---

1. **Our Adolescents : Their Interests and Education, Published by Lakshmi Narain Agrawal, Hospital Road, Agra.**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. कविता का सम्बन्ध बालकों के दैनिक जीवन से होना चाहिए, क्योंकि वातावरण का प्रभाव मनुष्य पर बहुत अधिक पड़ता है।
५. कविता की विषय-वस्तु ऐसी हो जिसका अध्ययन करके छात्र अपने चरित्र का विकास कर सके।

संस्कृत का अध्ययन प्राय: शिक्षा के तीन स्तरों पर होता है—

(१) जूनियर हाई स्कूल स्तर, (२) माध्यमिक स्तर, तथा (३) उच्च स्तर।

प्राथमिक कक्षाओं में आजकल भारतवर्ष के किसी भी राज्य में संस्कृत का अध्यापन नहीं प्रारम्भ किया जाता है। हाँ, छठी कक्षा से अधिकांश राज्यों में संस्कृत वैकल्पिक विषय के रूप में प्रारम्भ हो जाती है। छठी, सातवीं और आठवीं कक्षाओं को हम संस्कृत के शिक्षण की दृष्टि से प्रारम्भिक अवस्था माने ले रहे हैं; नौवीं, दसवीं, ग्यारहवीं (कहीं-कहीं बारहवीं भी) कक्षाओं को मध्य अवस्था; और उसके पश्चात् की कक्षाओं को उच्च अवस्था कहा जा सकता है।

छन्दों की भी हमें तीन श्रेणियाँ प्राप्त होती हैं। पहली श्रेणी में हम उन बालगीतों को ले सकते हैं जिनमें केवल तुकबन्दी होती है। लय ही इन कविताओं का प्राण है। दूसरी श्रेणी में उन कविताओं को रखा जा सकता है जिनमें किसी व्यक्ति या घटना का वर्णन किया गया हो। तीसरी श्रेणी विशुद्ध कविता की है जिसको पढ़कर रसास्वादन किया जा सकता है।

प्रारम्भिक अवस्था के छात्रों के लिए पहली श्रेणी की कविताएँ उपयुक्त होंगी। ये कविताएँ लयदार होनी चाहिए, जिससे छात्र उनका सस्वर एवं सुस्वर पाठ कर सकें। आजकल जो पुस्तकें प्रचलित हैं, उनमें से छठी कक्षा की एक पुस्तक में निम्नलिखित श्लोक दिया गया है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

यह श्लोक ईशावास्योपनिषद का है और छठी कक्षा के छात्रों के मानसिक स्तर से ऊपर का है। अतः ऐसे श्लोकों के चुनाव में छात्रों के मानसिक स्तर का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। प्रारम्भिक स्तर पर ऐसे श्लोक रखे जाने चाहिए जो सरल हों और कुछ उपदेशात्मक भी हों। इस अवस्था के बालकों के लिए निम्न-लिखित ढंग के श्लोक उपयुक्त हो सकते हैं—

(१) **काकः कृष्णः पिकः कृष्णः,**
को भेदः पिककाकयोः।
वसन्तसमये प्राप्ते,
काकः काकः पिकः पिकः॥

(२) **प्रियवाक्यप्रदानेन,**
सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्मात् तदेव वक्तव्यम्,
वचने का दरिद्रता ॥

(३) अष्टादश पुराणेषु,
व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय,
पापाय परपीडनम् ॥

(४) विदेशेषु धनं विद्या,
व्यसनेषु धनं मतिः ।
परलोके धनं धर्मः,
शीलं सर्वत्र वै धनम् ॥

(५) यस्मिन् देशे न सम्मानो,
न प्रीतिर्न च बान्धवाः ।
न च विद्यागमः कश्चित्,
न तत्र दिवसं वसेत् ॥

(६) न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः ।
वृद्धाः न ते ये न वदन्ति धर्मम् ॥
धर्मो न वै यत्र च नास्ति सत्यम् ।
सत्यम् न तत् यत् कपटेन युक्तम् ॥

(७) श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन,
दानेन पाणिर्न तु कंकणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां,
परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥

(८) रक्षतु देवताः सर्वे ब्रह्मविष्णु महेश्वरः ।
जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु माधवः ॥

(९) पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः
पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः ।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं,
तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं,
गोविन्दं भज मूढ़मते ।

(१०) वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

(११) सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं,
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं,
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥

(१२) येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः,
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

मध्य अवस्था के छात्रों के लिए कविता का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये छात्र किशोरावस्था के अटपटे मार्ग से गुजर रहे होते हैं। उनमें भावुकता अत्यधिक होती है। अतः उनके लिए जो कविताएँ चुनी जायँ, उनमें ऐसी क्षमता हो कि वे किशोरों की भावनाओं को उचित दिशा दे सकें। नीति के श्लोक होने चाहिए और साथ में भक्ति, उत्साह, शौर्य आदि भावों को जाग्रत करने वाले श्लोक होने चाहिए। निम्नलिखित श्लोक उदाहरण के रूप में दिये जा सकते हैं—

(१) शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम्
गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमतांच विलोक्य दरिद्रताम्
विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥

(२) उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी,
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥

(३) विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्,
ज्ञानाय, दानाय च रक्षणाय ॥

(४) या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेत पद्मासना ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वंदिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

(५) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भू र्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।

(६) हा वत्स राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स लक्ष्मण ! सुलक्षण सर्वगात्र !
हा साध्वि मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते ।
हा हा गताः किल वनं वत मे तनूजाः ।।

(७) गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।

उच्च स्तर पर छात्रों को ऐसी कविताएँ पढ़ानी चाहिए जो रसानुभूति की दृष्टि से उच्च कोटि की हों। इस स्तर पर छात्रों को संस्कृत के सम्पन्न साहित्य का परिचय करना अत्यावश्यक है। महाकवि कालिदास, भारवि, भवभूति, माघ, भास, आदि की रचनाओं से सुन्दर स्थलों का चयन करना चाहिए। 'गंगा-लहरी' गीति-गोविन्दं, महिम्नस्तोत्र आदि से छात्रों का परिचय आवश्यक है। उदाहरण के रूप में निम्नलिखित श्लोक प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

(१) तथा समक्षं दहता मनोभवं,
पिनाकिना भग्नमनोरथा सती ।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती,
प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ।।

(२) जटानेयं वेणी कृतकचकलापो न गरलम्,
गलेयं कस्तूरी शिरसि शशिरेखा न कुसुमम् ।
इयं भूतिर्नाङ्गे प्रियविरहजन्मा धवलिमा,
पुरारातिभ्रान्त्या कुसुमशर मां कि व्यथयसे ।।

(३) एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं,
नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च ।
अल्पस्यहेतोर्बहुहातुमिच्छन्,
विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ।।

(४) शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुतिशिरस्तः क्षितिधरः
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्
अधोऽधो गङ्गेय पदमुपगता स्तोकमधुना,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) लब्धास्पदोस्मीति विवादभीरो,
तितिक्षमाणास्य परेणनिन्दाम् ,
यस्यागमः केवल जीविकायै,
तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥

(६) सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं ।
मलितमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी ।
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥

(७) पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या ।
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ॥
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः ।
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

काव्य-शिक्षण के उद्देश्य

विभिन्न स्तरों पर कविता के चयन को देख लेने के पश्चात् कविता-शिक्षण के उद्देश्यों पर ध्यान जाना स्वाभाविक है। हम यह देख चुके हैं कि गद्य और पद्य में अन्तर है तथा पद्य और कविता में भेद होते हुए भी कविता प्रायः पद्यात्मक ही होती है। हो सकता है कि प्रत्येक पद्य कविता न हो, किन्तु प्रायः संस्कृत कविताएँ पद्यमय हुआ करती हैं। इसीलिए गद्य और पद्य की शिक्षा में अन्तर होता है। शिक्षा-शास्त्रियों के अनुसार कविता की शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं—

१. संस्कृत कविता के प्रति छात्रों में सामान्य अनुराग उत्पन्न करना।
२. गति, यति, लय एवं भाव के अनुसार श्लोक-पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।
३. कविता के मुख्य भावों को ग्रहण करने की योग्यता प्रदान करना।
४. छात्रों के भावों का परिष्कार करते हुए उनमें उदात्त भावों का विकास करना।
५. कविता के अन्तर्गत शब्द-योजना के आधार पर दृश्य-चित्रों की उद्भावना करना।
६. काव्यगत सौन्दर्य की अनुभूति करने की क्षमता प्रदान करना।
७. संस्कृत कविता का रसास्वादन करके अपने शब्दों में उसकी व्याख्या करने की क्षमता प्रदान करना।
८. छात्रों को कविता की विभिन्न शैलियों से परिचित कराना।
९ छात्रों को वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, प्रसंगोद्भावनाएँ, अन्तःकथाएँ एवं समान भाव की कविताओं से परिचित कराना।
१०. कवि के जीवन-दर्शन से छात्रों को परिचित कराना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११. छात्रों की कल्पना-शक्ति का विकास करते हुए उन्हें काव्यगत रस एवं भाव का आनन्द लेने के योग्य बनाना।

१२. स्वयं काव्य-रचना के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करना।

काव्य-शिक्षण-प्रणालियाँ

उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कविता के शिक्षण की विभिन्न प्रणालियों पर भी विचार करना आवश्यक है। शिक्षाशास्त्रियों ने कविता-पाठन की कुछ प्रणालियों पर बड़े विस्तार से विचार किया है। कुछ प्रमुख प्रणालियों का वर्णन हम यहाँ संक्षेप में करेंगे—

१. परम्परागत प्रणाली
२. गीत तथा नाट्य-प्रणाली
३. व्याख्या प्रणाली
४. दण्डान्वय प्रणाली
५. खण्डान्वय प्रणाली
६. भाष्य प्रणाली
७. तुलना प्रणाली
८. समीक्षा प्रणाली

(१) **परम्परागत प्रणाली**—इस प्रणाली में अध्यापक छात्रों को खड़ा करके श्लोक पढ़वा लेते हैं और श्लोक के शब्दों का अर्थ बताकर पूरे श्लोक का अर्थ स्वयं कह जाते हैं। कभी-कभी छात्रों द्वारा भी वे अर्थ कहलवा लेते हैं। यद्यपि यह परम्परागत प्रणाली है, किन्तु इसका प्रयोग पहले साधारण कोटि के अध्यापक ही करते थे। अभी भी अनेक अध्यापक स्कूलों और कॉलेजों में इसी प्रणाली का प्रयोग करते जा रहे हैं। यह प्रणाली नीरस होती है और इससे कविता की शिक्षा के उद्देश्य पूरे नहीं होते। इस प्रणाली में कविता का पढ़ाना गद्य के पढ़ाने के ही समान हो जाता है। इससे छात्र श्लोक के शब्दों का अर्थ तो जान जाते हैं किन्तु इससे कविता के सौन्दर्य का उन्हें बोध नहीं हो पाता है; उदाहरणार्थ, निम्नलिखित श्लोक को पढ़ाना है—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौमहासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

परम्परागत प्रणाली से पढ़ाने वाला अध्यापक इस श्लोक को स्वयं पढ़कर एक छात्र से पढ़वा लेगा और उसका अर्थ इस प्रकार से छात्रों को बता देगा—

"जिनका शरीर नीले कमल के समान श्याम है, जिनके बायें भाग में सीता जी सुशोभित हैं और जिनके हाथ में धनुष और वाण हैं, उन रघुकुल के स्वामी राम को मैं प्रणाम करता हूँ।"

इसके अर्थ को बताने से पहले या बीच-बीच में अध्यापक अम्बुज, समारोपित, पाणौ, महासायक आदि शब्दों के अर्थ भी बता देता है। यह प्रणाली मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है, अतः इसका प्रयोग न करना ही उचित है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२) **गीत तथा नाट्य प्रणाली**—यह प्रणाली प्रारम्भिक स्तर पर सातवीं कक्षा तक के छात्रों को पढ़ाने में काम आ सकती है, यदि पाठ्य कविता बाल-गीत है। इन बाल-गीतों में अर्थ का कोई महत्त्व नहीं होता। इन गीतों का उद्देश्य बालकों को लय, ताल आदि से परिचित कराना होता है। इनसे संगीत तत्त्व ही मुख्य होता है। छात्र संगीत से बड़ा प्रेम करते हैं। वे लय और ताल से गाना बहुत पसन्द करते हैं। इन बाल-गीतों को पढ़ाते समय शब्दार्थ पर ध्यान न देकर ध्वनि तत्त्व पर ही ध्यान देना चाहिए। कविता की भाषा सरल होनी चाहिए, ताकि छात्र उसे कण्ठस्थ कर सकें। एक-एक छात्र से बाल-गीत को गवाना चाहिए और साथ ही समवेत गान के रूप में भी उनसे उसका पाठ कराना चाहिए। गायन के समय हाथ से ताली भी दिलाई जा सकती है। संस्कृत भाषा में प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए उपयुक्त बाल-गीत एवं अभिनय-गीत बहुत कम उपलब्ध हैं, अतः इस प्रणाली के उपयोग करने का संस्कृत के शिक्षक को बहुत कम अवसर प्राप्त होगा।

(३) **व्याख्या-प्रणाली**—व्याख्या-प्रणाली में शिक्षक श्लोक के एक-एक पद का अर्थ करता है और साथ में रचना-शैली, कवि के जीवन-दर्शन, कवि के उद्देश्य, कविता की परिस्थिति आदि की व्याख्या करता है। परम्परागत प्रणाली में शब्दार्थ पर महत्त्व दिया जाता है, जबकि व्याख्या-प्रणाली में भावार्थ महत्त्वपूर्ण है। यदि श्लोक का सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक घटना से होता है तो व्याख्या-प्रणाली में उस घटना की भी व्याख्या कर दी जाती है। इस प्रकार इस प्रणाली के पढ़ाने में श्लोक का भाव पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। इस प्रणाली द्वारा कविता की शिक्षा उचित रूप से हो सकती है; उदाहरण के लिए—कठोपनिषद् का निम्नलिखित श्लोक लिया जा सकता है :—

श्रवणयापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा
ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥

—**कठोपनिषद्। द्वितीय वल्ली ॥ प्रथम अध्याय ॥७॥**

व्याख्या प्रणाली से पढ़ाने वाला अध्यापक इस श्लोक का अर्थ निम्नलिखित ढंग से बतायेगा।

कठोपनिषद् एक प्रसिद्ध उपनिषद् है जो कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा के अन्तर्गत है। इसमें नचिकेता और यम के संवाद का वर्णन है। नचिकेता ने यमराज से परमात्मा के रहस्यमय तत्त्व के विषय में प्रश्न किया और यमराज ने परीक्षा करके समझ लिया कि नचिकेता दृढ़ निश्चयी एवं वैराग्ययुक्त है, अतः वह ब्रह्म विद्या का अधिकारी है। तत्पश्चात् यमराज ने उसे ब्रह्म विद्या का उपदेश देना प्रारम्भ किया। प्रस्तुत श्लोक भी उसी उपदेश का एक अंश है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यमराज ने आत्म-तत्त्व की दुर्लभता बताते हुए कहा—"नचिकेता ! ब्रह्म विद्या या आत्म तत्त्व कोई साधारण वस्तु नहीं है। इस संसार के अनेक पुरुषों को तो आत्म-कल्याण की चर्चा सुनने तक का अवसर नहीं मिलता। प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक ऐसे पुरुष सांसारिक विषयों में फँसे रहते हैं। नौकरी-पेशे, व्यापार या अन्य कार्यों में ही उनका सारा दिन जाता है और उन्हें इतना अवकाश ही नहीं मिलता कि वे आत्म-ज्ञान की बातें करें। ऐसे अभागे मनुष्यों को आत्म-तत्त्व सुनने-समझने की कभी कल्पना ही नहीं आती। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो आत्म-तत्त्व को सुनना-समझना श्रेष्ठ समझकर उसके विषय में सुनते तो हैं, किन्तु यह रहस्यमय तत्त्व उनके गले नहीं उतरता; उनका मन विषयों में इतना फँसा होता है और बुद्धि इतनी मोह-कलिला होती है कि वे ब्रह्म-विद्या को समझ नहीं पाते। जो पुरुष कुशाग्र-बुद्धि होते हैं और इस तत्त्व को समझ लेते हैं, उनमें भी ऐसे आश्चर्यमय पुरुष तो विरले ही होते हैं जो उस तत्त्व का यथार्थ रूप से वर्णन करने वाले समर्थ वक्ता हों। इसी प्रकार ऐसे पुरुष भी विरले ही होते हैं जिन्होंने आत्म-तत्त्व को प्राप्त करके अपना जीवन सफल किया हो और किसी ऐसे अनुभवी आत्म-दर्शी ब्रह्मवेत्ता आचार्य के द्वारा उपदेश प्राप्त करके उपदेशानुसार मनन-निदिध्यासन करते हुए ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो। इस प्रकार के महापुरुष कोई एक ही होते हैं। अतः आत्म-तत्त्व में सर्वथा एवं सर्वत्र ही दुर्लभता है।"

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि व्याख्या प्रणाली में श्लोक के एक-एक पद का भावार्थ स्पष्ट कर दिया जाता है और सम्पूर्ण श्लोक के पीछे जो प्रसंग अन्तःकथा या दर्शन छिपा होता है, उसकी भी व्याख्या कर दी जाती है।

(४) **दण्डान्वय प्रणाली**—संस्कृत एक संश्लेषणात्मक भाषा है। संश्लेषणात्मक भाषा में परसर्ग मूल शब्दों के साथ ही संयुक्त रहते हैं, जबकि विश्लेषणात्मक भाषा में वे मूल शब्दों से अलग रहते हैं। अंग्रेजी एक पूर्णतः विश्लेषणात्मक भाषा है; उसमें सम्बन्ध-सूचक शब्द (प्रिपोजीशन) मूल शब्द से पृथक् लिखे जाते हैं। विश्लेषणात्मक भाषा में वाक्य के अन्तर्गत शब्दों की स्थिति का विशेष महत्त्व है; एक शब्द को इधर-उधर कर देने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है; उदाहरणार्थ—

"राम किल्ड रावण' का अर्थ है, राम ने रावण को मारा। अब यदि इस वाक्य में रावण और राम शब्दों के स्थान में परिवर्तन करके वाक्य को इस प्रकार लिखें—'रावण किल्ड राम' तो इसका अर्थ हो जायगा, रावण ने राम को मारा। संस्कृत में ऐसा झगड़ा नहीं है। उसमें हम चाहे 'रामः रावणं हतवान्' लिखें, चाहे 'रावणं रामः हतवान्' लिखें या 'हतवान् रावणं रामः' लिखें, सभी का अर्थ एक ही होगा। किन्तु इससे एक समस्या अवश्य आ जाती है। छात्र को कभी-कभी कर्त्ता' कर्म, क्रिया आदि को वाक्य में ढूँढ़ना पड़ता है। संस्कृत में श्लोक से यह कार्य कुछ और जटिल हो जाता है, क्योंकि उसमें कर्त्ता और उसके विशेषण अथवा कर्म और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके विशेषण अलग-अलग पड़े रहते हैं। अच्छाई यही है कि विभक्तियों का ज्ञान हो जाने पर उन्हें समझना बहुत आसान है।

श्लोक के अर्थ को मातृभाषा में अच्छी तरह समझने के लिए श्लोक के मुख्य वाक्य को ढूँढ़ना और उसके अनुसार कर्त्ता, कर्म तथा क्रिया का पता लगाना आवश्यक है। इसे ही **दण्डान्वय** कहते हैं। संस्कृत की कविता के अध्ययन में अन्वय का विशेष महत्त्व है। अन्वय से श्लोक का भाव समझने में सरलता होती है। 'अन्वय प्रबोध' के अनुसार अन्वय दो प्रकार का होता है—

१. दण्डान्वय, और २. खण्डान्वय।

(दण्डवत् खण्डच्चैव द्विभेदोन्वय उच्यते।)

'अन्वय प्रबोध' में दण्डान्वय की परिभाषा इस प्रकार बतायी गयी है—

आद्ये विशेषणं योज्यं विशेष्यं तदनन्तरम्।
क्त्वाणमुल्ल्यप्प्रभूत्येवं पूर्वं दण्डान्वये भवेत्॥

दण्डान्वय में मुख्य वाक्य का ढूँढ़ना आवश्यक होता है। मुख्य वाक्य ढूँढ़ने के लिए विभक्तियों एवं प्रत्ययों का ज्ञान आवश्यक है। कुछ बातें तो छात्र मातृभाषा के अध्ययन के समय ही सीखे रहते हैं। छात्रों को इस बात का परिचय तो रहता ही है कि वाक्य यदि कर्तृवाच्य में हैं तो कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति और कर्म में द्वितीया विभक्ति होगी; वाच्य यदि कर्मवाच्य में है तो कर्त्ता में तृतीया विभक्ति और कर्म में प्रथमा विभक्ति होगी। कर्मवाच्य में क्रिया कर्म के पुरुष एवं वचन के अनुसार होगी। कृदन्त में तो कर्म के अनुसार ही क्रिया का लिंग भी होता है। जब छात्र प्रधान वाक्य ढूँढ़ लें तो वाक्य में प्रयुक्त विशेषणों, अव्ययों एवं क्रियाओं को भली प्रकार मनन करें। बस यही दण्डान्वय है। पद्य-खण्ड को एक पूर्ण वाक्य में (दण्ड में) बदलना ही दण्डान्वय है। दण्ड का अर्थ है—गाँठों वाला डण्डा। यहाँ पर दण्ड वाक्य का सूचक है।

दण्डान्वय करते समय अध्यापक छात्रों से निम्नलिखित प्रश्न कर सकता है—

१. इस श्लोक में कर्त्ता कौन है?

२. इसमें कर्म कौन है?

३. इस पद्य में क्रिया छाँटो।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक को लीजिए—

उष्ट्राणां विवाहेषु गीतं गायन्ति गर्दभाः।
अन्योयं प्रशंसन्ति अहो रूपं अहो ध्वनिः॥

दण्डान्वय प्रणाली से इसे इस प्रकार पढ़ाया जायगा—

प्र०—इस पद्य में कर्त्ता बताओ।

उ०—गर्दभाः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्र०—इसमें क्रिया कौन-सी है ?

उ०—गायन्ति तथा प्रशंसन्ति ।

प्र०—इसमें कर्म कौन है ?

उ०—गायन्ति का कर्म गीतं तथा प्रशंसन्ति का कर्म अन्योन्यम् ।

अब इसी प्रकार के एक-दो अन्य प्रश्नों के पश्चात् अध्यापक छात्रों की सहायता से इस श्लोक को इस प्रकार रख देगा :—

उष्ट्राणां विवाहेषु गर्दभाः गीतं गायन्ति (तथा) अहो रूपं अहो ध्वनिः (कथयित्वा) अन्योन्यं प्रशंसन्ति ।

दण्डान्वय प्रणाली प्रारम्भ में छोटे बच्चों को पढ़ाने में कुछ उपयोगी हो सकती है, किन्तु इसमें जो प्रश्न किए जाते हैं, वे बड़े नीरस होते हैं और सभी प्रश्नों का सम्बन्ध केवल व्याकरण से होता है । व्याकरण के प्रश्न पद्य की रसानुभूति में प्रायः बाधा डालते हैं । इसलिए उच्च कक्षाओं के लिए दण्डान्वय प्रणाली उचित नहीं कही जा सकती ।

(५) **खण्डान्वय प्रणाली**—अन्वय करने के महत्त्व को हम पहले बता आये हैं । अन्वय की दूसरी प्रणाली खण्डान्वय प्रणाली है । **'अन्वय प्रबोध'** में खण्डान्वय की परिभाषा इस प्रकार बतायी गई है—

कर्तृकर्मक्रियास्तावच्छ्लोके योज्यास्ततः परम् ।
किमो रूपं पुरस्कृत्य तृतीयादि नियोजयेत् ।।
ल्यबन्तं च तुमन्तं च क्त्वान्तं कर्मविभूषितम् ।
खण्डान्वये पुनः प्रश्नपूर्वमन्ते प्रयोजयेत् ।।

दण्डान्वय की भाँति खण्डान्वय में भी सबसे पहले श्लोक में प्रधान वाक्य ढूँढ़ा जाता है । जब प्रधान वाक्य ढूँढ़ लिया जाता है तब उपयुक्त प्रश्नों एवं उत्तरों द्वारा वाक्य के शेष अंश का ज्ञान किया जाता है । वाक्य के शेष अंश के ज्ञान के लिए प्रणाली में उपयुक्त प्रश्नों द्वारा कर्त्ता, कर्म, क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि निकलवाये जाते हैं, किन्तु ये प्रश्न दण्डान्वय प्रणाली के प्रश्नों से सर्वथा भिन्न होते हैं । दण्डान्वय प्रणाली में सीधे-सीधे पूछा जाता है; जैसे—"इस वाक्य में कर्त्ता कौन है ?" जबकि खण्डान्वय प्रणाली में पाठ्य-विषय पर आधारित होते हैं । ये प्रश्न मातृभाषा में न होकर संस्कृत में होते हैं और व्याकरण से सम्बन्धित न होकर साहित्य से सम्बन्धित होते हैं । कर्त्ता के रूप में संज्ञा तथा सर्वनाम पता लगाने के लिए कः, कम्, केन, कस्मै, आदि प्रश्नसूचक शब्दों का प्रयोग करके प्रश्न पूछा जाता है । विशेषणों की जानकारी के लिए कीदृशं, किम्भूत, कथम्भूत आदि शब्दों का तथा क्रिया के ज्ञान के लिए किं करोति, किं कृत्वा आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है । कदा, कुत्र, कथम्, किमर्थम्, कुतः आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा क्रिया-विशेषण की जानकारी की जा सकती है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खण्डान्वय प्रणाली को हम प्रश्नोत्तर प्रणाली भी कह सकते हैं, क्योंकि इसमें प्रश्न तथा उत्तर का विशेष महत्त्व है। चुने हुए प्रश्नों एवं उपयुक्त उत्तरों द्वारा श्लोक के भाव को समझाया जाता है। यह प्रणाली प्रायः उन पद्यों को पढ़ाने के काम में लानी चाहिए जिसमें घटनाओं का वर्णन हो, विशेषणों की भरमार हो और भावों की अधिकता हो; उदाहरण के लिए—निम्नलिखित श्लोक को पढ़ाना है—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

इस श्लोक को खण्डान्वय प्रणाली से पढ़ाने के लिए निम्नलिखित प्रश्न करने होंगे :—

प्र०—विनयं का ददाति ?
उ०—विद्या ।
प्र०—विनयाद् का याति ?
उ०—पात्रताम् ।
प्र०—धनं कस्मात् आप्नोति ?
उ०—पात्रत्वात् ।
प्र०—धनात् कं (याति) ?
उ०—धर्मम् ।
प्र०—ततः परं किं अप्नोति ?
उ०—सुखम् ।

खण्डान्वय प्रणाली कविता-शिक्षण की एक अच्छी प्रणाली है। दण्डान्वय प्रणाली से तो यह उत्तम है ही। इसमें मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का भी अनुसरण किया जा सकता है। छात्रों का पर्याप्त सहयोग लिया जा सकता है और पाठ को रुचिकर बनाया जा सकता है। प्रश्नों द्वारा शिक्षक छात्रों की रुचि को पाठ के अन्त तक बनाये रख सकता है और छात्रों में वह क्षमता उत्पन्न कर सकता है कि वे श्लोक के भाव को स्वतः ग्रहण करने की ओर प्रेरित हों। दण्डान्वय पद्धति व्यक्तिगत शिक्षण में ही काम में लायी जा सकती है, जबकि खण्डान्वय पद्धति का प्रयोग कक्षा-शिक्षण के लिए भी हो सकता है। खण्डान्वय प्रणाली से पढ़ाने पर श्लोक के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को ग्रहण किया जा सकता है और इस प्रकार छात्र काव्यगत सौन्दर्य की अनुभूति करके उसका रसास्वादन कर सकते हैं।

(६) **भाषा-प्रणाली**—इस प्रणाली के पढ़ाने में अध्यापक कथावाचक की सी शैली अपनाता है। इस प्रणाली में अध्यापक प्रत्येक शब्द को परखता है और भाव एवं भाषा की दृष्टि से शब्द-योजना की जाँच करता चलता है। भाषा की दृष्टि से अक्षरों, शब्दों एवं पदों की आवृत्ति, अनुप्रास, यमक आदि; मध्यवर्ती तुकान्त पद; छन्द की गति, यति, मात्रिक क्रम; स्वरों के आरोह-अवरोह, कोमल तथा कठोर वर्ण;

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओज, प्रसाद, माधुर्य गुण आदि की ओर अध्यापक संकेत करता चलता है। भाषा की दृष्टि से अध्यापक उदाहरणों, अन्तःकथाओं, ऐतिहासिक घटनाओं एवं दृष्टान्तों द्वारा कविता के भाव को स्पष्ट कर देता है।

भाषा प्रणाली को व्यास प्रणाली भी कहते हैं क्योंकि इसमें अध्यापक को वही पार्ट अदा करना पड़ता है जो व्यास गद्दी पर कथावाचक श्रोताओं के समक्ष करता है। इस प्रणाली से पढ़ाने के लिए अध्यापक का कण्ठ अच्छा होना चाहिए, ताकि वह कविता का सुस्वर पाठ कर सके; साथ ही उसमें यह भी क्षमता हो कि वह भावानुसार उचित भावभंगिमा, भावाभिव्यंजकता एवं अभिनय अपना सके।

संस्कृत वाङ्मय में कई सुन्दर भाष्य उपलब्ध हैं जो इस प्रणाली का परिचय कराते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता पर जगद्गुरु, आदि शंकराचार्य का शांकर भाष्य बड़ा प्रसिद्ध है। उसी प्रकार दुर्गासप्तशती पर शान्तनवी भाष्य इस प्रणाली का सुन्दर उदाहरण है।

भाष्य प्रणाली में एक-एक शब्द को परखा जाता है। भाव की दृष्टि से अध्यापक अनेक उदाहरण एवं दृष्टान्त देता चलता है। अध्यापक को इस प्रणाली से पढ़ाने के लिए भाषा पर पूरा अधिकार रखना पड़ता है और उसका साहित्यिक ज्ञान बहुत विस्तृत होना चाहिए।

इस विधि का प्रयोग प्रारम्भिक एवं मध्य स्तर पर कदापि नहीं करना चाहिए। उच्च कक्षाओं के लिए ही यह प्रणाली उपयुक्त है। इस प्रणाली में अध्यापक ही सक्रिय रहता है, छात्र बिल्कुल निष्क्रिय रहते हैं। अध्यापक स्वयं कविता के शब्दों की तथा उसके अन्तर्गत भावों की विशद् व्याख्या करता चलता है और छात्र चुपचाप सुनते रहते हैं। उच्च भावों की कविताओं को पढ़ाने में यही विधि ठीक भी जँचती है, क्योंकि उच्च कक्षाओं में उच्च भावों की कविताओं के पढ़ाने के समय प्रश्न और उत्तर से रसानुभूति में व्याघात पड़ता है; किन्तु प्रारम्भिक एवं मध्य स्तर के छात्रों को प्रश्नोत्तर विधि से पढ़ाना अधिक मनोवैज्ञानिक एवं लाभप्रद है।

(७) तुलना प्रणाली—इस प्रणाली में अध्यापक प्रस्तुत कविता से मिलती-जुलती कविताएँ छात्रों के समक्ष रखता है जिससे प्रस्तुत कविता का भाव हृदयंगम करने में सफलता हो। इसके लिए अध्यापक को बड़ा परिश्रम करना पड़ता है और साथ में उसे साहित्य का विशद् ज्ञान भी होना चाहिए। यदि अध्यापक अन्य भाषाओं का भी ज्ञाता है तो वह इस प्रणाली से बहुत अच्छी तरह पढ़ा सकेगा। इस प्रणाली में समभाव की कविताओं को सामने रखकर उनमें तुलना की जाती है। तुलना से छात्रों की विवेचना-शक्ति व भाव-ग्रहण योग्यता में वृद्धि होती है। छात्र विभिन्न कविताओं को पाकर आनन्दित भी होते हैं। इस प्रकार तुलना प्रणाली में छात्रों की रुचियों को जाग्रत करना सरल हो जाता है। समभाव की कविताओं की तुलना द्वारा काव्यगत सौन्दर्य को निरखना और कविता का शिक्षण करना मध्य एवं उच्च स्तर पर ही उपयोगी होगा। प्रारम्भिक स्तर पर इस प्रणाली की इतनी उपयोगिता नहीं है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कभी-कभी एक ही कवि एक ही भाव को भिन्न स्थलों पर भिन्न प्रकार से प्रकट करता है। कभी-कभी एक ही भाव एक ही भाषा में भिन्न कवियों द्वारा भिन्न प्रकार से प्रकट किया जाता है और एक ही भाव भिन्न भाषा के कवियों में भी कभी-कभी भिन्न शैली में दिखाई पड़ जाता है। अतः हम समभाव की कविताओं की तुलना निम्न प्रकारों से कर सकते हैं—

१. एक ही भाषा के एक ही कवि द्वारा भिन्न स्थलों पर भिन्न प्रकार से व्यक्त एक ही भाव की कविताओं में तुलना।
२. एक ही भाषा के भिन्न कवियों द्वारा व्यक्त एक ही भाव की कविताओं में तुलना।
३. भिन्न भाषा के कवियों की कविताओं में तुलना।

इन तीनों प्रकार की तुलनाओं का नीचे संक्षेप में उदाहरण दिया जा रहा है—

महाकवि कालिदास संस्कृत के मूर्द्धन्य कवि हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थों में शीतल, मन्द एवं सुगन्धित पवन का बड़ा रोचक वर्णन किया है। यहाँ पर हम उनके पवन-वर्णन को दो भिन्न स्थलों से दे रहे हैं। कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में वे लिखते हैं—

भागीरथी निर्झरशीकराणां
वोढामुहुः कम्पित देवदारुः।
यद्वायुरन्विष्ट मृगैः किरातै
रासेव्यते भिन्न-शिखण्डिवर्हः॥

रघुवंश के तेरहवें सर्ग में वायु का वर्णन उन्होंने निम्नलिखित ढंग से किया है—

असौ महेन्द्रद्विपदानगंधी
त्रिमार्गगाबीचिविमर्दशीतः।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्था
नाचामतिस्वेद लवान्मुखेते॥

इसी प्रकार एक ही भाषा के विभिन्न रचयिताओं की रचनाओं से एक ही भाव की कविताओं को प्रस्तुत किया जा सकता है। कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की द्वितीय बल्ली के अठारहवें श्लोक में आत्मा की अमरता का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो-
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के बीसवें श्लोक में लगभग इसी प्रकार के शब्दों में वही भाव व्यक्त किया गया है। देखिए—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न जायते म्रियते वा कदाचि—
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

इसी प्रकार एक ही भाव की कविताएँ भिन्न भाषा में प्राप्त हो जाती हैं। छात्रों की मातृभाषा में यदि एक भाव की कविता है और उसी भाव की कविता संस्कृत में पढ़ानी है तो अध्यापक मातृभाषा की कविता से प्रस्तुत कविता की तुलना कर सकता है। छात्र इस तुलना में संस्कृत कविता के भावों को सरलता से हृदयङ्गम कर लेंगे। नीचे हिन्दी और संस्कृत की कविता का उदाहरण दिया जा रहा है—

मूकं करोति वाचालं पंगु लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

संस्कृत के उपर्युक्त श्लोक को पढ़ाते समय अध्यापक हिन्दी भाषा के महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के निम्नलिखित सोरठे की ओर संकेत कर सकता है—

मूक होहिं वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल द्रवहु सकल कलिमल दहन ॥

अथवा महाकवि सूरदास के निम्नलिखित पद से उस श्लोक की तुलना की जा सकती है—

चरन कमल बन्दौ हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कुछ दरसाई।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोले, रंक चलै सिर छत्र धराई ॥

एक और उदाहरण लीजिए। निम्नलिखित संस्कृत श्लोक को पढ़ाना है—

दुर्जनेन समं साख्यं, प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चांगारः, शीतः कृष्णायते करः ॥

इस श्लोक के अध्यापन के समय रहीम का निम्नलिखित दोहा प्रस्तुत किया जा सकता है—

रहिमन तजहु अँगार ज्यौं, ओछे जन को संग।
सीरो पै कारो करे, तातो जारे अङ्ग ॥

(८) **समीक्षा प्रणाली**—उपर्युक्त प्रणालियों के अतिरिक्त समीक्षा प्रणाली भी काव्य-शिक्षण की एक प्रणाली है जिसमें साहित्यालोचन के सिद्धान्तों से छात्रों को परिचित कराया जाता है और उन्हें सहायक पुस्तकों की सूची बताकर उचित मार्ग-दर्शन प्रदान कर दिया जाता है। उसके पश्चात् छात्र स्वयं कविता की भाषा व शैली आदि की समीक्षा करते हैं और तद्गत केन्द्रीय भाव को ग्रहण करते हैं। कक्षा में समीक्षा करते समय प्रश्नोत्तर का सहारा लिया जा सकता है और समान भाव की कविताओं से तुलना भी की जा सकती है। यह प्रणाली प्रारम्भिक एवं मध्य स्तर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के छात्रों के लिए अनुपयुक्त है, क्योंकि छात्रों का परिचय आलोचना के सिद्धान्तों से नहीं रहता है। उच्च कक्षाओं में इस प्रणाली से अध्यापन किया जा सकता है।

शिक्षण-क्रम

(क) पद्यात्मक पाठ तीन प्रकार के होते हैं—(१) सूचनात्मक, (२) सूक्ति-रूप एवं (३) रसात्मक। सूचनात्मक तथा सूक्ति-रूप पाठों की पाठन-विधि गद्य-पाठों जैसी ही होती है। छन्दोबद्धता तथा चमत्कारपूर्णता के कारण पाठन-विधि में थोड़ा-सा अन्तर पड़ जाता है। जहाँ विशेषता केवल छन्दोबद्धता की हो, वहाँ छात्रों को अन्वय करने की विधि भी बतानी चाहिए। छात्रों को वाक्य में पद-क्रम का स्वरूप समझा देने से वे अन्वय स्वयं करने लगते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी तथा संस्कृत में कोई विशेष अन्तर नहीं है, अतः अर्थ-ग्रहण के पश्चात् छात्र स्वयं अन्वय कर लेंगे। अन्वय रटाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, अन्यथा छात्र समझने का प्रयत्न नहीं करेंगे।

जिन श्लोकों में किसी प्रकार का चमत्कार हो, उनका अर्थ ग्रहण करा देने के पश्चात् चमत्कार का अनुभव कराने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि छात्रों को चमत्कार का आनन्द मिल गया तो, वे प्रसन्न हो उठेंगे और विषय में उनकी स्वाभाविक रुचि उत्पन्न हो जायेगी।

जो पाठ रसात्मक हो, उनको पढ़ाते समय अध्यापक को विशेष सावधान रहने की आवश्यकता होती है। अर्थ-ग्रहण करा देने के पश्चात् अध्यापक को चाहिए कि वह कवि की अनुभूति को छात्रों के हृदय में जगाने का प्रयत्न करे। जिस प्रकार के भाव छात्रों की अनुभूति के विषय बन चुके हैं, उनसे सम्बद्ध रस की अनुभूति ही छात्रों से कराई जा सकती है। अनुभूति को जगाने के लिए भावोद्बोधक प्रश्नों तथा समानार्थक काव्यांशों का प्रयोग करना चाहिए। पद्यात्मक पाठों के अध्यापन में वाचन का बहुत महत्त्व होता है।

कविता पढ़ाने के लिए पाठ-योजना की रूपरेखा एवं कविता-शिक्षण का क्रम निम्नलिखित होगा।

१. **सामान्य प्रारम्भिक बातें**; यथा—दिनांक, कक्षा, कालांश, अवधि, विषय, शीर्षक।
२. **सामान्य उद्देश्य**
३. **विशिष्ट उद्देश्य**
४. **सहायक सामग्री**
५. **पूर्व-ज्ञान**
६. **प्रस्तावना**—कविता की प्रस्तावना निम्नलिखित ढङ्ग से हो सकती है—
    (क) कतिपय प्रश्नों द्वारा।
    (ख) कवि का संक्षिप्त परिचय देकर।
    (ग) समानार्थक संस्कृत कविता का पाठ करके एवं उस पर प्रश्न करके।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(घ) मातृभाषा का किसी समान भाव वाली कविता का पाठ करके एवं उस पर प्रश्न करके ।

७. उद्देश्य-कथन

८. विषयोपस्थापन—

(क) पाठ्य-सामग्री का उल्लेख (अन्विति का उल्लेख)
(ख) शिक्षक द्वारा आदर्श वाचन ।
(ग) अनुवाचन—शिक्षक के नेतृत्व में छात्रों द्वारा ।
(घ) छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन ।
(ङ) बोध-परीक्षा ।

९. स्पष्टीकरण—

(क) अन्वय ।
(ख) पदच्छेद तथा पदार्थ कथन ।
(ग) शिक्षक द्वारा स्पष्टीकरण ।
(घ) भाव विश्लेषणात्मक प्रश्न ।
(ङ) शिक्षक द्वारा श्लोक का पाठ ।

१०. तुलना—संस्कृत तथा मातृभाषा में समान भाव की कविताओं का पाठ करके उनसे प्रस्तुत कविता की तुलना कराना ।

११. सस्वर वाचन—शिक्षक अथवा/तथा छात्रों द्वारा ।

१२. प्रयोग—

(क) छात्रों को श्लोक कण्ठस्थ कराना ।
(ख) श्लोक का मातृभाषा में भावानुवाद करना ।
(ग) अन्वय लिखाना ।

पद्य पाठ-योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम.......... दिनांक..........
अध्यापक का नाम.......... कक्षा ७ वर्ग—ग
कालांश—द्वितीय अवधि—४० मिनट
विषय—संस्कृत काव्य उपविषय—गीतामृतम्

सामान्य उद्देश्य—१. संस्कृत कविता के प्रति छात्रों का सामान्य अनुराग उत्पन्न करना ।

२. गति, लय, यति एवं भाव के अनुसार श्लोक पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना ।

३. कविता के मुख्य भावों को ग्रहण करने की योग्यता प्रदान करना ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. छात्रों के भावों का परिष्कार करते हुए उनमें उदात्त भावों का विकास करना ।
५. कविता के अन्तर्गत शब्द-योजना के आधार पर दृश्य-चित्रों की उद्भावना करना ।
६. काव्यगत सौन्दर्य की अनुभूति करने की क्षमता प्रदान करना ।
७. संस्कृत कविता का रसास्वादन करके अपने शब्दों में उसकी व्याख्या करने की क्षमता प्रदान करना ।
८. छात्रों को कविता की विभिन्न शैलियों से परिचित करना ।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को इस तथ्य से परिचित कराना कि धर्म के ह्रास के सम सज्जनों के परित्राण के लिए भगवान अवतार धारण करते हैं । इसी बहाने छात्रों के समक्ष गीता के अमर सन्देश की झाँकी प्रस्तुत करना और छात्रों के मन में उदात एवं पुण्य विचारों को सुदृढ़ बनाना ।

सहायक सामग्री— लपेट श्यामपट पर तुलसीकृत दो चौपाइयाँ तथा कान्त-कवि की कुछ पंक्तियाँ ।

पूर्व-ज्ञान— छात्र यह जानते हैं कि राम और कृष्ण अधिकांश भारतीयों द्वारा भगवान के रूप में पूजे जाते हैं। वे रामनवमी एवं जन्माष्टमी का महत्त्व जानते हैं । वे यह भी जानते हैं कि महाभारत का युद्ध कौरवों तथा पाण्डवों में हुआ एवं श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया ।

प्रस्तावना— अध्यापक छात्रों से निम्नलिखित प्रश्न करेगा—

१. हम रामनवमी क्यों मनाते हैं ? (भगवान् राम का जन्म-दिन है)
२. जन्माष्टमी मनाने का क्या कारण है ? (भगवान कृष्ण का जन्म-दिवस है)
३. राम और कृष्ण के समय की सर्वप्रमुख घटनाएँ कौन-सी थी ? (राम-रावण युद्ध, महाभारत)
४. महाभारत का युद्ध किस-किस के बीच में हुआ ? (कौरवों एवं पाण्डवों के बीच)
५. अर्जुन कौन था ? (पाण्डव एवं कृष्ण का सखा)
६. भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को क्या उपदेश दिया ? (गीता का उपदेश)
७. यह उपदेश कब दिया गया ? (महाभारत युद्ध के समय)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उद्देश्य कथन— महाभारत युद्ध के समय अर्जुन के मन में बड़ा विषाद उत्पन्न हुआ। उस समय अर्जुन के रथ के सारथी एवं कुशल राजनीतिज्ञ तथा धर्मनायक भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कर्त्तव्य-परायणता का उपदेश दिया। ये उपदेश 'गीता' के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में वेदों एवं उपनिषदों का सम्पूर्ण सार आ गया है। आज हम इसी गीता के दो श्लोकों का अध्ययन करेंगे जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण ने इस बात पर बल दिया है कि सन्तों की रक्षा वे स्वयं करते हैं।

विषयोपस्थापन— यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनर्थाय संभवामि युगे युगे॥ (गीता, ४।७-८)

सम्पूर्ण पाठ (अर्थात् दोनों श्लोकों को) एक ही अन्विति में पढ़ाया जायगा।

आदर्श वाचन— अध्यापक दोनों श्लोकों का उचित लय एवं भावपूर्ण मुद्रा में आदर्श वाचन करेगा।

अनुवाचन— अध्यापक एक पंक्ति अथवा पंक्ति के अंश का पहले वाचन करेगा। तत्पश्चात् छात्रों द्वारा उतने का ही सस्वर वाचन होगा। वाचन की सुविधा के लिए नीचे संकेत दिया जा रहा है।

यदा यदा हि। धर्मस्य। ग्लानिः। भवति भारत।
अभ्युत्थानम्। अधर्मस्य। तदात्मानं। सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय। साधूनां। विनाशायच। दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय। संभवामि युगे युगे॥

अनुकरण वाचन— कतिपय छात्रों द्वारा व्यक्तिगत रूप से एक-एक करके श्लोकों का सस्वर वाचन किया जायगा।

बोध परीक्षा—
१. इन श्लोकों में वक्ता कौन है? (भगवान् श्रीकृष्ण)
२. भगवान् श्रीकृष्ण किससे कह रहे हैं? (अर्जुन से)
३. भगवान् अवतार कब लेते हैं? (जब धर्म का ह्रास होता है)

स्पष्टीकरण—

अन्वय— सर्वप्रथम श्लोकों का खण्डान्वय प्रणाली से अन्वय किया जायगा।

प्रश्न—एतयोः श्लोकयोः क कथयति?

उत्तर—भगवान् श्रीकृष्णः कथयति।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रश्न—सः कं कथयति ?

उत्तर—अर्जुनम् ।

प्रश्न—भगवान् श्रीकृष्णः अर्जुनं केन नाम्ना सम्बोधयति ?

उत्तर—'भारत' नाम्ना ।

प्रश्न—भगवान् कं सृजति ?

उत्तर—आत्मानम् ।

प्रश्न—कस्य ग्लानिः भवति ?

उत्तर—धर्मस्य ।

प्रश्न—अधर्मस्य किम्भवति ?

उत्तर—अभ्युत्थानम् ।

प्रश्न—भगवान् आत्मानं कदा सृजति ?

उत्तर—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति, अधर्मस्य च अभ्युत्थानम् भवति ।

प्रश्न—केषाम् परित्राणाय भगवान् सम्भवति ?

उत्तर—साधूनां परित्राणाय ।

प्रश्न—कस्य संस्थापनार्थाय सः अवतरित ?

उत्तर—धर्मसंस्थापनार्थाय ।

प्रश्न—अवतारस्य अन्यत् किं प्रयोजनम् ?

उत्तर—दुष्कृताम् विनाशः ।

पदच्छेद तथा पदार्थ-कथन—कविता-शिक्षण में पदार्थ के लिए सामान्य पदच्छेद ठीक है । किन्तु अनेकानेक युक्तियों का प्रयोग सौन्दर्यानुभूति में बाधक है, अतः पदार्थ का कथन करके आगे बढ़ा जायेगा ।

पदच्छेद—ग्लानिर्भवति = ग्लानिः + भवति

अभ्युत्थानमधर्मस्य = अभ्युत्थानम् + अधर्मस्य

तदात्मानं = तदा + आत्मानं

सृजाम्यहम् = सृजामि + अहम्

धर्मसंस्थापनार्थाय = धर्मसंस्थापन + अर्थाय

पदार्थ

पद	अर्थ
ग्लानिः	ह्रास, अवनति
भारत	अर्जुन
अभ्युत्थानम्	उन्नति
आत्मानं	स्वयं को
परित्राणाय	रक्षा के लिए
साधूनां	सज्जनों को
दुष्कृताम्	पापियों की
विनाशाय	नाश के लिए
संस्थापनार्थाय	स्थापना करने के लिए

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अध्यापक-कथन— इन श्लोकों में 'सृजामि तथा सम्भवामि' दोनों क्रियाएँ ध्यान देने योग्य हैं। एक का अर्थ है, रचना; दूसरे का अर्थ है, उत्पन्न होना। भगवान् स्वयं की रचना भी करते हैं। रचना और रचयिता दोनों ही वह स्वयं हैं। जब वे इस धरा पर उत्पन्न होते हैं और मनुष्य शरीर धारण करते हैं तो इसे अवतार कहा जाता है। जब-जब धर्म की अवनति और अधर्म की उन्नति होती है तो पापों के नाश, सज्जनों की रक्षा एवं धर्म की स्थापना के लिए भगवान् अवतार धारण करते हैं।

भाव-विश्लेषणात्मक प्रश्न—१. भगवान् अवतार कब धारण करते हैं ? (जब धर्म की अवनति और अधर्म की उन्नति होती है।)

२. वे अवतार क्यों धारण करते हैं ?
(सज्जनों की रक्षा एवं धर्म की स्थापना के लिए।)

३. अवतार में कौन किसकी रचना करता है ?
(भगवान् स्वयं ही स्वयं की रचना करते हैं।)

४. कुछ प्रमुख अवतारों के नाम बताओ।
(राम, कृष्ण, परशुराम, मत्स्य, कच्छप, नृसिंह, वराह, वामन आदि।)

५. इन श्लोकों से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?
(भगवान् धर्म की रक्षा करते हैं एवं अधर्म का नाश करते हैं।)

आदर्श वाचन— अध्यापक श्लोकों का पुनः आदर्श वाचन करेगा।

तुलना—
(अध्यापक-कथन) छात्रो ! जिस भाव को गीता के इन दो श्लोकों में व्यक्त किया गया है, उसी भाव को हिन्दी के सन्त कवि भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'श्रीरामचरितमानस' में निम्नलिखित ढङ्ग से प्रकट किया है—

जब जब होहिं धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर महा अभिमानी॥
तब तब धरि प्रभु मनुज शरीरा।
हरहिं दयानिधि सज्जन पीरा॥

यहाँ पर गोस्वामी तुलसीदास ने स्पष्ट रूप से कहा है कि धर्म की हानि एवं असुरों की वृद्धि होने पर सज्जनों की पीड़ा के निवारणार्थ भगवान् मनुष्य का शरीर धारण करते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उड़िया के प्रसिद्ध कवि लक्ष्मीकान्त महापात्र ने भी 'युगावतार' शीर्षक के अन्तर्गत इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं। कान्त कवि लिखते हैं—

दुष्कृति विनाश-सन्थजन परित्राण—
कारण घरारे अवतरि महाप्राण,
स्वर्गर वारता घेनि अहे देवदूत।
पुण्यभूमि भारत को करि अच्छा पूत।
धर्मसंस्थापन हेतु युगे युगे जहिं,
अवतरि ऐसी शक्ति उस्वासइ महि।

यहाँ पर धेनि का अर्थ लाना, वारता का अर्थ वार्त्ता, ऐसी का अर्थ ईश्वरीय तथा उस्वासइ का अर्थ भार हल्का करने से है। उड़ीसा का यह प्रसिद्ध कवि कहता है कि दुष्कृति के विनाश एवं सन्तों के परित्राण के कारण जो देवदूत ! तुम स्वर्ग के समाचार लाये हो जिसने पुण्य भूमि भारत को पवित्र किया है; युग-युग में पृथ्वी के भार को कम करने के लिए एवं धर्म की स्थापना के लिए तेश्वरीय शक्ति का अवतार होता है।

सस्वर वाचन—कतिपय छात्रों द्वारा श्लोकों का पाठ किया जायगा।

प्रयोग— दोनों श्लोकों, तुलसी की चौपाई एवं कान्त कवि की पंक्तियों को घर से कण्ठस्थ करके लाओगे।

पद्य पाठ-योजना
[द्वितीय]

विद्यालय का नाम………… दिनांक…………
अध्यापक का नाम………… कक्षा—११, वर्ग—ब
विषय—संस्कृत पद्य अवधि—४० मिनट
शीर्षक—हिमालय वर्णनम् कालांश—सप्तम

सामान्य उद्देश्य—१. गति, यति, लय एवं भाव के अनुसार छन्द-पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।

२. कविता के मुख्य भावों को ग्रहण करने की योग्यता प्रदान करना।

३. छात्रों के भावों का परिष्कार करते हुए उनमें उदात्त भावों का विकास करना।

४. कविता के अन्तर्गत शब्द-योजना के आधार पर दृश्य-चित्रों की उद्भावना करना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५. काव्यगत सौन्दर्य की अनुभूति करने की क्षमता प्रदान करना।
६. कविता का रसास्वादन करके अपने शब्दों में उसकी व्याख्या कर सकना।
७. छात्रों को कविता की विभिन्न-शैलियों से परिचित कराना।
८. छात्रों को वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ, प्रसंगोद्भावनाएँ, अन्तःकथाएँ एवं समान भाव की कविताओं से परिचित कराना।
९. कवि के जीवन-दर्शन से छात्रों को परिचित कराना।
१०. छात्रों की कल्पना-शक्ति का विकास करते हुए उन्हें काव्यगत, रस एवं भाव का आनन्द लेने के योग्य बनाना।
११. स्वयं काव्य-रचना करने के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करना।

विशिष्ट उद्देश्य—१. छात्रों को हिमालय पर्वत की प्राचीनता और श्रेष्ठता से, अवगत कराना।
२. छात्रों में हिमालय के प्रति रागात्मक सम्बन्ध उत्पन्न कर, भारत के साथ उसकी अभिन्नता का ज्ञान देना।

सहायक सामग्री—लपेट श्यामपट पर लिखित कतिपय समानान्तर कविताएँ तथा कक्षोपयोगी अन्य सामान्य उपकरण।

पूर्व-ज्ञान— १. छात्र भारत की उत्तरी सीमा के दृढ़ प्रहरी हिमालय पर्वत के नाम से पूर्णतया परिचित हैं।
२. वे इस पर्वत की सर्वोच्चता, महत्ता तथा उपयोगिता का ज्ञान भी रखते हैं।
३. हिन्दी भाषा में इसके प्रति लिखी गयी कविताओं का अध्ययन भी वे कर चुके हैं।

प्रस्तावना— अध्यापक छात्रों को निम्नलिखित कविता सुनाकर प्रश्न करेगा—

'वाल्मीकिमुख्याः कवयो यदीयाम्, सर्वे प्रभूतां प्रथयन्ति कीर्तिम्।
वेदप्रभा दीपितभूसुराणाम् देश चिरं भानु स भारताख्यः ॥१॥
सुधोपमैर्दिव्यजलैः सदैव, गङ्गादयो यं सततं चुनन्ति।
श्री शारदागीतयशः प्रशस्तिः देशः चिरं भानु सभारताख्यः ॥२॥

१. इस कविता में किस देश का वर्णन किया गया है?
२. यहाँ की सबसे पवित्र नदी कौन-सी है?
३. गंगा नदी किस पर्वत से निकलती है?
४. इस पर्वत का नाम हिमालय क्यों है?
५. इस पर्वत का सर्वोच्च शिखर किस नाम से विख्यात है?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उद्देश्य-कथन— विश्व के समस्त पर्वतों में अपने उन्नत शिखरों के लिए प्रसिद्ध, सदैव हिम से आच्छादित हिमालय भारत के गौरव का प्रतीक है। यह प्रकृति-प्रेमियों की रमण-स्थली है तो कवियों की कल्पना का उज्ज्वल विषय। प्राचीन समय से आज तक अनेक कवियों ने, अनेक भाषाओं में, सुन्दर भावों और मंजुल कल्पनाओं से इसके रूप का वर्णन किया है। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास ने भी अपने महाकाव्य कुमारसम्भव के प्रारम्भ में इस पर्वत-श्रेष्ठ की मनोरमता का अनुपम वर्णन किया है। आज हम हिमालय के उसी विशद् वर्णन के कुछ श्लोकों का रसास्वादन करेंगे।

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥
अनन्त रत्न-प्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्य विलोपि जातम्।
एक हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥

विषयोपस्थापन— पाठ को अन्वितियों में विभक्त करके पढ़ाया जायगा—

१. 'यं सर्वशैलाः.....................धरित्रीम्।'
२. "अनन्त.....................अङ्क।"

आदर्श पाठ— अध्यापक प्रथम अन्विति का उचित स्वरारोह-अवरोह के साथ एवं समुचित भाव-भङ्गिमा सहित सस्वर पाठ करेगा।

उच्चारणाभ्यास— अध्यापक निम्नलिखित पदों का उच्चारण छात्रों से पूछेगा तथा यथावश्यक अभ्यास करायेगा—

(१) परिकल्प्य, (२) मेरौ, (३) महौषधीश्च, (४) पृथूपदिष्टाम्, (५) दुदुहुर्धरित्रीम्।

अनुकरण पाठ— कतिपय छात्रों द्वारा।

बोध-प्रश्न— १. समस्त पर्वतों ने किसका दोहन किया?
२. दोहन करके पृथ्वी से उन्होंने क्या प्राप्त किया?

स्पष्टीकरण— अध्यापक छात्रों के लिए निम्न पदों का अर्थ स्पष्ट करेगा—

पद	अर्थ	प्रणाली
१. परिकल्प्य	बनाकर या मानकर	व्युत्पत्ति द्वारा परि+कल्प्+ल्यप
२. दोग्धरि	दोहन करने वाले	अर्थ-कथन द्वारा
३. दोहदक्षे	दोहन क्रिया में कुशल	समास-विग्रह द्वारा
४. भास्वन्ति	प्रभामय	पर्याय-कथन द्वारा
५. महौषधीः	दिव्य-औषधियों को	सन्धि-विच्छेद द्वारा महा+औषधीः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६. पृथूपदिष्टाम्	राजा पृथु द्वारा बताई गई	सन्धि-विच्छेद द्वारा पृथु + उपदिष्टाम्

भाव-विश्लेषणात्मक प्रश्न—१. पृथ्वी को हम भारतीय किस प्राणी के रूप में मानते हैं ?

अध्यापक-कथन— श्रीमद्भागवत् पुराण में उल्लेख है कि एक बार राजा पृथु के राज्य में अन्न की भारी कमी हो गयी। अन्न-उत्पादन भी नहीं हुआ। प्रजा भूख से मरने लगी। महाराज पृथु ने अपने ज्ञान द्वारा यह ज्ञात कर लिया कि पृथ्वी का यह दोष है और उसने अपने में अन्नादिक को छिया लिया है। वह कुपित हुआ और धनुष-बाण लेकर पृथ्वी को नष्ट कर डालने के लिए उद्यत हुआ। पृथ्वी उसके भय से गौ का रूप धारण कर भागी, किन्तु वह तब तक उसका पीछा करता रहा, जब तक वह गौ उसी की शरण में न आयी। तभी से हम गौ के रूप में पृथ्वी को मानते हैं।

२. गाय से दूध दुहने के लिए किन-किन साधनों की आवश्यकता होती है ?
३. गाय किसके प्रति स्नेह होने के कारण दूध प्रदान करती है ?
४. गौ रूपी पृथ्वी का किसके आदेश से दोहन किया गया ?
५. गौ रूपी पृथ्वी का किसने दोहन किया ?
६. समस्त पर्वतों ने किसको बछड़ा बनाया ?
७. अतः हिमालय किसका पुत्र हुआ ?
८. दोहन के समय, दोहन-कर्त्ता कौन उपस्थित था ?
९. मेरु पर्वत किस क्रिया में चतुर था ?
१०. हिमालय को बछड़ा बनाकर, पर्वतों ने गौ रूपी पृथ्वी से क्या निकाला ?
११. वे रत्न कैसे (रूप वाले) थे ?
१२ वे औषधियाँ कैसी थीं ?
१३. पृथ्वी का दोहन क्यों किया गया ?

अध्यापक-कथन— जब राजा पृथु पृथ्वी से कुपित थे, शरणागत पृथ्वी ने उनके समक्ष अपने अपराध को स्वीकार किया एवं अन्न, रत्न आदि सभी वस्तुएँ पुनः पूर्व की भाँति देने के लिए कहा; तब राजा पृथु ने सभी वर्गों के प्राणियों और अनुचरों से भी पृथ्वी का दोहन करने के लिए कहा। राजा पृथु के आदेश से देव, दानव, पशु, वनस्पति, पर्वत आदि सभी ने गौ रूपी पृथ्वी का दोहन करके उत्तम पदार्थों, रसों और सम्पत्तियों को प्राप्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया। पर्वतों द्वारा हिमालय को वत्स बनाकर पृथ्वी दोहन करने की कथा का उल्लेख श्रीमद्‌भागवत् महापुराण के चौथे स्कन्ध के अन्तर्गत १८वें अध्याय के २५वें श्लोक में हुआ है। व्यास जी कहते हैं कि —"गिरयो हिमवद्‌वत्सां नानाधातून् स्वसानुषु।"

अर्थात् "पर्वतों ने हिमालय वत्स वाली पृथ्वी से निकाल कर अपने शिखरों पर अनेक प्रकार की धातुओं को धारण किया।"

१४. इस पौराणिक कथा से हिमालय की क्या विशेषता प्रकट होती है?

अध्यापक-कथन— हिमालय प्रत्येक युग में एक महत्त्वपूर्ण पर्वत रहा है। इसीलिए वह भारतीयों को प्रिय है तथा उनके द्वारा प्रशंसनीय व पूजनीय है।

१५. इस प्रतीकात्मक कथा का रहस्य क्या है?

अध्यापक-कथन— हिमालय पृथ्वी-पुत्र है। अतः समस्त चराचर जगत् में वह सर्वश्रेष्ठ है। माँ अपने शरीर के सारे दूध को, स्नेहवश अपने पुत्र को दे देना चाहती है। पृथ्वी ने भी यही किया है। पृथ्वी को वसुन्धरा कहा जाता है। उसका सार है— रत्न, दिव्य वनस्पतियाँ एवं अन्य खनिज-पदार्थ। वे सब हिमालय पर अपरिमित रूप से प्राप्त होते हैं जिसे मानो पृथ्वी ने ही उसे प्रदान किया है। अर्थात् समस्त पृथ्वी पर हिमालय पर्वत ही, अन्य स्थानों की अपेक्षा सर्वाधिक दिव्य सम्पदाओं को धारण करने वाला है—महान् है।

आदर्श पाठ— अध्यापक द्वारा—द्वितीय अन्विति का।

उच्चारणाभ्यास— अध्यापक निम्नलिखित पदों का उच्चारण छात्रों से पूछेगा तथा यथावश्यक अभ्यास करायेगा—

(१) अनन्तरत्न-प्रभवस्य, (२) निमज्जतीन्दोः, (३) किरणेष्विवाङ्कः।

अनुकरण-पाठ— कतिपय छात्रों द्वारा।

बोध-प्रश्न—

१. हिमालय पर्वत पर निरन्तर क्या छायी रहती है?

२. हिम से आच्छादित हिमालय का वर्ण कैसा है?

स्पष्टीकरण— अध्यापक छात्रों के लिए अग्रलिखित पदों का अर्थ स्पष्ट करेगा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

	पद	अर्थ	प्रणाली
१.	अनन्त-रत्नप्रभवस्य	असंख्य रत्नों को उत्पन्न करने वाले	समास-विग्रह द्वारा "अनन्तानि रत्नानि प्रभवति यस्यात् स तस्य"
२.	सौभाग्य विलोपि	सुन्दरता को नष्ट करने वाला	"सौभाग्यं विलोपयति यत् तत्" समास-विग्रह द्वारा
३.	गुण-सन्निपाते	गुणों के समूह में	समास-विग्रह द्वारा "गुणानां सन्निपाते"
४.	निमज्जति	लीन हो जाता है, (नष्ट हो जाता है)	अर्थ-कथन द्वारा
५.	इन्दोः	चन्द्रमा का	"चन्द्रस्य' पर्याय-कथन द्वारा
६.	अङ्क	कालिमा	"कृष्णं चिह्नम्" पर्याय-कथन द्वारा

भाव-विश्लेषणात्मक प्रश्न—१. हिमालय पर्वत क्या उत्पन्न करने वाला है ?
२. हिमालय से रत्न कितनी मात्रा में उत्पन्न होते हैं ?
३. हिमालय को सदा कौन आच्छादित किये रहता है ?
४. हिमालय पर आच्छादित हिम होने से उस पर क्या उत्पन्न नहीं होते ?
५. पर्वत की शोभा किन-किन कारणों से होती है ?
६. हिम उस शोभा को कैसा बनाता है ?
७. परन्तु कवि ने हिम को कैसा बताया है ?
८. हिमालय के हिम का दोष किन में लीन हो जाता है ?
९. इस प्रकार हिमालय में दोषों की अपेक्षा क्या अधिक है ?
१०. चन्द्रमा में क्या दोष है ?
११. चन्द्रमा की क्या विशेषता है ?
१२. चन्द्रमा की कालिमा किसमें लीन हो जाती है ?
१३. इस उदाहरण द्वारा कवि क्या सिद्ध करना चाहता है ?

सस्वर पाठ— अन्विति-द्वय का, अध्यापक या छात्रों द्वारा।

आवृत्त्यात्मक प्रश्न—१. सर्वशैलाः का दुदुहुः ?
२. सा धरित्री केन निर्दिष्टा ?
३. शैलाः कं वत्स पर्यकल्पत।
४. कानि धरित्र्याः शैलाः प्राप्नुवन् ?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५. हिमालयस्य सौन्दर्यं केन न विनष्टम् ?
६. हिमालय दोषः—हिमं कस्मिन् निमज्जति ?
७. चन्द्रमसः अङ्क केषु निमज्जति ?
८. अतः गुणेषु विद्यमानेषु अपि कः न मान्यः भवति ?

समानान्तर कविता—अध्यापक छात्रों से हिमालय सम्बन्धी कविता (संस्कृत या मातृभाषा में) सुनाने के लिए कहेगा तथा स्वयं भी निम्न-लिखित कविताएँ सुनायेगा :—

उत्तरे भारते वर्षे राजते हिम-पर्वतः ।
योऽसौ शुभ्रतया नित्यम् पुञ्जीभूतः सतोगुणः ॥१॥

नानामणि-गणागार, दिव्यौषध-समावतः ।
धातुमान् विश्रुतः लोके, रम्यः देव-कुलाश्रयः ॥२॥

शक्ति-शील सौन्दर्य तेज श्री विक्रम का अपूर्व अवतार ।
मानवता के हित जीवन का महिमामय आदर्श उदार ।
राजित है उत्तर आशा में ध्रुव सा पर्वतराज विशाल ।
आदि अन्त्य सम्राट विश्व का भारत का शाश्वत भूपाल ॥१॥

स्वर्ग-सुमेरु समुन्नत जिसके अक्षय वैभव-कोष समान ।
अमित दया से द्रवित प्रात नित करता निर्झर कर से दान ।
पाकर जीवन को विभूति सा निर्मल औ पावन परमार्थ ।
धरणी के जीवों का जीवन होता सफल, समृद्ध कृतार्थ ॥२॥

शिलाजीत, केसर, कस्तूरी, मधु जीवन के दिव्य पदार्थ ।
कर लोकों को भेंट कर रहा जो उनका आयुष्य कृतार्थ ।
हरे-भरे वनखण्ड मनोहर रंग रागमय फल औ फूल ।
बना रहे हैं स्वर्ग-कामना लोकों की नितान्त निर्मूल ॥३॥

शिशिर-काल में जब समाधि में होते हैं सब पर्वत लीन ।
हिम की सत्वोज्ज्वल समृद्धि के सम में होते भेद विलीन ।
सत्त्व-शुभ्र हिम की महिमा में, समरस हो गिरिवन सर ताल ।
दीपित करते दिव्य ज्योति से भूमण्डल का उन्नत-भाल ॥४॥

गृह-कार्य—दोनों श्लोकों का अन्वय लिखिए ।

१०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११ गद्य-शिक्षण

संस्कृत गद्य का महत्त्व

संस्कृत साहित्य में गद्य का प्रयोग कब से प्रारम्भ हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यजुर्वेद में ही हमें प्रथम वार गद्य के दर्शन होते हैं। तैत्तिरीय संहिता तक में हम गद्य का दर्शन कर सकते हैं। उपनिषदों में भी गद्य का भाग पद्य के भाग से अधिक है। इससे विदित होता है कि वैदिक काल में भी गद्य का प्रयोग होता था।

गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है—'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति'। कविता में कवि अलङ्कार व पिंगल से बँधा रहता है, किन्तु अलङ्कार व पिंगल शैली के विकास में मार्गदर्शक का काम करते हैं। काव्य में यदि कवि कोई भूल कर डालता है तो यह कहकर उस भूल की उपेक्षा कर दी जाती है कि मात्राओं के बन्धन के कारण उसे ऐसा करना पड़ा। किन्तु गद्य में लेखक के लिए कोई बन्धन नहीं होता, इसीलिए उसे गद्य में बड़ी सावधानी वरतनी पड़ती है। दूसरी बात यह है कि अलंकार एवं पिंगल जैसे मार्गदर्शकों का भी अभाव रहता है। अतः कवि को अपनी शैली के विकास में व्यक्तिगत गुणों का ही आश्रय लेना पड़ता है। इसीलिए कहा जाता है कि गद्य कवियों की कसौटी है।

संस्कृत-गद्य में दण्डी, सुवन्धु और बाण के ग्रन्थ मुकुटायमान हैं। इनके पूर्व के गद्य-ग्रन्थों में शैली का वह विकास नहीं मिलता जो कादम्बरी या दशकुमारचरित में दिखाई पड़ता है। दण्डी, सुबन्धु व बाण के ग्रन्थ नीरस गद्य-ग्रन्थ न होकर गद्य-काव्य हैं और पाठक के मन को उतना ही आनन्द प्रदान करते हैं जितना कि उच्च-कोटि के काव्य।

संस्कृत का गद्य-साहित्य

दशकुमारचरित के रचयिता दण्डी सम्भवतः बाण से कुछ पूर्व के समय में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

थे और उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में सभी कार्य-कलापों में दिव्य कौशल का वर्णन किया है। इसमें दस राजकुमारों के एक-दूसरे से विमुक्त होकर पुनः मिलने का वर्णन है। इसमें राजकुमार अपनी शृङ्गार-रसपूर्ण शक्ति की गाथाएँ सुनाते हैं। इनके माध्यम से दण्डी ने भारतीय समाज के विलासी लोगों के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। वासवदत्ता के रचयिता सुबन्धु का काल सातवीं शताब्दी है। वासवदत्ता में सुबन्धु ने अपने युग की एक प्रणय-कथा का वर्णन किया है। बाण रचित हर्षचरित और कादम्बरी तो संस्कृत साहित्य के अति प्रसिद्ध महाकथा-ग्रन्थ हैं।

संस्कृत में कुछ जीवनियाँ भी लिखी गई हैं। चौदहवीं शताब्दी में मेरुतुङ्गाचार्य ने प्रवन्ध-चिन्तामणि की रचना की, जिसमें विक्रमार्क, सातवाहन, मुञ्ज, भोज, कुमारपाल, वराहमिहिर, भर्तृहरि, वाग्भट्ट आदि विख्यात महापुरुषों की जीवनियों के साथ उनकी शिक्षाओं का वर्णन है। इसी शताब्दी में राजशेखर का प्रबन्धकोश भी रचा गया, जिसमें चौबीस महापुरुषों का जीवन-चरित वर्णित है। सोलहवीं शताब्दी में वल्लालसेन ने भोजप्रबन्ध की रचना की, जिसमें भोज की उदारता का वर्णन है।

दण्डी, सुबन्धु व बाण से संस्कृत में गद्य-साहित्य को समाप्त नहीं समझना चाहिए। संस्कृत में गद्य-साहित्य की रचना बाद में ही होती रही है। मारवाड़ प्रदेशवासी देवविजयगणी ने १५९६ ई० में गद्य में रामचरित की रचना की है। सत्तरहवीं शताब्दी में महाकवि वरददेशिक ने श्लोकों के साथ एक गद्य-रामायण की रचना की। मैसूर के राजा राजकृष्णराज की सभा के राजपण्डित श्री अहोविल नृसिंह ने अभिनव कादम्बरी की रचना की जिसमें राजकृष्ण के पराक्रमों का वर्णन है। अठारहवीं शताब्दी में अल्मोड़ावासी महाकवि विश्वेश्वर पाण्डेय ने मन्दारमञ्जरी की रचना की। उन्नीसवीं शताब्दी में श्री शैल दीक्षित (तिरुमलाचार्य) ने भारती-विलास की रचना की जिसमें शेक्सपीयर की 'कॉमेडी ऑफ एरर्स' का अनुवर्तन है। कावेरी-गद्य नामक ग्रन्थ में उन्होंने कुर्ग प्रदेश स्थित तालकावेरी की तीर्थयात्रा का वर्णन किया है तो "श्रीकृष्णाभ्युदय' में श्री शैल ने कृष्ण के जीवन-चरित का वर्णन किया है। तिम्म कवि द्वारा रचित 'सुजनमनः कुमुद-चन्द्रिका' भी उन्नीसवीं शताब्दी का अच्छा गद्य-ग्रन्थ है। कोल्हापुर निवासी श्री अप्पाशास्त्री ने बंकिमचन्द्र के लावण्यमयी नामक बंगाली उपन्यास का संस्कृत में सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है। मद्रास के प्रसिद्ध विद्वान् कृष्णमाचार्य द्वारा रचित पातिव्रत्य, पाणिग्रहण तथा वररुचि गद्यकाव्य एवं सुशीला नामक उपन्यास प्रसिद्ध हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पं० अम्बिकादत्त व्यास काशी में जन्मे और पढ़े तथा बिहार के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में उन्होंने पढ़ाया। उन्होंने ७५ ग्रन्थ लिखे जिसमें सर्वश्रेष्ठ शिवराजविजय है। शिवराजविजय में शिवाजी से सम्बन्धित कथानक है। कांची वासी अनन्ताचार्य ने जगन्नाथप्रसाद के हिन्दी उपन्यास संसार-चक्र का संस्कृत रूपान्तर किया। मैसूर के प्रसिद्ध विद्वान् चक्रवर्ती राजगोपाल ने शैवालिनी, कुमुदिनी, विलासकुमारी तथा संगर नामक रचनाओं में ग्रामीण कथाओं को अमर बना दिया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्री कल्याणराम शास्त्री ने कनकलता नामक उपन्यास लिखा जिस पर शेक्सपीयर का प्रभाव है। तिरुपति वासी कृष्णमाचार्य ने मन्दारवती की रचना की तो मैसूर वासी जग्गु अलवर आयंगर ने जयन्तिका नामक उपन्यास लिखा और विद्वच्चरितपंचक नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें पाँच विद्वानों के जीवन-चरित का वर्णन है। आचार्य शेषशायी रचित अष्टावक्रीयम् सरल गद्य-ग्रन्थ है। कांची वासी श्री शैल ताताचार्य ने दुर्गेशनन्दिनी व क्षत्रियरमणी नामक बँगला उपन्यास का संस्कृत अनुवाद प्रस्तुत किया। १९१८ में बंकिमचन्द्र के कपौलकुण्डला उपन्यासों का श्री हरिचरण भट्टाचार्य ने संस्कृत में अनुवाद किया। कन्नड़-प्रदेश वासी श्री नरसिंहाचार्य ने सौदामिनी नामक उपन्यास में विदर्भ की राजकन्या सौदामिनी व मगध के राजा शूरसेन के प्रेम का वर्णन किया है। आचार्य श्री शैल ने मेनका नामक उपन्यास लिखा। मेघव्रताचार्य द्वारा लिखा गया। 'कुमुदिनीचन्द्र' नामक उपन्यास बीसवीं शताब्दी की श्रेष्ठ उपलब्धि है। सन् १९५६ में श्री कृष्णवामन चितले द्वारा रचित 'सुबोध संस्कृत—लोकमान्य तिलक चरित' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। यह प्रकाशन तिलक जन्म शताब्दी के अवसर पर हुआ। ग्रन्थ में सरल भाषा में तिलक का जीवन-चरित वर्णित है। श्री भागीरथ त्रिपाठी वागीश शास्त्री द्वारा रचित 'कथा-संवर्तिका' में तेरह लोक-कथाओं का सुन्दर अनुवाद है।

संस्कृत गद्य की विशेषताएँ

संस्कृत गद्य में समास की शैली उसकी अपनी विशेषता है। जो बात अंग्रेजी भाषा में दो पृष्ठों में लिखी जायगी और हिन्दी में एक पृष्ठ में, वही बात संस्कृत में आधे पृष्ठ में ही आ सकती है। जिस बात को अंग्रेजी में कहने में दस शब्दों का आश्रय लेना पड़ता है और हिन्दी में सात-आठ का, उसी बात को संस्कृत में, सम्भव है, एक शब्द में कह दिया जाय। यह सब समास का ही चमत्कार है।

संस्कृत में प्राय: गद्य और पद्य साथ-साथ चलते दिखाई पड़ते हैं। उपनिषदों में यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। हितोपदेश, पंचतन्त्र, कथासरित्सागर, वृहत्कथामञ्जरी, वेताल पंचविंशतिका, सिंहासन द्वात्रिंशतिका, शुकसप्तति, भोज-प्रबन्ध, भट्टक द्वात्रिंशतिका आदि पुस्तकें गद्य-पद्य मिश्रित हैं। किन्तु माध्यमिक विद्यालयों में स्वीकृत पाठ्य-पुस्तकों में पद्य और गद्य के पाठ अलग-अलग रहते हैं।

संस्कृत-साहित्य में गद्य के अन्तर्गत हम कथाओं तथा आख्यायिकाओं को रख सकते हैं। कथा और आख्यायिका में कुछ भेद होता है। कथा कवि की कल्पना की उपज होती है और आख्यायिका में ऐतिहासिक तथ्य होता है, साथ ही शैली आत्म-कथा की भाँति होती है।

गद्य-पाठ के अन्तर्गत हम कथा तथा आख्यायिका के अतिरिक्त पत्र, विचारात्मक निबन्ध, जीवन-चरित वर्णन, यात्रा-संस्मरण आदि रख सकते हैं। माध्यमिक विद्यालयों की लघु-कथाओं में समास-रहित सरल वाक्य हों और उच्चतर कक्षाओं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में समासयुक्त कुछ कठिन गद्य-पाठ हो सकते हैं। स्नातक स्तर पर छात्रों को संस्कृत के मुकुटायमान गद्य-ग्रन्थों का रसास्वादन कराया जाय।

गद्य-शिक्षण के उद्देश्य

गद्य-शिक्षण के उद्देश्य शैक्षिक स्तरों के अनुसार निश्चित किये जाते हैं। नीचे इन उद्देश्यों को क्रमानुसार दिया जा रहा है—

प्रारम्भिक स्तर (कक्षा ६, ७ तथा ८)

१. छात्रों के शब्द-भण्डार में वृद्धि हो, ताकि वे नये शब्दों का अर्थ समझ कर उनका उचित प्रयोग कर सकें।
२. वे पाठगत ध्वनियों, शब्दों एवं वाक्यों का शुद्ध उच्चारण कर सकें।
३. उन्हें संस्कृत भाषा से परिचय प्राप्त हो सके।
४. वे पाठगत भावों एवं विचारों को ग्रहण कर सकें।
५. छात्रों को अपने चरित्र-विकास में सहायता मिल सके।
६. संस्कृत के प्रति उनमें अनुराग उत्पन्न हो सके।

मध्य स्तर (कक्षा ९, १०, ११ तथा १२)

१. छात्रों को अनेक प्रकार के विषयों का ज्ञान देना, जिससे वे नये वैज्ञानिक आविष्कारों तथा खोजों से परिचय प्राप्त कर सकें।
२. छात्रों के सूक्ति-भण्डार एवं शब्द-भण्डार में वृद्धि करना।
३. छात्रों को पाठगत आदर्शों से प्रेरणा लेकर अपने चरित्र का निर्माण कर सकने की योग्यता प्रदान करना।
४. उन्हें विविध गद्य-शैलियों से परिचित कराना।
५. उनमें कल्पना-शक्ति का विकास करना।
६. छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में सहायता देना।
७. उनमें लेखक के भाव के अनुसार गद्य-पाठ का वाचन करने की क्षमता का विकास करना।
८. संस्कृत भाषा के प्रति उनमें अनुराग उत्पन्न करना।

उच्च स्तर (स्नातक कक्षाएँ)

१. छात्र संस्कृत साहित्य की अक्षय निधि से परिचय प्राप्त करते हुए उच्च-कोटि के गद्य-काव्यों का अध्ययन करके उनसे आनन्द प्राप्त करें।
२. वे विविध गद्य-शैलियों का परिचय प्राप्त करके अपने अनुकूल शैली में लिखे गये ग्रन्थों का विशेष ज्ञान प्राप्त करें।
३. उनमें कल्पना-शक्ति का विकास हो।
४. वे अपने चरित्र का विकास करें।
५. वे संस्कृत भाषा में अपने भावों को व्यक्त कर सकें।
६. वे अपनी तर्क-शक्ति एवं विवेचनात्मक शक्ति का विकास करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७. वे समालोचनात्मक शक्ति का विकास करके अच्छे और बुरे की पहचान करने की क्षमता प्राप्त करें।

गद्य-शिक्षण-विधि

गद्य के सामान्य उद्देश्यों का ऊपर वर्णन किया गया है। इन सामान्य उद्देश्यों के अतिरिक्त प्रत्येक पाठ का मुख्य उद्देश्य भी होता है। मुख्य उद्देश्य में प्रस्तुत पाठ सम्बन्धी वस्तु-बोध का प्रायः उल्लेख किया जाता है। वस्तु-बोध के अतिरिक्त पाठ सम्बन्धी भाषा-ज्ञान भी सम्मिलित रहता है।

पाठों को सरल से कठिन क्रम से अनुस्तरित करके उनका अध्यापन किया जाना चाहिए। प्रत्येक पाठ का आरम्भ करने से पहले पाठ्य-वस्तु का विश्लेषण करके यह देख लेना चाहिए कि—

१. इस पाठ के माध्यम से कौन-कौन-से नये शब्द, मुहावरे, सूक्ति तथा लोकोक्तियाँ सिखानी हैं।
२. कौन-कौन-से सन्धि-नियम तथा विग्रह-समास बताने हैं?
३. वाक्यगत शब्दों के बीच सम्बन्ध का द्योतन करने वाले कौन-कौन-से नये तत्त्व समझाने हैं।
४. किस-किस भाषायी कौशल का किस-किस मात्रा में विकास करना है? इस प्रकार पाठ्य-वस्तु का विश्लेषण करने पर जो अध्यापन-बिन्दु निकलें उन पर विशेष बल देते हुए अध्यापन करना चाहिए। अध्यापन के समय इस बात का ध्यान रहे कि एक साथ बहुत-से नये शब्दों तथा नियमों आदि पर अधिकार करने का प्रयत्न न हो; तथा—
५. पाठ को सम्बद्ध कथाओं, चुटकुलों, श्लोकों, कविताओं आदि से रोचक बनाने का प्रयत्न हो।

प्रस्तुत पाठ का शिक्षण आरम्भ करने के पूर्व अध्यापक को सर्वप्रथम विषय की प्रस्तावना प्रस्तुत करनी चाहिए। प्रस्तावना में कुछ छोटे-छोटे एवं निश्चित प्रश्न होते हैं। ये प्रश्न छात्रों के पूर्व-ज्ञान पर आधारित होते हैं। इन प्रश्नों का उद्देश्य बालकों की जिज्ञासा को जाग्रत करके उन्हें प्रस्तुत पाठ को ग्रहण करने के लिए उत्सुक एवं तत्पर बना देना है। इन प्रश्नों के द्वारा प्रस्तुत पाठ के लिए उचित भूमिका तैयार हो जाती है। छात्रों के उत्तरों से वर्तमान पाठ को सम्बन्धित करते हुए शिक्षक वर्तमान पाठ के उद्देश्य की कक्षा में घोषणा कर देता है।

प्रस्तावना के पश्चात् अध्यापक को पाठ की प्रस्तावित अन्विति का आदर्श सस्वर पाठ करना चाहिए। पाठ को प्रायः कठिनता एवं विविधता की दृष्टियों से दो या तीन अन्वितियों में विभाजित कर लिया जाता है। प्रत्येक अन्विति के प्रारम्भ में अध्यापक को आदर्श सस्वर वाचन करना चाहिए। आदर्श वाचन के पश्चात् अध्यापक को उस अन्विति में सन्धि-विच्छेद करना चाहिए। सन्धियुक्त पदों के उच्चारण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का अभ्यास कराना चाहिए। एक-एक पद को श्यामपट्ट पर लिखकर अध्यापक स्वयं बोले और छात्रों से शुद्ध उच्चारण कराये। इस स्थल पर छात्रों द्वारा अनुवाचन भी कराया जा सकता है। अनुवाचन में अध्यापक वाक्य अथवा वाक्यांश को पढ़ता है और छात्र भी उसी वाक्य या वाक्यांश का वाचन करते हैं। इसी क्रम से पूरी अन्विति का वाचन होता है। अनुवाचन न भी कराया जाय तो कोई हानि नहीं। शब्दोच्चारण के अभ्यास के पश्चात् अध्यापक को पुनः अन्विति का आदर्श वाचन करना चाहिए। इसके पश्चात् छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन होना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से छात्रों के पढ़ते समय उनकी मुद्रा पर तथा उनके उच्चारण पर अध्यापक को विशेष ध्यान देना चाहिए।

कतिपय छात्रों द्वारा प्रस्तावित अन्विति का अनुकरण वाचन कर लेने के पश्चात् बोध-परीक्षात्मक प्रश्न होने चाहिए। बोध-परीक्षा के प्रश्न दो या तीन से अधिक नहीं होने चाहिए। ये प्रश्न उस अन्विति के केन्द्रीय विचार पर ही होने चाहिए। इन प्रश्नों का उद्देश्य यह है कि शिक्षक छात्रों के उत्तरों द्वारा यह पता लगा ले कि छात्रों ने प्रस्तुत पाठ को कहाँ तक समझा है और उन्हें कहाँ पर विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। इसी आधार पर शिक्षक आगे की विस्तृत व्याख्या करता है।

बोध-परीक्षा के प्रश्नों के पश्चात् व्याख्या का सोपान आता है। व्याख्या के अन्तर्गत अर्थ-ग्रहण, व्याख्या-कार्य, पदार्थ, प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत अर्थ, भाषागत सौन्दर्य आदि के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। संस्कृत में समासों के ज्ञान के बिना अर्थ ग्रहण एवं व्याख्या-कार्य सम्भव ही नहीं। समास-विग्रह के बिना पदार्थ स्पष्ट नहीं होता। अतः प्राचीन टीकाकारों ने समास-विग्रह एवं पदार्थ-कथन साथ-साथ लिया है। व्याख्या के सोपान में शब्दार्थ अर्थात् पदार्थ-कथन बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पदार्थ स्पष्ट करने के लिए विभिन्न युक्तियों का आश्रय लिया जाता है। कुछ युक्तियों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

(१) **वस्तु दिखाकर**—"इदं पंकजम् अस्ति" में पंकज के पुष्प को दिखाकर 'पंकजम्' का अर्थ स्पष्ट करना। इसी प्रकार इदं फलम्, इदं पत्रम्, इदं पुष्पम् आदि को स्पष्ट करना।

(२) **चित्र दिखाकर**—गौतम बुद्ध, बाल कृष्ण आदि का चित्र दिखाया जा सकता है। अयं रामः, अयं डा० राजेन्द्र प्रसादः, अयं डा० ज़ाकिर हुसेनः, अयं गांधी जैसे वाक्यों को छोटी कक्षाओं में चित्र दिखाकर समझाना सरल होता है।

(३) **मानचित्र दिखाकर**—कोसल, अवन्ती, धारा, साकेत, वैशाली, काशी, मगध, विदेह, मिथिला आदि को मानचित्र में दिखाकर स्पष्ट किया जा सकता है।

(४) **प्रतिकृति**—बदरिकाश्रम, दण्डकारण्य आदि की।

(५) **मूर्ति दिखाकर**—राम, कृष्ण आदि की।

(६) **रेखाचित्र द्वारा**—वीणा, ग्रन्थ आदि का।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(७) **अनुवाद**—'अलं विवादेन' का हिन्दी में अनुवाद करके अर्थात् 'विवाद मत करो'। इसी प्रकार अन्य वाक्यों और शब्दों का हिन्दी में अनुवाद।

(८) **टीका**—लघु सिद्धान्त कौमुदी, कादम्बरी आदि अनेक ग्रन्थों की उत्तम टीकाएँ उपलब्ध हैं। उनको देखकर अर्थ ग्रहण करना। अध्यापक छात्रों को टीका से लाभ उठाने को प्रेरित कर सकता है।

(९) **प्रश्न**—खण्डान्वय विधि के आधार पर अथवा सामान्य रूप से प्रश्न पूछकर अर्थ स्पष्ट किया जा सकता है; उदाहरणार्थ—'रसालः' शब्द का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—आम्रस्य कति नामान्तराणि भवन्ति ? इस प्रश्न का उत्तर होगा—रसालः, सहकारः, वनोत्सवः इति अनेकानि नामानि भवन्ति। छात्र यदि उत्तर नहीं देंगे तो अध्यापक स्वयं उत्तर दे देगा।

(१०) **तुलना**—'तृणानि नोन्मूलयति प्रभंजनो' में तृण की वृक्ष से एवं प्रभंजन की 'मरुन्मन्द मन्दम्' से तुलना की जा सकती है। तुलना करते समय अनल-अनिल, गृह-ग्रह, कृतज्ञ-कृतघ्न, चिर-चीर, प्रसाद-प्रासाद, भुजग-भुजंग, सुत-सूत, विहग-विहंगम आदि शब्दों की ओर विशेष रूप से ध्यान जाना चाहिए। शब्द-रूपों की भी तुलना की जा सकती है। द्रुमस्य का अर्थ बताते समय फलस्य, वृक्षस्य, मृगस्य आदि रूपों को प्रस्तुत करना अथवा पठित्वा का अर्थ बताते समय खादित्वा, हसित्वा, गत्वा आदि शब्द-रूपों को प्रस्तुत करना अच्छा रहता है।

(११) **उदाहरण**—'उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' में उदार का अर्थ स्पष्ट करने के लिए स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, गांधीजी आदि का उदाहरण दिया जा सकता है।

(१२) **अन्तःकथा द्वारा**—'भागीरथ प्रयत्न' का अर्थ स्पष्ट करने के लिए गंगावतरण की कथा सुनाई जा सकती है। 'स तु कुम्भकर्णः' जैसे वाक्य अन्तः कथाओं के माध्यम से ही स्पष्ट किये जा सकते हैं।

(१३) **अर्थ कथन**—सीधे-सीधे अर्थ बता देना; जैसे—'पंकजम्' माने कमल।

(१४) **व्याख्या**—व्याख्या के अन्तर्गत परिभाषा भी आ जाती है। 'कारण्डव' को व्याख्या द्वारा समझाया जाता है। चित्र आदि के अभाव में 'शाल्मली तरुः'; 'कदम्ब' आदि को भी व्याख्या द्वारा ही स्पष्ट करना पड़ेगा। अध्यात्म, अहंकार आदि को स्पष्ट करने में व्याख्या सर्वोत्तम विधि है।

(१५) **वाक्य-विश्लेषण**—मिश्रित तथा संयुक्त वाक्यों को सरल वाक्यों में विभक्त करना।

(१६) **सन्धि-विच्छेद**—जैसे—देवेशः को देव+ईशः में विभक्त करके समझाना।

(१७) **समास-विग्रह**—गजाननः, दशाननः, षडाननः, चतुराननः, पीताम्बरम्, रामलक्ष्मणौ, राजपुरुषः, प्रतिदिनम् आदि को समास-विग्रह द्वारा अच्छी तरह समझाया जा सकता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१८) **व्युत्पत्ति**—शब्दों की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालकर उपसर्ग, प्रत्यय, विभक्ति आदि के ज्ञान द्वारा अर्थ स्पष्ट करना; यथा—उक्तवान् की व्युत्पत्ति वच्+क्तवतु और परित्यज्य की व्युत्पत्ति परि+त्यज्+ल्यप् के रूप में की जा सकती है।

(१९) **वाक्य प्रयोग**—कठिन शब्द को सरल वाक्य में प्रयुक्त करके उसका अर्थ स्पष्ट करना, यथा—हतवान् को 'रामः रावणं हतवान्' के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

(२०) **कोष देखकर**—कोष का प्रयोग करके कठिन शब्दों का अर्थ जाना जा सकता है। शब्द सामर्थ्य बढ़ाने के लिए कोष का प्रयोग आवश्यक है। अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों में कोष के प्रति रुचि उत्पन्न करे।

(२१) **उद्बोधन**—अर्थ सीधे न बताकर छात्रों से ही निकलवाना जैसे काकः का अर्थ बताने के लिए श्यामपट्ट का प्रयोग करके अन्य युक्तियों की सहायता से चित्र या रेखाचित्र बनाकर स्पष्ट करना।

(२२) **पर्याय कथन**—यथा—भास्करः का अर्थ स्पष्ट करने में सूर्य्यः, दिनेशः, प्रभाकरः, दिवाकर, मित्रः आदि का कथन करके।

(२३) **विलोम कथन**—दिवस का अर्थ रात्रि-दिवस कहकर, विराग का अर्थ अनुराग-विराग कहकर, मन्द का अर्थ मन्द-तीव्र कहकर स्पष्ट किया जा सकता है।

(२४) **संकेत द्वारा**—नयन, नासिका, कच, श्यामपट्ट, भित्ति, कक्ष आदि का अर्थ इनकी ओर संकेत करके समझाया जा सकता है।

(२५) **अभिनय**—गच्छ, आगच्छ, आनयति आदि क्रियाओं का अर्थ अभिनय द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

उपर्युक्त प्रविधियों में वस्तु, चित्र, मूर्ति, प्रतिकृति आदि का प्रयोग उच्च स्तर पर अभीष्ट नहीं है। जीवित पशुओं को कक्षा में नहीं ले जाना चाहिए। कोई अत्याकर्षक चित्र भी प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से छात्र मुख्य पाठ को भूल कर विनोद में ही तत्पर हो जाते हैं। अन्तःकथा भी संक्षेप में कहनी चाहिए, नहीं तो समय बहुत नष्ट होगा। संकेत के समय स्मरण रहे, गुप्ताङ्गों की ओर संकेत वर्जित है। अभिनय में नाचना, आँखें मटकाना आदि भी निषिद्ध है।

व्याख्या का सोपान केवल पदार्थ-कथन से ही समाप्त नहीं होता। इस स्थल पर यह भी देखना आवश्यक हो जाता है कि छात्र गद्य-खण्ड के भाव को अच्छी तरह से समझ गये या नहीं। सामान्य अर्थ के साथ विशेष अर्थ की ओर भी इङ्गित करना आवश्यक है। छात्रों की लाक्षणिक अर्थों को भी स्पष्ट करना चाहिए। यह सब कार्य छात्रों को सहायता से होना चाहिए। इसके लिए उपयुक्त प्रश्न पूछे जाने चाहिए जिससे भावों का विश्लेषण किया जा सके। प्रश्न और उत्तर संस्कृत अथवा मातृभाषा में हों। प्राथमिक एवं मध्य स्तर पर मातृभाषा के माध्यम से विचार-विश्लेषण उचित होगा, किन्तु उच्च स्तर पर संस्कृत के माध्यम से विचार-विश्लेषण उचित होगा। आवश्यकता पड़ने पर शिक्षक स्वयं दुरूह भावों को स्पष्ट कर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देगा। विचार-विश्लेषण के प्रश्न समाप्त होने पर एक वार पुनः सस्वर पाठ होना चाहिए। समय मिलने पर अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन और कतिपय छात्रों द्वारा सस्वर वाचन होना चाहिए। यदि समय की कमी हो तो केवल अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन अथवा कुछ छात्रों द्वारा सस्वर वाचन से भी काम चल जायगा।

उपर्युक्त विधि से पाठ की सभी अन्वितियों को पढ़ा लेने के बाद पूरे पाठ पर आधारित कुछ प्रश्न होने चाहिए। ये प्रश्न दो प्रकार के होंगे। एक तो वस्तु बोध का परीक्षण करने के निमित्त; दूसरे, भाषा-ज्ञान की परीक्षा से सम्बन्धित। इन प्रश्नों को पुनरावृत्ति प्रश्न कहा जाता है।

पुनरावृत्ति के प्रश्न करने के पश्चात् छात्रों के समक्ष कुछ प्रश्न अथवा अभ्यासार्थ समस्याएँ प्रस्तुत की जायेंगी। इससे छात्रों द्वारा अर्जित नवीन ज्ञान को प्रयुक्त करने का अवसर मिल जायगा। हरबार्ट की पंचपदी में इसे प्रयोग कहा जाता है। प्रयोग के कार्य कक्षा में कराये जा सकते हैं अथवा। और घर पर करने के लिए दिये जा सकते हैं। अभ्यास कार्य का संशोधन एवं निरीक्षण परमावश्यक है। शिक्षक को नियमित रूप से गृह-कार्य को देखना चाहिए।

शिक्षण-क्रम

इस दृष्टि से गद्य-पाठ की पाठ-योजना की रूपरेखा एवं उसके शिक्षण का क्रम निम्नलिखित होगा—

१. सामान्य प्रारम्भिक बातें—यथा—दिनांक, कक्षा, कालांश, अवधि, विषय, शीर्षक।
२. सामान्य उद्देश्य
३. विशिष्ट उद्देश्य
४. सहायक सामग्री
५. पूर्व-ज्ञान
६. प्रस्तावना
७. उद्देश्य-कथन
८. विषयोपस्थापन—
   (क) पाठ्य-सामग्री (अन्विति का उल्लेख)
   (ख) शिक्षक द्वारा आदर्श वाचन
   (ग) सन्धि-विच्छेद, कठिन शब्दोच्चारण, अनुवाचन
   (घ) छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन
   (ङ) बोध-परीक्षा
९. विस्तृत व्याख्या
   (क) समास-विग्रह
   (ख) पदार्थ-कथन
   (ग) मौन-वाचन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(घ) विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न
(ङ) शिक्षक द्वारा स्पष्टीकरण

१०. **सस्वर वाचन**—शिक्षक अथवा छात्रों द्वारा।

११. **पुनरावृत्ति**

१२. **प्रयोग**—
(क) कक्षा-कार्य
(ख) गृह-कार्य

गद्य-पाठ-योजना
[प्रथम]

विद्यालय का नाम········ **दिनांक**··········

अध्यापक का नाम········ **कक्षा**—८, **वर्ग**—ग

विषय—संस्कृत गद्य **अवधि**—४० मिनट

शीर्षक—भारतस्य राष्ट्र-ध्वजः **कालांश**—प्रथम

सामान्य उद्देश्य—
१. छात्रों को गद्यांश के अर्थ तथा भाव भली-भाँति समझाकर उन्हें अपनी भाषा में व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करना।
२. लेखक के भावों एवं विचारों के अनुसार गद्यांश का वाचन करने की योग्यता प्रदान करना।
३. छात्रों के सूक्ति-भण्डार एवं शब्द-भण्डार में वृद्धि करना।
४. छात्रों को विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त कर, उन्हें बहुज्ञ बनाना।
५. उन्हें विविध गद्य-शैलियों का परिचय प्रदान करना।
६. उनमें कल्पना तथा विचार-शक्ति का विकास करना।
७. व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में उन्हें सहायता देना।
८. पाठगत आदर्शों से प्रेरणा लेकर, छात्रों को अपने चरित्र निर्माण करने के योग्य बनाना।
९. संस्कृत भाषा के प्रति उनमें अनुराग उत्पन्न करना।
१०. छात्रों की रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना।

विशिष्ट उद्देश्य—
१. छात्रों को राष्ट्र-ध्वज के गौरव व महत्त्व से परिचित कराना।
२. उन्हें राष्ट्र-ध्वज के तीनों रंगों और चक्र-चिह्न के रहस्य से अवगत कराना।

सहायक सामग्री—
१. तिरंगा-ध्वज तथा तिलक, मालवीय और गांधीजी के चित्र।
२. लपेट श्यामपट पर लिखित उच्चारणाभ्यास हेतु कठिन पद।
३. अन्य कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण, चौक इत्यादि।

पूर्व-ज्ञान—
१. छात्र अपने राष्ट्र के ध्वज के नाम व रूप-रंग आदि से भली-भाँति अवगत हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२. छात्र स्वतन्त्र भारत में राष्ट्र-ध्वज के प्रति सम्मान की भावना का महत्त्व भी जानते हैं।

प्रस्तावना—

१. भारतवर्ष का स्वतन्त्रता-दिवस कौन-सा है?
२. १५ अगस्त, १९४७ को भारतवर्ष ने किन लोगों की दासता से मुक्ति प्राप्त की थी?
३. स्वतन्त्र भारत का प्रथम प्रधानमन्त्री कौन थे?
४. हमारे देश के वर्तमान प्रधानमन्त्री कौन हैं?
५. स्वतन्त्रता-दिवस को प्रधानमन्त्री किस स्थान पर ध्वजारोहण करते हैं?
६. हमारे देश की इस ध्वजा का क्या नाम है?

उद्देश्य-कथन— प्रत्येक राष्ट्र की नीतियाँ, आचार-विचार और जीवन-शैलियाँ दूसरे राष्ट्र से भिन्न होती हैं। इसी भिन्नता के कारण हर एक राष्ट्र का ध्वज, राष्ट्र-गीत व राष्ट्र-चिह्न भी दूसरों से पृथक ही होते हैं। भारत ने भी, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात्, अपने ध्वज-तिरंगा को गर्व के साथ उन्मुक्त आकाश में फहराया। आज हम अपने राष्ट्र के इसी गौरवमय चिह्न तिरंगा-ध्वज की विशेषताओं का 'भारतस्य राष्ट्र-ध्वजः' पाठ में अध्ययन करेंगे।

विषय-वस्तु— जयति राष्ट्र-ध्वजः स्वतन्त्र-भारतस्य। अस्मिंस्त्रयोरागाः विराजन्ते, हरितः शुक्लः केसरश्च। ते तथाक्रमम् भारतस्य तमः-सत्त्व-रजःसु त्रिष्वपि मायागुणेषु विजयं सूत्रयन्ति। शुक्ले रागेऽङ्कित चक्रञ्च भारतस्य शीलशालिषु राष्ट्रेषु चक्रवर्तिन इव प्रधानतां निवेदयति।

अस्मिन् ध्वजे स्थिता रागाः परस्परस्य शोभा वर्धयन्ति, ते शिक्षयन्ति भारतीयान्—यूयमपि वयमिवान्योन्य, शोभां समेधयन्तो बन्धुभावेनात्र वसत। यथात्र शुक्लं रागं नील-रक्तौ न रञ्जयतः नीलश्चरक्तं न मलिनयति, तथा अस्मास्वपि कश्चित् केनचित् सम्भूय वा एकाकी वा कञ्चनान्यं नाच्छादयेत् न बाधेत। सर्वेऽपि स्वस्व-धर्मे स्थिराः सन्तो जीवेयुः।

अस्यैव त्रिरागस्य ध्वजस्यच्छायायाम् अस्माकं पूर्वजैस्तिलक-मालवीय-गान्धि-प्रभृतिभिर्नेतृभिः सत्यम-अहिंसाञ्चावलम्ब्य स्वातन्त्र्यं प्राप्तम्। इयं स्वतन्त्रता अस्माभिः अगस्तमासस्य पञ्दशतारिकायो सप्तचत्वारिंशदधिक-एकोनविंशतिशततमे खिष्टाब्दे प्राप्ता। अस्मिन्नेव दिने अयम् राष्ट्र-ध्वजः वितताकाशे स्वतन्त्र-भारतस्य सर्वप्रथम तरंगितोऽभवत्। अस्माभिरस्य गौरवं प्राणपणेनापि सदा रक्षणीयम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयोपस्थापन—पाठ को निम्नलिखित अन्विति-द्वय में विभक्त कर पढ़ाया जायगा—

१. जयति राष्ट्र-ध्वजः……………जीवेयुः।

२. अस्यैव त्रिरागस्य…………रक्षणीयम्।

आदर्श वाचन— शिक्षक द्वारा—प्रथमान्विति का।

काठिन्य-निवारण— अध्यापक द्वारा निम्नलिखित पदों का उच्चारण-सम्बोधन छात्रों को कराया जायगा एवं सन्धि-विच्छेद पूछा जायगा—

(१) अस्मिंस्त्रयो, (२) त्रिष्वपि, (३) रागेऽङ्कितम्, (४) वयमि वान्योऽन्यशोभाम्, (५) बन्धुभावेनात्र, (६) अस्मास्वपि, (७) कञ्चनान्यम्।

अनुकरण वाचन—कतिपय छात्रों द्वारा।

बोध-परीक्षा प्रश्न—१. तिरंगा-ध्वज में कौन-कौन-से तीन रंग होते हैं ?

२. चक्र का चिह्न किस रंग में होता है ?

३. ये रंग किस की शोभा बढ़ाते हैं ?

विस्तृत व्याख्या—अध्यापक निम्नाङ्कित पदों का अर्थ, विविध युक्तियों से पूछेगा तथा आवश्यक व्याख्या करेगा—

पद	अर्थ	प्रणाली
१. शुक्लः	श्वेत, सफेद	वाक्य-प्रयोग द्वारा—''शंखः शुक्लः भवति''
२. यथाक्रमम्	क्रम के अनुसार	समास-विग्रह द्वारा-क्रम अनतिक्रम्य-अव्ययीभाव
३. तमः सत्त्व-रजः सु मायागुणेषु	माया के गुणों—तुम, सत्त्व और रज में	व्याख्या द्वारा
४. शीलशालिषु	गुणवानों में	पद-विश्लेषण द्वारा शील शब्द का अर्थ पूछकर
५. चक्रवर्तिन इव	प्रधान सम्राट की	अर्थ-कथन द्वारा
६. समेधयन्तः	तरह बढ़ाते हुए	प्रत्यय द्वारा—सम्+एध+शतृ
७. यथात्र	जैसे—यहाँ, उदाहरण के लिए	सन्धि-विच्छेद द्वारा
८. सम्भूय	संगठित होकर	प्रत्यय द्वारा सम्+भू+ल्यप्
९. नाच्छादयेत्	नहीं ढकना चाहिए	सन्धि-विच्छेद द्वारा—न+आच्छादयेत्
१०. बाधेत	कष्ट देना चाहिए	अर्थ-कथन द्वारा

मौन-वाचन— छात्रों द्वारा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न—

१. इस पाठ में किस देश के राष्ट्र-ध्वज की लेखक चर्चा कर रहा है ?
२. किसकी जय हो ?
३. इस तिरंगा-ध्वज में कितने रंग विराजते हैं ?
४. वे रंग क्रमशः कौन-कौन-से हैं ?
५. हरा रंग किस गुण का प्रतीक है ?
६. श्वेत रंग किस गुण का प्रतीक है ?
७. केसरिया रंग किस गुण का प्रतीक है ?
८. ये रंग इन मायागुणों पर किस बात को सूचित करते हैं ?
९. चक्र का चिह्न किस रंग में अङ्कित है ?
१०. चक्र भारत की किस प्रकार के राष्ट्रों में प्रधानता को सूचित करता है ?
११. चक्र भारत की अन्य राष्ट्रों में किसके समान प्रधानता को बताता है ?
१२. इस ध्वज में स्थित रंग परस्पर क्या करते हैं ?
१३. वे किसको शिक्षा देते हैं ?
१४. वे भारतीयों को क्या शिक्षा देते हैं ?
१५. तिरंगा-ध्वज में शुक्ल रंग किसको प्रभावित नहीं करता ?
१६. नीला रंग किस किस को मलिन नहीं बनाता ?
१७. उसी प्रकार हममें से भी कोई किस प्रकार दूसरे के साथ व्यवहार न करे ?
१८. सभी किस प्रकार जीवित रहें ?

आदर्श वाचन— द्वितीय अन्विति का शिक्षक द्वारा।

उच्चारणाभ्यास— अध्यापक निम्नलिखित पदों का छात्रों से उच्चारण पूछेगा और शुद्धोच्चारण का अभ्यास करायेगा—

(१) त्रिरागस्य, (२) गान्धि-प्रभृतिभिनेतृभिः, (३) अहिंसा-ञ्चावलम्ब्य; (४) सप्त चत्वारिंशदधिक-एकोनविंशतिशततमे, (५) तरंगितोऽभवत्।

अनुकरण वाचन— कतिपय छात्रों द्वारा।

विस्तृत व्याख्या— अध्यापक विविध युक्तियों द्वारा निम्नलिखित पदों का अर्थ पूछेगा तथा यथावश्यक स्वयं व्याख्या करेगा—

पद	अर्थ	प्रणाली
१. प्रभृतिभिः	इत्यादि के द्वारा	वाक्य-प्रयोग द्वारा— "मोहन सोहन नन्दन— प्रभृतयः छात्राः अत्र तिष्ठन्ति।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पद	अर्थ	प्रणाली
२. चावलम्ब्य	और, सहारा लेकर	सन्धि-विच्छेद एवं व्युत्पत्ति द्वारा—च+अवलम्ब्य, अव+लम्ब्+ल्यप्।
३. पञ्चदशतारिकायाम्	पन्द्रह तारीख को	वाक्य-प्रयोग द्वारा—अद्य मासस्य पञ्चतारिका अस्ति।
४. सप्त चत्वारिंशदधिक एकोनविंशतिशततमे	सन् १९४७ में	पदार्थ-कथन द्वारा
५. वितताकाशे	विस्तृत (विशाल) आकाश में	सन्धि-विच्छेद द्वारा—वितत+आकाशे
६. गौरवम्	महत्त्व को	पर्याय-कथन द्वारा महत्त्वम्
७. प्राणपणेनापि	प्राणों की बाजी लगाकर	समास-विग्रह द्वारा—प्राणानां पणेनापि, षष्ठी तत्पुरुष
८. रक्षणीयम्	रक्षा करनी चाहिए	व्युत्पत्ति द्वारा—रक्ष+अनीयर्

मौन वाचन— छात्रों द्वारा।

विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न—

१. इस तिरंगा-ध्वज की छाया में हमारे कौन-कौन-से नेता रहे थे ?
२. उन नेताओं ने किसका सहारा लेकर स्वतन्त्रता को प्राप्त किया था ?
३. यह स्वतन्त्रता हमारे द्वारा कब प्राप्त की गई थी ?
४. १५ अगस्त, १९४७ को यह राष्ट्र-ध्वज कहाँ लहराने लगा था ?
५. हमारे द्वारा सदा किसकी रक्षा की जानी चाहिए ?
६. हमारे द्वारा सदैव इस ध्वज के गौरव की किस प्रकार रक्षा करनी चाहिए ?

सस्वर वाचन— शिक्षक द्वारा दोनों अन्वितियों का।

आवृत्यात्मक प्रश्न

१. स्वतन्त्र-भारतस्य राष्ट्र-ध्वजे कति रागाः सन्ति ?
२. त्रिराग-ध्वजे के के रागाः सन्ति ?
३. शुक्ले रागे किम् अङ्कितं अस्ति ?
४. ते रागाः अस्मान् कथं शिक्षयन्ति ?
५. अस्माभिः अस्य ध्वजस्य रक्षा कथं करणीया ?

गृह-कार्य—सम्पूर्ण पाठ का हिन्दी भाषा में अर्थ लिखिए।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गद्य-पाठ-योजना
[द्वितीय]

विद्यालय का नाम....... **दिनांक**........
अध्यापक का नाम........ **अवधि**—४० मिनट
कक्षा—१०, **वर्ग**—ख **कालांश**—प्रथम
विषय—संस्कृत गद्य **शीर्षक**—कामराज-योजना ।

सामान्य उद्देश्य—१. छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे पाठगत ध्वनियों, शब्दों एवं वाक्यों का शुद्ध उच्चारण कर सकें ।
२. वे पाठगत भावों एवं विचारों को ग्रहण कर सकें ।
३. संस्कृत के प्रति उनमें अनुराग उत्पन्न हो सके ।
४. छात्रों के सूक्ति-भण्डार एवं शब्द-भण्डार में वृद्धि हो सके ।
५. उन्हें इस योग्य बनाना कि वे पाठगत आदर्शों से प्रेरणा लेकर अपने चरित्र का निर्माण कर सकें ।

विशिष्ट उद्देश्य—१. छात्रों को 'कामराज-योजना' नामक पाठ में निहित त्याग-भावना से परिचित कराना ।
२. उनके शब्द-भण्डार में स्वातंत्र्योत्तरकाले, राजनीति विशारदानां, सम्प्रति, अपसार्य, कायाकल्पं, मद्रप्रदेश, मोचयित्वा, संगठनम् आदि शब्दों की अभिवृद्धि करना ।

सहायक सामग्री— श्रीमती इन्दिरा गाँधी का एक चित्र ।

पूर्व-ज्ञान— छात्र यह जानते हैं कि भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी हैं ।

प्रस्तावना— (चित्रं दर्शयित्वा)
१. कस्या चित्रमिदम् ?
२. सा इदानीं किं सुशोभितं करोति ?
३. केन राजनीतिकदलेन सा सम्बद्धास्ति ?
४. सम्प्रति किं राजनीतिकसंगठनम् शासनारूढं वर्तते ?

उद्देश्य कथन— एतस्य कांग्रेससंगठनस्य शुद्धीकरणाय कामराज-योजना प्रादुर्भूता । अद्य वयं तां योजनां पठिष्यामः, द्रक्ष्यामः च तस्याः स्वरूपं क्रिया-पद्धति च ।

विषयोस्थापन— स्वातंत्र्योत्तरकाले भारते घटितासु निखिलासु घटनासु यैका घटना देशीयानां विदेशीयानां च राजनीतिविशारदानां प्रमुखविचारकाणां मानसम् आश्चर्यमहासागरे न्यमज्जयत् सा खलु कामराजयोजना-ख्यया सम्प्रति प्रसिद्धा वर्तते । इयं हि योजना कांग्रेसदले समागताः त्रुटीः अपसार्य तस्य कायाकल्पं कर्तुमीहमानेन तत्कालीनमद्रप्रदेशीय-मुख्यमन्त्रिणा भूतपूर्वकांग्रेसाध्यक्षेण तत्रभवता कामराजनाडारमहो-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दयेन भारतीयकांग्रेसस्य पुरस्तात् प्रस्तुता सा च तत्क्षणमेव स्वीकृता-जाता। अयं खलु विचार: चिरकालदेव बहुचर्चित: आसीद् यत् देशहिताय कांग्रेसस्य शुद्धीकरणमावश्यकमस्ति । सोऽयं विचार: अस्या: योजनाया: रूपेण मूर्त्तोजात: । अस्या: योजनाया आसी-दिदमेव प्रमुखउद्देश्यं यत् कांग्रेसस्य संगठने प्रशासने चेत्युभयोः पक्षयो: उचितं सामंजस्य भवेत् । अद्यावधि योग्यनेतॄणाम् कृते आकर्षकं प्रशासनमेवासीत् येन संगठनं शून्यं निर्जीवमिव चाभवत् । एतेन संगठनमुद्धर्तुकामैः कामराजप्रस्तावस्य भूयान् समादर: अभवत् । बहव: नेतार: स्वं पदं त्यक्तु मैच्छन् ।

तत्कालीनप्रधानमन्त्रिणा पंडित जवाहरलाल नेहरू महोदयेन तत्र दादशा: योग्याः नेतार: प्रशासनातु मोचयित्वा संगठनाय निर्वा-चिता: येषु योजनाया: प्रस्तावक: कामराजमहोदयोऽप्यासीत् । संसार-स्य कृते इयमतीव आश्चर्यकारिणी घटना आसीत् । यत: साम्प्रतिके युगे स्वार्थं परित्यज्य परोपकाराय कार्यं केर्तुकोऽपि नेच्छति, विशे-षत: नेतार: परन्तु अत्र विपरीतमेव अभवत् । इयं योजना स्वकीये लक्ष्ये कियती सफलता लप्स्यते इति आगामी काल एवं कथयिष्यति । कतिपय-विदुषाम् मतानुसारेण इयं योजना निरर्थका मृतप्राया च वर्तते यतः केचित् नेतार: पदलोलुपतां त्यक्तुमसमर्था: सन्ति ।

सुविधा की दृष्टि से आज के पाठ को दो अन्वितियों में विभक्त किया गया है—

प्रथमान्विति

"स्वातन्त्र्योत्तर काले.......................त्यक्तु मैच्छन् ।"

आदर्श वाचन— अध्यापक प्रथम अन्विति का सस्वर वाचन करेगा ।

सन्धि-विच्छेद—

स्वातन्त्र्योत्तर काले	=स्वातन्त्र्य+उत्तरकाले
यैका	=या+एका
कामराजयोजनाख्यया	=कामराज-योजना+आख्यया
कर्तुमीहमानेन	=कर्तुम्+ईहमानेन
कांग्रेसाध्यक्षेण	=कांग्रेस+अध्यक्षेण
तत्क्षणमेव	=तत्क्षणम्+एव
चिरकालादेव	=चिरकालात्+एव
शुद्धीकरणमावश्यकमस्ति	=शुद्धीकरणम्+आवश्यकम्+अस्ति
सोऽयं	=स+अयं
आसीदिदमेव	=आसीत्+इदम्+एव
प्रमुखउद्देश्यम्	=प्रमुखम्+उद्देश्यम्
चेत्युभयोः	=च+इति+उभयो:

११

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अद्यावधि	=अद्य+अवधि
प्रशासनमेवासीत्	=प्रशासनम्+एव+आसीत्
निर्जीवमिव	=निर्जीवम्+इव
चाभवत्	=च+अभवत्
संगठनमुद्धर्तुकामैः	=संगठनम्+उद्धर्तुकामैः
त्यक्तुमैच्छन्	=त्यक्तुम्+ऐच्छन्

उच्चारणाभ्यास—उपर्युक्त शब्दों को एक-एक करके अध्यापक पूछता जायगा और श्यामपट्ट पर लिखते हुए बोलता जायगा तथा छात्रों से इनके उच्चारण का अभ्यास कराता जायगा।

अनुवाचन— अध्यापक एक वाक्य बोलेगा और अनुशासित ढंग से समस्त छात्र धीरे-से उस वाक्य का उच्चारण करेंगे।

पुनः आदर्श वाचन—अध्यापक द्वारा।

अनुकरण वाचन—कतिपय छात्र गद्यांश का स्वर वाचन करेंगे।

बोध-परीक्षा— १. प्रस्तुत गद्यांश में किस योजना का वर्णन किया गया है ?

२. इसे कामराज-योजना क्यों कहते हैं ?

विस्तृत व्याख्या

समास-विग्रह—

कामराज योजना	=कामराजस्य योजना
कांग्रेसदले	=कांग्रेसाख्ये दले इति कांग्रेसदले
कायाकल्पम्	=कायायाः कल्पम्
देशहिताय	=देशस्य हिताय
योग्यनेतृणाम्	=योग्याः ये नेतारः तेषाम्

पदार्थ-कथन—

पद	अर्थ	युक्ति
स्वातन्त्र्योत्तरकाले	स्वतन्त्रा के बाद	विलोम (स्वातन्त्र्य का विलोम परतन्त्रता एवं उत्तर-काल का विलोम पूर्व-काल)
निखिलासु	सभी	व्युत्पत्ति (निम्नलिखित का अर्थ है समस्त, इसका सप्तमी के बहु-वचन का रूप)
राजनीतिविशारदानां	राजनीति चतुर	व्याख्या
न्यमज्जयत्	डुबा दिया	हाथ से अभिनय करते हुए
आख्या	नाम से	अर्थ-कथन
कायाकल्पं	शारीरिक परिवर्तन एवं सुधार	व्याख्या
मद्रप्रदेशः	मद्रास, तमिलनाडु	मानचित्र में मद्रास (तमिलनाडु) दिखाकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पद	अर्थ	युक्ति
चिरकालात्	बहुत समय से	वाक्य-प्रयोग (सः चिरकालात् मम प्रतीक्षां करोति)
प्रशासनम्	सरकार	प्रश्न (आजकल भारत में किस दल का प्रशासन है ?)
संगठनम्	संस्था	उदाहरण (कांग्रेस, जनसंघ, साम्यवादी दल आदि राजनीतिक संगठन हैं ।)

मौन वाचन— छात्रों द्वारा उपर्युक्त गद्यांश का मौन वाचन किया जायगा ।

विचार-विश्लेषण प्रश्न—

१. कामराज-योजना कब की घटना है ?

२. इस घटना ने किन लोगों का ध्यान आकृष्ट किया ?

३. 'आश्चर्यमहासागरे न्यमज्जयत्' से क्या तात्पर्य है ?

अध्यापक कथन— आश्चर्य का कोई महासागर नहीं होता, जिसमें मन को डुबाया जा सके । यहाँ पर इसका तात्पर्य यह है कि सबके मन में अत्यधिक आश्चर्य हुआ ।

४. कांग्रेस दल में कौन-सी त्रुटियाँ आ गयी थीं ?

५. इन्हें दूर करना क्यों आवश्यक था ?

६. त्रुटियों को दूर करने के लिए किसने इस योजना को भारतीय कांग्रेस के सामने रखा ?

७. इसे तत्क्षण क्यों स्वीकार कर लिया गया ?

८. कामराज-योजना में कौन-सा विचार मूर्त्त रूप हुआ ?

अध्यापक-कथन— इस योजना से यह आशा की गयी कि संगठन और शासन में सामंजस्य हो जायगा और लोगों में पदलिप्सा कम हो जायगी । अभी तक लोगों के मन में प्रशासन का आकर्षण अधिक था ।

९. प्रशासन में अत्यधिक आकर्षण से कांग्रेस संगठन की कैसी दशा हो गयी ?

अध्यापक-कथन— यही कारण है कि कामराज-योजना का आदर हुआ और बहुत से नेताओं ने अपने पद को छोड़ने की इच्छा व्यक्त की ।

द्वितीयान्विति—

"तत्कालीन.............................सन्ति ।"

आदर्श वाचन— अध्यापक द्वारा ।

सन्धि-विच्छेद— कामराजमहोदयोऽप्यासीत् = कामराजमहोदयः + अपि + आसीत्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

	इयमतीव	=इयम् + अतीव
	कोपि	=कः + अपि
	मतानुसारेण	=मत + अनुसारेण
	त्यक्तुमसमर्थाः	=त्यक्तुम् + असमर्था

उच्चारणाभ्यास— उपर्युक्त शब्दों को एक-एक करके अध्यापक पूछता जायगा और श्यामपट पर लिखता जायगा तथा बोलता भी जायगा। इसी समय छात्रों से इनके उच्चारण का अभ्यास भी कराता जायगा।

अनुवाचन— अध्यापक एक वाक्य या वाक्यांश बोलेगा और अनुशासित ढंग से समस्त छात्र धीरे-धीरे उस वाक्य का उच्चारण करेंगे।

पुनः आदर्श वाचन—अध्यापक द्वारा।

अनुकरण वाचन— कतिपय छात्रों द्वारा।

बोध-परीक्षा— १. कामराज-योजना को किस प्रधानमन्त्री ने प्रयुक्त किया ?

२. प्रधानमन्त्री ने इस योजना को किस प्रकार कार्य-रूप में परिणत किया ?

३. इस योजना से लोगों को क्यों आश्चर्य हुआ ?

विस्तृत व्याख्या

समास-विग्रह— प्रधानमन्त्रिणा = प्रधानश्चासौ मन्त्री इति प्रधानमन्त्री तेन

मतानुसारेण = मतस्य अनुसारेण इति मतानुसारेण

पदलोलुपतां = पदस्य लोलुपतां

पदार्थ कथन—

पद	अर्थ	युक्ति
मोचयित्वा	मुक्त करके	व्युत्पत्ति (क्त्वाप्रत्यय बताकर)
निर्वाचिताः	चुने गये	व्युत्पत्ति (क्त प्रत्यय बताकर)
साम्प्रतिके	आज के	अर्थ-कथन
परित्यज्य	छोड़कर	ल्यप् प्रत्यय का उल्लेख करके
पदलोलुपतां	पद का लालच	अर्थ-कथन

मौन वाचन— छात्रों द्वारा उपर्युक्त गद्यांश का मौन वाचन किया जायगा।

विचार-विश्लेषण— १. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कितने नेताओं को शासन से मुक्त कर दिया ?

२. इन्हें क्यों मुक्त किया गया ?

अध्यापक-कथन— इन बारह नेताओं को संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिए कहा गया। इन नेताओं के आदर्श से लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि आज के स्वार्थमय युग में परोपकार की भावना आश्चर्यजनक ही है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३. "विशेषतः नेतारः" क्यों कहा गया है ?
४. इस योजना का लक्ष्य क्या था ?
५. क्या यह लक्ष्य प्राप्त हुआ ?
६. कुछ लोगों को इस योजना में क्यों शंका थी ?

अध्यापक-कथन— इस योजना का तत्काल तो कुछ प्रभाव पड़ा, किन्तु बाद में इसका प्रभाव धीरे-धीरे कम हो गया। बाद में उन बारहों नेताओं में से कई पुनः शासन में आ गये। परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। कामराज-योजना उस समय की परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल थी। इसके पीछे जो भावना थी, वह तो सराहनीय है ही।

सस्वर वाचन— दोनों अन्वितियों का शिक्षक द्वारा; और समय मिलने पर कुछ छात्रों द्वारा भी।

पुनरावृत्ति— निम्नलिखित प्रश्नों का यथासम्भव संस्कृत में उत्तर दीजिए—
१. सम्प्रति कामराजयोजनयाः का आवश्यकता ?
२. योजनाप्रस्तावकाले तत्रभवन्तः, कामराजनाडार महाभागाः कस्मिन् पदे स्थिताः आसन् ?
३. सः महोदयः सम्प्रति कस्मिन पदे वर्तते ?
४. अस्यां योजनायाम् कति नेतारः प्रधानमन्त्रिणा राज्यभार-विमुक्ता कृताः ?

कक्षा-कार्य— रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—
कामराजयोजनायाः····प्रमुखम् उद्देश्यम् यत्····देशस्य चरमोन्नतिः भवति। केषामपि····मानसि पदलिप्सायाः····न स्युः। यथा कुटुम्बस्य कश्चित् प्रमुखः····अपत्यानम् कर्तव्यरूपेण भरणपोषणे लालनपालने च करोति तथैव तेषाम्····भावाः जायेरन्।

हल—
कामराजयोजनायाः (एतत्) प्रमुखम् उद्देश्यम् यत् (भारत) देशस्य चरमोन्नतिः भवति। केषामपि (नेतृणाम्) मानसि पदलिप्सायाः (भावाः) न स्युः। यथा कुटुम्बस्य कश्चित् प्रमुखः (निजानाम्) अपत्यानाम् कर्तव्यरूपेण भरणपोषणे लालनपालने च करोति तथैव तेषाम् (मनस्यपि) भावाः जायेरन्।

गृह-कार्य—आज के पढ़े हुए गद्यांश का हिन्दी भावार्थ लिखो।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१२ | नाटक-शिक्षण

नाटक काव्य और गद्य के बीच की विधा है। संस्कृत के नाटकों में तो उतना ही आनन्द आता है जितना काव्य में। कहा भी गया है—'**काव्येषु नाटकं रम्यम्**। अर्थात्, काव्यों में नाटक रम्य होता है। अवस्था-विशेष का अनुकरण करके आनन्द लेना और दर्शक को आनन्द प्रदान करना नाटक कहा जाता है। दशरूपककार धनञ्जय के अनुसार नाटक की परिभाषा है—"**अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्**"। भरत मुनि ने तो नाटक को पंचम वेद ही मान लिया है—**नाट्याख्यं पञ्चमं वेदम्**। संस्कृत के नाटकों में बीच-बीच में श्लोक भी आते रहते हैं, पालि या प्राकृत के अंश भी रहते हैं तथा संस्कृत का गद्यात्मक अंश भी रहता है। एक प्रकार से नाटक भी गद्यात्मक रचना है, किन्तु इसकी शैली भिन्न होती है, अतः इसकी शिक्षण-विधि भी भिन्न हो जाती है।

नाटक का स्वरूप

संस्कृत-साहित्य को श्रव्य और दृश्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। काव्य, कथा, आख्यायिकाएँ आदि श्रव्य-कोटि में हैं। श्रव्य-काव्य का आनन्द सुनकर या पढ़कर लिया जाता है, तो दृश्य-काव्य में दर्शनीय होने की सामर्थ्य होती है। नाटक एक प्रकार से दृश्य-काव्य है जो अभिनय के माध्यम से दर्शनीय होता है। दृश्य-काव्य में अभिनेताओं में मूल व्यक्तियों का आरोप होता है। इसी आरोप के कारण दृश्य-काव्य को रूपक भी कहते हैं। वस्तु, नेता और रस की दृष्टि से रूपक के दस भेद हैं जिनमें नाटक सर्वप्रथम एवं प्रमुख है। इसीलिए कभी-कभी नाटक और रूपक को पर्यायवाची समझ लिया जाता है।

नाटक के लिए कथा-वस्तु या इतिवृत्त महत्त्वपूर्ण है। इतिवृत्त के तीन भेद हैं—प्राख्यात, उत्पाद्य और मिश्र। इतिहास-प्रसिद्ध इतिवृत्त प्राख्यात, कवि-कल्पित वृत्त उत्पाद्य और दोनों के मिश्रण से निर्मित वृत्त मिश्र कहा जाता है। अभिज्ञान-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाकुन्तलम्, उत्तररामचरितम् आदि में प्रख्यात इतिवृत्त हैं; मृच्छकटिक, मालती-माधव आदि में उत्पाद्य और मध्यम व्यायोग, पाञ्चरात्र आदि में मिश्र इतिवृत्त हैं। नाटक का नायक अधिकारी कहा जाता है और उससे सम्बन्धित कथा-भाग को अधिकारिक या मुख्य वृत्त कहते हैं। अप्रधान चरित्र से सम्बन्धित कथा-भाग को प्रासंगिक या गौण वृत्त कहा जाता है। प्रासंगिक इतिवृत्त पताका और प्रकरी दो प्रकार का होता है। एक अंक में समाप्य प्रासंगिक वृत्त प्रकरी कहा जाता है एवं कई अंकों तक चलने वाली गौण कथा पताका कहलाती है। मुख्य वृत्त की तीन अवस्थाएँ मानी गई हैं। मुख्य वृत्त की प्रारम्भावस्था को वीज कहते हैं। कार्य के रूप में वृत्त का अवसान होता है। विन्दु वीज के कार्य तक फैला रहता है। इस प्रकार बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नामक पाँच अर्थ-प्रकृतियाँ होती हैं। अर्थ-प्रकृति नाटकीय घटना की प्रगति के अनुसार चलती है।

नाटक के नायक के कार्य के अनुसार भी पाँच अवस्थाएँ होती हैं। इन्हें आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम कहते हैं। नायक फल को प्राप्त करने के लिए प्रयास का आरम्भ करता है, यत्न करता है, उसे पाने की आशा करता है और फल-प्राप्ति में समर्थ होता है। प्रत्येक अवस्था को दिखाने के लिए एक या दो अंक हो सकते हैं। इस प्रकार नाटक में कम से कम पाँच तथा अधिक से अधिक दस अंक हो सकते हैं। इतिवृत्त और कार्यावस्थाओं को सन्धि जोड़ती है। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण नाम से पाँच संधियों की कल्पना की गई है। मुख सन्धि व निर्वहण का उपसंहार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मुख-सन्धि में कथा का बीजपत्र नायक की कार्यारम्भावस्था से युक्त होता है, तो निर्वहण में कार्य फलागम से युक्त होता है। मृत्यु, युद्ध, अशिष्ट व्यवहार, कामक्रिया आदि नाटक के अंकों में नहीं दिखाये जाते। इनकी केवल सूचना दी जाती है। बीती हुई या आगे आने वाली घटनाओं की सूचना भी अर्थोपेक्षकों द्वारा ही दी जाती है। विषकम्भक, प्रवेशक, अङ्कास्य, अङ्कावतार और अङ्कमुख नामक पाँच अर्थोपेक्षकों की कल्पना की गई है। विषकम्भक, प्रवेशक व अङ्कावतार अंक के प्रारम्भ से लघु दृश्य के रूप में रखे जाते हैं। जहाँ मध्यम तथा अधम पात्रों के मुख से घटना की सूचना दी जाती है। अङ्कास्य व अङ्कमुख का उपयोग प्रायः चरित्रों का परिचय देने के लिए किया जाता है।

नायक, नायकादि यदि सभी पात्रों के सुनने योग्य कुछ कहते हैं तो उस संलाप को प्रकाशम् कहते हैं। विशिष्ट लोगों के लिए प्रयुक्त संलाप को जनान्तिक तथा केवल अपने लिए कही गई युक्ति को स्वगत कहते हैं। इसके अतिरिक्त यदि एक ही पात्र किसी कल्पित व्यक्ति से संलाप करता हुआ अपने तात्पर्य को दर्शकों के समक्ष रखता है तो उस संलाप को आकाशभाषित कहा जाता है। नाटक का प्रारम्भ मंगलश्लोक से होता है जिसे नान्दी कहा जाता है। देव, विप्र, राजा आदि की वंदना से नाटक का प्रायः प्रारम्भ होता है और सबके कल्याण की प्रार्थना से नाटक का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्त होता है। नान्दी के बाद नाटक में प्रस्तावना होती है, जिसमें सूत्रधार नाट्य-कार के नाटक तथा प्रयोजन का परिचय देता है और बड़ी कुशलता से कथा का सूत्रपात कर देता है।

संस्कृत में रूपक दस प्रकार के माने गये हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग। नाटिका की गिनती भी इन्हीं के साथ है। नाटक डिम, व्यायोग, समवकार और अंक में प्रख्यात वृत्त का उपयोग होता है; प्रकरण, नाटिका, भाण, एहसन और वीथी में कल्पित वृत्त तथा ईहामृग में मिश्र-वृत्त का उपयोग किया जाता हैं। नाटक में पाँच से दस अंक, प्रकरण में दस अंक, डिम में चार अंक, समवकार में तीन अंक तथा ईहामृग में चार अंक होते हैं। व्यायोग अंक, भाण, प्रहसन और वीथी एकांकी हैं। नाटक का नायक राजा; प्रकरण का नायक अमात्य, विप्र या वणिक्; डिम का नायक देव, दानव, गंधर्वादि; समवकार का नायक देव या दानव एवं ईहामृग का नायक मनुष्य होता है। नाटक और प्रकरण में शृङ्गार या वीर रस मुख्य होता है। डिम में शृङ्गार और हास्य को छोड़कर अन्य रस मिलते हैं। समवकार में वीर रस मुख्य होता है। अंक में करुण, प्रहसन में हास्य, व्यायोग में वीर एवं भाण व वीथी में शृङ्गार रस मुख्य होता है। भाण में एक-पात्रीय अभिनय होता है। संस्कृत रूपकों में नायक के चार भेद किए गए हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीर-प्रशान्त। प्रथम तीन भेदों नायक क्षत्रिय होते हैं, तो अन्तिम में ब्राह्मण और वैश्य। राम व युधिष्ठिर धीरोदात्त, भीम धीरोद्धत, दुष्यंत धीरललित व चारुदत्त और धीर-प्रशान्त नायकों के उदाहरण हैं।

अभिनय का विकास

अभिनय की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। सभ्यता के आदि काल से हो अभिनय की परम्परा रही होगी। राजसूय यज्ञ में गविष्टि का अभिनय होता था। यज्ञमान राजा किसी अन्य राजा पर आक्रमण करने का अभिनय करता था, चाहे दोनों मित्र या सम्बन्धी ही क्यों न हों। ऐसा यज्ञ का विधान था। इसका उल्लेख वैदिक साहित्य में विद्यमान है। कीथ (संस्कृत ड्रामा, पृ० २०६) के अनुसार ऋग्वेद के युग में भी धार्मिक नाट्य-दृश्यों का अभिनय होता था। गविष्टि भी एक प्रकार का धार्मिक नाट्य दृश्य ही है। यह परम्परा आज भी रामलीला एवं कृष्णलीला के रूप में भारत में देखी जा सकती है। बरात चले जाने पर 'खोइया' का कार्यक्रम भी धार्मिक नाट्य दृश्य की ही परम्परा में है। वैदिककालीन महाव्रत से वैश्य और शूद्रों का अभिनया-त्मक युद्ध भी धार्मिक नाट्य-दृश्य ही था। विष्णु के यज्ञ रूप में वामन के अभिनय का उल्लेख वैदिक साहित्य में विद्यमान है। नट, नर्तक और गन्धर्वों द्वारा मनो-रंजनार्थ अभिनय भी किया जाता था। वाजसनेयि संहिता (३०-६) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.४.२.१) में 'शैलूष' का उल्लेख है जो नाटक के पात्र थे।

'रङ्ग' का उल्लेख महाभारत में विद्यमान है जो संभवत: अभिनय के लिए प्रयुक्त होता था। अभिनय-प्रधान नाटक का उल्लेख रामायण व महाभारत दोनों में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। जातक-युग में नट गाँव व शहर में अभिनय करते थे। चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व में कुशीलवों का संघ हुआ करता था। उसका उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है। कौटिल्य ने कुशीलवों के आयोजनों के सम्बन्ध में राजकीय नियमों की भी चर्चा की है। कुमारियों को भी नाट्य की शिक्षा दी जाती थी और कुछ कुमारियों का तो पेशा ही अभिनय होता था। अभिनय को राजाश्रय प्राप्त था और रंगमंच पर स्त्रियाँ भी आती थीं। ईसवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल में नाट्य-शास्त्र को बड़ा सम्मान मिला। नाट्य-शास्त्र ग्रन्थ के रचयिता भरत को मुनि की उपाधि से विभूषित किया गया और इस शास्त्र को सार्ववर्णिक वेद कहा गया।

अभिनय के लिए नाट्य-मण्डप की व्यवस्था थी। रंगपीठ से मण्डप में आने के लिए लघु द्वार होता था। मण्डप में गवाक्ष, यन्त्र व जाल की व्यवस्था का वर्णन है। मण्डप का निर्माण शास्त्रीय विधि से होता था। अभिनय चार प्रकार का बताया गया है—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक। आंगिक अभिनय शरीरज, मुखज तथा चेष्टाकृत होता है। शिर, हस्त, उर, पार्श्व, कटि तथा पाद को अंग कहा गया है एवं नेत्र, भ्रू, नास, अधर, कपोल एवं चिबुक उपाङ्ग हैं। वाचिक अभिनय स्वर और व्यंजन से सम्बन्धित है एवं जिस देश में नाटक की रचना हुई हो, वहाँ की भाषा एवं विभिन्न प्रदेशों की प्राकृत भाषाओं का इसमें उपयोग होता है। अभिनय में मधुर एवं हितकारी वाक्यों का प्रयोग सात्त्विक अभिनय है।

यदि कुछ वस्तुओं को प्रस्तुत करके अभिनय किया जाय तो उसे आहार्य कहते हैं। काठ के फलक, वस्त्र, चर्म आदि से निर्मित प्रतिमाएँ, यन्त्र से चालित प्रतिमाएँ, पर्वत, रथ और विमान आदि का प्रस्तुतीकरण आहार्य कोटि का अभिनय है। अभिनय में पात्रों की अंग-रचना भी की जाती है। आहार्य अभिनय की वस्तुएँ प्रायः कृत्रिम होती हैं। अभिनय हेतु पात्रों का चुनाव भी महत्त्वपूर्ण है। देवता का अभिनय करने वाला मनोहर एवं प्रियदर्शन होना चाहिए। इसी प्रकार भरत मुनि ने राजा, राक्षस, देव, राजकुमार, सेनापति, अमात्य, कंचुकी, श्रोत्रिय, मुनि आदि की भूमिका में अभिनय करने वाले पात्रों की पात्रता का विवेचन किया है। अनुरूप स्त्री ही यदि स्त्री की भूमिका और पुरुष की भूमिका प्रस्तुत करे तो उसे अनुरूपा भूमिका कहते हैं। यदि बालक वृद्ध का अथवा वृद्ध बालक का अभिनय करे तो उसे विरूपा प्रकृति कहेंगे और यदि पुरुष स्त्री की भूमिका में प्रकट हो तो उसे स्वरूपानुरूपिणी प्रकृति कहते हैं।

भरत मुनि ने अभिनय-काल पर भी विचार किया है। मध्याह्न, अर्द्धरात्रि, सन्ध्या और भोजन-काल में अभिनय वर्जित किया गया है। शृंगार रस सम्बन्धी नृत्य व अभिनय प्रदोष बेला में तथा करुण रस युक्त अभिनय प्रभात काल में उत्तम कहे गये हैं। वीर रस सम्बन्धी अभिनय दोपहर के बाद एवं धर्म सम्बन्धी नाट्य दोपहर के पहले उत्तम बताये गये हैं। शयन, चुम्बन, आलिंगन, भोजन, जलक्रीड़ा आदि का रंगमंच पर दिखाना निषिद्ध माना गया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राचीन काल के नाटक लोकप्रिय थे। राजाओं के अतिरिक्त विद्वानों की परिषद् एवं साधारण जनता भी नाटक में रुचि लेती थी। जैन साहित्य के अनुसार मेघकुमार नामक राजकुमार विवाह के पश्चात् दाम्पत्य जीवन का सुख प्राप्त करने के लिए राजभवन में बत्तीस पात्रों द्वारा अभिनीत नाटक देखता था। महावीर तीर्थ-ङ्कर के जीवन की घटनाओं का भी अभिनय किया जाता था। पाटलिपुत्र में 'अषाढ़ भूति' नामक साधु भरत के जीवन-चरित का अभिनय प्रस्तुत करता था जिससे लोगों में संन्यास की भावना उदित होने लगी थी। प्रजा की हानि अधिक न हो, इससे 'अषाढभूति' के नाटक वर्जित कर दिये गये थे।

संस्कृत का नाट्य-शास्त्र

नाटक-परम्परा में अश्वघोष का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। अश्व-घोष सम्भवतः प्रथम शताब्दी ई० में साकेत में निवास करते थे। वे कदाचित् कनिष्क के समकालीन व परामर्शदाता थे। उनका सर्वप्रसिद्ध नाटक शारिपुत्र-प्रकरण है जिसमें शारिपुत्र और मौद्गल्यायन के बौद्ध बनने का इतिवृत्त है। उनके दूसरे नाटक का नाम नहीं मिलता, किन्तु उसकी योजना सुन्दर है। इसमें बुद्धि, कीर्ति, धृति, आदि भावनाओं के संवाद प्रस्तुत हैं। तीसरा नाटक भी पूर्ण रूप में नहीं मिलता, किन्तु जो अंश प्राप्य है, उससे इसकी लोकप्रियता सिद्ध होती है। यह नाटक धार्मिक है, किन्तु इसमें हास्य का पुट है। सोमदत्त इसका नायक है और मगधवती वेश्या, कोमुधगंध विदूषक आदि पात्र हैं।

भास को इतिहासकार ई० पू० ५०० से लेकर ११०० ई० तक के मध्य रखते हैं। बहुत समय तक भास की कृतियाँ उपलब्ध नहीं थीं। १९१२ ई० में सर्वप्रथम श्री गणपतिशास्त्री ने उनके नाटकों का सम्पादन किया। भास सम्भवतः कौशाम्बी के निवासी थे। भास की कृतियाँ हैं—अभिषेक, बालचरित, अविमारक, स्वप्नवासव-दत्तम्, प्रतिमा, चारुदत्त, पंचरात्र, प्रतिज्ञा-यौगंधरायण, कर्णभार, दूतघटोत्कच, उरु-भङ्ग, दूतवाक्य और मध्यम व्यायोग। भास की कृतियों में काव्य-तत्त्व भरा पड़ा है। उन्होंने राम, कृष्ण, भरत, अर्जुन, भीम, कर्ण, द्रोण, उदयन, सीता, वासवदत्ता, वसन्तसेना, यौगंधरायण आदि आदर्श पात्रों को अपनी कृतियों का नायक बनाकर मानवता का विकास करने का प्रयास किया। उन्हें रस-निष्पत्ति में अतिशय सफलता मिली है। उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण व प्रसाद गुण युक्त है।

शूद्रक प्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिक के रचयिता हैं। कल्हण ने राजतरंगिणी (३-३४३) में उन्हें विक्रमादित्य का समकक्ष बताया है। स्कन्दपुराण, वेतालपंच-विंशतिका, कथासरित्सागर, कादम्बरी और हर्षचरित जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों में शूद्रक का उल्लेख है। इससे शूद्रक की लोकप्रियता सिद्ध होती है। शूद्रक कालिदास के पहले हुए हैं। मृच्छकटिक नाटक के आगे दिये गये श्लोक से इस नाटक की कथा का संक्षेप में परिचय मिल जाता है। वह श्लोक इस प्रकार है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः ।
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना ॥

कविकुलगुरु कालिदास के तीन रूपक हैं—अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्रम् । कालिदास के आश्रयदाता उज्जयिनी के विक्रमादित्य थे। कीथ, भण्डारकर, रामावतार शर्मा आदि विद्वान् उन्हें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं जबकि कुछ अन्य लोग उन्हें पहली शताब्दी ई० पू० में रखते हैं। कालिदास का सर्वश्रेष्ठ नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् है जो भारत ही नहीं, विश्व-भर में प्रसिद्ध हो चुका है । इसमें दुष्यन्त एवं शकुन्तला के गांधर्व विवाह, दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला का विस्मरण, बाद में मुद्रिका देखकर शकुन्तला का स्मरण आदि का वर्णन है । गेटे ने इस नाटक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा राजा और उर्वशी अप्सरा के प्रणय का वृत्तान्त है । मालविकाग्निमित्र में विदर्भ की राजकन्या मालविका का विदिशा के राजा अग्निमित्र से किस प्रकार मिलन सम्भव हुआ, इसका वृत्तान्त है ।

वाण के आश्रयदाता महाराज हर्ष स्वयं साहित्यकार थे । उन्होंने तीन रूपकों की रचना की है । सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के उत्तर भारत के श्रेष्ठ सम्राट द्वारा रचित रत्नावली अच्छा रूपक है । इसकी कथा स्वप्नवासवदत्तम् की रीति पर विकसित है । इसमें सिंहल की राजकन्या रत्नावली किस प्रकार कौशाम्बी के राजा उदयन से मिलती है, इसका वर्णन है । हर्ष का दूसरा रूपक है, प्रियदर्शिका । प्रियदर्शिका का नायक भी उदयन ही है और नायिका है आरण्यका । दोनों के मिलन के पूर्व की कथा इसमें चलती है । हर्ष का तीसरा रूपक है नागानंद जिसमें जीमूतवाहन की सात्त्विकता एवं पराक्रमशीलता का वर्णन है । हर्ष के समकालीन काञ्ची के राजा महेन्द्र-विक्रमवर्मा ने मत्तविलास नामक एकांकी प्रहसन की रचना की । मत्तविलास संस्कृत का प्रथम प्रसिद्ध प्रहसन है, जिसमें धार्मिक कुरूपताओं का चित्रण है । इसी युग के उभयाभिसारिका, पद्य-प्राभृतक, धूर्तविटसंवाद और पादताडितक नामक चार एकांकी भाण मिले हैं । ये भी प्रहसन हैं और इन्हें चतुर्भाण कहा जाता है । इनके रचयिता वररुचि, शूद्रक, ईश्वरदत्त और श्यामिलक कहे जाते हैं ।

भवभूति का जन्म लगभग सातवीं शताब्दी ई० में विदर्भ प्रदेश के पद्मपुर गाँव में हुआ था । मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित नामक उनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं । संभवतः विदर्भ से वे बाद में उज्जयिनी आ गये जहाँ उनके नाटकों का अभिनय हुआ । उज्जयिनी से वे कन्नौज चले गये और वहाँ के राजा यशोवर्मा के दरबार को अलंकृत किया । मालतीमाधव में पद्मावती के राजसचिव भूरिवसु की कन्या मालती व विदर्भ के राजसचिव देवरात के पुत्र माधव के विवाह का इतिवृत्त है । महावीर-चरित में राम-विवाह के कुछ पूर्व से रावण-विजय तथा लंका-विजय तक की कथा का वर्णन है । उत्तररामचरित में लक्ष्मण द्वारा सीता को वन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में छोड़ दिये जाने के बाद का कथानक है। महावीर-चरित तथा उत्तररामचरित में भवभूति ने राम-कथा को अभिनय का रूप दिया है। उत्तररामचरित में भवभूति को बड़ी सफलता मिली है। भावों की उदारता, रामकथा की सरसता, उदात्त व्यक्तित्व का चित्रण, दिव्य वातावरण की सृष्टि, प्रेम के आदर्श का निर्वाह उत्तररामचरित की प्रमुख विशेषताएँ हैं; तभी तो कहा गया है कि "उत्तरेरामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"।

नवीं शताब्दी ई० के आसपास विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस की रचना की। इसकी कथा ऐतिहासिक है। नन्द वंश के अन्त और चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य के प्रारम्भ में इसकी कथा का आरम्भ होता है। मुद्राराक्षस की भाषा सरल और प्रभावी है। विशाखदत्त एक राजा थे और इनकी अन्य रचना देवीचन्द्र गुप्त है। नवीं शताब्दी के आसपास ही वैष्णव सम्प्रदाय के रसिक भक्त कवि एवं संभवतः बंगीय ब्राह्मण भट्टनारायण ने वेणीसंहार की रचना की। वेणीसंहार में महाभारत के युद्ध का वर्णन है। इसमें वर्णनों की प्रचुरता एवं कार्य-व्यापार-तत्त्व की स्वल्पता है। पात्रों का चरित्र-चित्रण अच्छा है। आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कलचूरि राजवंश के राजा अनंगहर्ष ने तापस-वत्सराज नामक नाटक लिखा जिसकी कथा-वस्तु वासवदत्ता के समान है। अनंगहर्ष के समकालीन ब्राह्मणकुलोत्पन्न मुरारि कवि ने अनर्घराघव नामक नाटक लिखा जिसमें राम-कथा को नया रूप दिया। नवीं शताब्दी में दामोदर मिश्र ने हनुमन्नाटक का प्रणयन किया जिसमें चौदह अंकों में पद्यात्मक रूप से राम-कथा का वर्णन है। कीथ (संस्कृत ड्रामा, पृ०२३१) के अनुसार क्षत्रिय पर स्वयं के अनुसार यायावर (भ्रमणशील भिक्षुक, संभवतः ब्राह्मण) वंशी राजशेखर महाराष्ट्र में उत्पन्न हुए और वहाँ से कान्यकुब्ज में राजसभा में आ गये। उन्होंने बालरामायण नामक महानाटक लिखा है जिसका प्रत्येक अंक एक नाटिका के बराबर है। उनका एक अपूर्ण नाटक बालभारत भी है। इनकी नाट्य-कला साधारण कोटि की है, पर काव्य-कला ऊँची है। इनके समकालीन तथा कन्नौज के राजा महिपाल के आश्रित विद्वान् क्षेमीश्वर ने चण्ड-कौशिक नामक नाटक लिखा।

राजशेखर से प्राचीन परम्परा समाप्त-सी हो गई। पर नई परम्परा में भी रूपक लिखे जाते रहे। बारहवीं शताब्दी में जयदेव ने प्रसन्नराघव की रचना की जिसमें रामायण की पूरी कथा है। इसी काल में वीसलदेव विग्रहराज ने हरेकलि नाटक लिखा। कवि कर्णपूर ने १५४३ ई० में चैतन्य चन्द्रोदय नामक नाटक लिखा जिसमें चैतन्य महाप्रभु का जीवन-चरित वर्णित है।

सोलहवीं शताब्दी में विजयनगर के राजा कृष्णदेव राज ने उषापरिणय नाटक में उषा और अनिरुद्ध का परिणय दिखाया है। इनका दूसरा नाटक जाम्बवती-कल्याण है। इनके आश्रय में अरुण गिरिनाथ द्वितीय ने वीरभद्र विजय नामक डिम की रचना की। स्फुलिंग कवि का सत्यभामा-परिणय, श्रीनिवास दीक्षित का 'भैमी-परिणय', मिथिलावासी गोकुलनाथ का 'मुदित मदालसा', अर्काटवासी बालकवि का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'रत्नकेतूदय' तथा तंजौरवासी विलिनाथ का 'मदन-मंजरी' आदि नाटक सोलहवीं शताब्दी में लिखे गये।

सठकोप रचित वासन्तिक परिणय, कश्मीर निवासी भूदेव शुक्ल रचित धर्म विजय, ताताचार्य रचित पारिजातहरण, तजौरवासी नीलकण्ठ रचित नलचरित, रामभद्र दीक्षित रचित जानकी परिणय, मथुरावासी समराज दीक्षित रचित श्रीदाम-चरित, काठियावाड़वासी जगन्नाथ शीघ्रकवि रचित सौभाग्य महोदय आदि सत्तरहवीं शताब्दी के उल्लेखनीय नाटक हैं।

आनन्दराय कृत विद्यापरिणय, मलाबारवासी जातवेदाः कृत पूर्णपुरुषार्थ-चन्द्रोदय, बुन्देलखण्डवासी शंकर दीक्षित कृत प्रद्युम्न-विजय, तंजौरवासी जगन्नाथ कृत रतिमन्मथ, मिथिलावासी कृष्णदत्त कृत पुरंजन चरित, त्रावणकोरवासी देवराज कृत बालमार्तण्डविजय, कांचीवासी वरदाचार्य कृत वसन्ततिलक, बंगालवासी रामदेव कृत विद्वन्मोदतरंगिणी, विश्वनाथ कृत मृगाङ्कलेखा, तंजौरवासी घनश्याम कृत मदन-संजीवन, मलाबारवासी रामापाणिवाद कृत चन्द्रिका आदि ग्रन्थ अठारहवीं शताब्दी के उल्लेखनीय रूपक हैं।

राजकुमार गोदावर्मा रचित रामचरित, सुन्दरराजाचार्य रचित पद्मिनी-परिणय वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य रचित चैत्रयज्ञ, सुन्दरवीर राघव रचित रम्भारावणीय, वल्लीसहाय रचित यतातितरुणानन्द, पद्मनाभ रचित त्रिपुरविजय लक्ष्मण, सूरि रचित दिल्ली-साम्राज्य (जिसमें जार्ज पंचम के दिल्ली दरबार का वर्णन है), नारायण शास्त्री रचित ब्रह्मविद्या, रामचन्द्र रचित शृंगार सुधावर्णव, कोयम्बटूर के वकील श्रीनाभा-चार्य द्वारा रचित गोवर्धन विलास, महामहोपाध्याय शंकरलाल रचित सावित्री चरित्र आदि नाटक विगत शताब्दी के उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं।

वर्तमान शताब्दी में भी रूपक लिखे जा रहे हैं। नारायणशास्त्री का राधा-मंगलम्, तंजौरवासी श्रीनिवासाचार्य का क्षीराब्धिशयनम्, वेङ्कटनरसिंहाचार्य का गजेन्द्रमोक्ष अच्छे नाटक हैं। इस शताब्दी में छपरा निवासी पंडित रामावतार शर्मा ने संस्कृत साहित्य की अनुपम श्रीवृद्धि की है। उनके धीर नैषध नाटक में नल और दमयन्ती का इतिवृत्त है। बंगलौर संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य वेंकटरमणाचार्य द्वारा प्रणीत कमला विजय नामक नाटक सुन्दर है। गुजरातवासी मूलशंकर मणिक-लाल याज्ञिक द्वारा रचित छत्रपति-साम्राज्य व प्रपात विजय नामक नाटक, प० अम्बिकादत्त व्यास रचित सामवत, महालिंग शास्त्री रचित कलि-प्रादुर्भाव, पं० बटुकनाथ शर्मा रचित पाण्डित्यताण्डवितम्, रायदुर्गवासी आचार्य रंगनाथ रचित न्यायसभा, हरदोईवासी पं० मथुराप्रसाद दीक्षित रचित वीर प्रताप, शंकर विजय, भक्त सुदर्शन, गाँधी विजय, भारत विजय, और पृथ्वीराज विजय; पूनावासी ताड-पत्रीकर रचित विश्वमोहन, पं० सदाशिव दीक्षित कृत सरस्वती, श्रीहरिदास सिद्धान्त वागीश रचित शिवाजी चरित, सन् १९५८ में श्री भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी द्वारा रचा गया कृषकाणां नागपाशः नामक रेडियो रूपक इस शताब्दी के अन्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उल्लेखनीय रूपक हैं। पं० मथुराप्रसाद दीक्षित के नाटकों ने इस युग में विशेष प्रेरणा दी है। उनका भारत-विजय नाटक तो पाण्डुलिपि की अवस्था में ही सन् १९४६ में जब्त हो गया था और स्वतन्त्रता के बाद ही इसका प्रकाशन सम्भव हो सका।

राजशेखर से पूर्व की परम्परा में हम यह देखते हैं कि संस्कृत नाटकों में संस्कृत और प्राकृतों का सम्मिश्रण है। शिक्षित एवं सुसंस्कृत पात्र संस्कृत बोलते हैं तो अशिक्षित एवं स्त्री-पात्र प्रायः प्राकृत बोलते हुए मिलते हैं। ऐसी प्राकृतें थीं—मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शूरसेनी, अर्धमागधी, वाल्दीका और दाक्षिणात्या। उस समय के नाटक प्रायः गद्य-पद्य—दोनों से युक्त हैं। नाटकों में बहुविध छन्दों; यथा—उपजाति, मालिनी, वंशस्थ, शिखरिणी, प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, हरिणी, शार्दूलविक्रीडत, स्रग्धरा, सुवदना आदि का उपयोग हुआ है। कुछ नाटकों में भावों का मानवीकरण हुआ है। इन नाटकों में प्रायः मानवता के लिए एक विशेष सन्देश है। इनमें अनेक प्रकार के रसों एवं भावों की निष्पत्ति के लिए सामग्री प्रस्तुत है। पात्रों का चरित्र-चित्रण उन्नत है। नायकों का व्यक्तित्व उदात्त है। कथा-वस्तु रोचक एवं इतिहास-प्रसिद्ध है। कुछ इतिवृत्त काल्पनिक भी हैं। अभिज्ञान शाकुन्तलम् एवं उत्तररामचरितम् श्रेष्ठ नाटक हैं तो मृच्छकटिक व मालती-माधव श्रेष्ठ प्रकरण हैं। उस युग के श्रेष्ठ भाण कर्पूरचरित, चतुर्भाणी व शृंगार-भूषण हैं तो मत्तविलास, लटकमेलक, हास्यचूड़ामणि, धूर्तसमागम, हास्यार्णव आदि प्रसिद्ध प्रहसन हैं। इसी प्रकार त्रिपुरदाह व मन्मथोन्मथन अच्छे डिम हैं तो भासकृत मध्यम व्यायोग अच्छा व्यायोग है। पंचरात्र व समुद्रमंथन समवकार के रूप में तथा भास कृत उरुभंग, कर्णभार व दूतघटोत्कच अङ्क के रूप में प्रसिद्ध हैं। वीथी के रूप में भास कृत दूतवाक्य का, ईहामृग के रूप में भास कृत प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा वत्सराज कृत रुक्मिणीहरण का उल्लेख किया जा सकता है। प्राचीन-काल में छाया नाटकों का भी प्रचलन था। छाया नाठक पुतलियों की छाया से चलचित्र का प्रदर्शन था। कुछ विद्वानों के अनुसार छाया नाटक बड़े नाटकों की छाया अर्थात् संक्षिप्त, संस्करण हैं, और कुछ नहीं। किन्तु मेघप्रभाचार्य के नाटक धर्माभ्युदय में रंगमंच की योजना में 'पुत्रक' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जो सम्भवतः पुतलियों के लिए ही है। नाटिकाएँ भी संस्कृत में विद्यमान हैं। नाटिका और नाटक में बहुत कम अन्तर है। नाटिका का नायक पुराण के माध्यम से परिचित तो होता है, किन्तु इसकी कथा काल्पनिक होती है। स्त्री-पात्र की इसमें प्रधानता होती है, नायक धीरललित होता है। इसमें शृंगार रस की प्रधानता होती है। हर्ष की नाटिकाएँ प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कर्ण सुन्दरी, विजयश्री तथा वृषभानुजा नामक नाटिकाएँ भी प्रसिद्ध हैं।

आधुनिक युग में जो नाटक लिखे गये हैं या लिखे जा रहे हैं, उनमें प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं है। वे सुललित संस्कृत में लिखे गये हैं। इनकी कथा-वस्तु भी आधुनिक युग के अनुरूप है; उदाहरणार्थ 'छत्रपति साम्राज्य' में शिवाजी के चरित्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं 'प्रताप विजय' में महाराणा प्रताप के चरित्र का वर्णन है। काश्मीर-सन्धान समुद्यम में राजगोपालाचार्य, पं० नेहरू, डॉ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, शेख अब्दुला, ग्राहम आदि पात्र है। पृथ्वीराज-विजय में गांधीजी का स्वतन्त्रता-संग्राम वर्णित है तो भारत-विजय में भारत की स्वतन्त्रता की कथा हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संस्कृत में आधुनिक विषयों के आधार पर नाटकों का प्रणयन हो रहा है। इससे इस धारणा को बल मिलता है कि संस्कृत किसी अर्थ में मृत भाषा नहीं है।

नाटक-शिक्षण के उद्देश्य

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के निम्नलिखित तीन उद्देश्य बताए हैं—

१. **हितोपदेशजननम्**—व्यक्ति व समाज के कल्याणार्थ उपदेश देना।
२. **विश्रान्तिजननम्**—समाज व व्यक्ति की शान्ति प्रदान करना।
३. **विनोदजननम्**—व्यक्ति व समाज का मनोरंजन करना।

संवाद-पाठों की शिक्षा भी नाटक के पाठों की शिक्षा के समान ही दी जानी चाहिए। नाटक की शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

१. छात्रों को उचित आरोह-अवरोह तथा उचित भाव-भंगिमा के साथ संवाद करने का ज्ञान कराना।
२. छात्रों को अभिनय की कला का ज्ञान कराना।
३. विविध परिस्थितियों के अनुकूल मानवीय व्यवहार से छात्रों को परिचित कराना।
४. मानव-प्रकृति एवं मानव-चरित्र से उन्हें परिचित होने के अवसर प्रदान करना।
५. छात्रों के भाषा-ज्ञान की वृद्धि करना।
६. छात्रों को चिन्तन, प्रश्न-उत्तर, वार्तालाप, भाषण, कथनोपकथन आदि अवसरों पर प्रभावोत्पादक ढङ्ग से अपने भावों को व्यक्त करने की कला का ज्ञान देना।

A 85

नाटक-शिक्षण-विधि

नाटक व्यक्ति के चित्त को स्पर्श करता है इसीलिए नाट्यशास्त्र में इसकी बहुत प्रशंसा की गई है। ऐसा माना जाता है कि कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म ऐसा नहीं है जो नाटक में न विद्यमान हो। नाट्यशास्त्र (१।११६) में कहा गया है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाटयेस्मिन् यन्नदृश्यते।

संवादात्मक पाठों की पठन-विधि भी गद्यपाठों-जैसी ही होती है। इसमें संवादात्मकता के कारण थोड़ा-सा प्रभाव अवश्य पड़ जाता है। संवादात्मकत के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारण पाठों की भाषा प्रायः सरल होती है। यदि भाषा सरल हो, तो इन्हें गद्य पाठों से पहले पढ़ाना चाहिए। वाचन भी अभिनय प्रणाली से कराना चाहिए। एक पात्र का कार्य स्वयं अध्यापक कर सकता है। इससे छात्रों के सम्मुख अच्छे वाचन का आदर्श प्रस्तुत हो सकता है और उनका उत्साह जाग्रत बना रह सकता है। इस प्रकार के पाठों में से एक-दो का सार्वजनिक रूप से संवाद के रूप प्रस्तुत कराना उचित होता है। ऐसा करने से छात्रों में रुचि की वृद्धि होती है।

नाटक या संवाद-पाठों के शिक्षण की मुख्यतः तीन विधियाँ हैं। इन विधियों का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

(१) **आदर्श नाट्य-विधि**—अध्यापक स्वयं ही कक्षा में पूरे पाठ को इस विधि से पढ़ता है कि पात्रों के भाव एवं चरित्र की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है। शिक्षक वाणी द्वारा एक प्रकार से अभिनय करता है। यह विधि अवैज्ञानिक है, क्योंकि इसमें छात्रों का ध्यान केवल अभिनय के ढङ्ग पर ही केन्द्रित रहता है। वे नाटकगत भावों एवं चरित्रों को तो समझ जाते हैं, किन्तु नाटक की शिक्षा के अन्य उद्देश्य पूरे नहीं हो पाते।

(२) **अभिनय-विधि**—इस विधि से नाटक की शिक्षा में नाटक या संवाद पाठ का वास्तविक अभिनय किया जाता है। यह अभिनय दो प्रकार से हो सकता है—(१) रंगमंच पर नाटक को विधिपूर्वक अभिनीत किया जाय, जिससे छात्र नाटक के पात्रों एवं दृश्यों से पूर्ण परिचित हो जायँ। (२) कक्षा में ही छात्रों द्वारा पाठ को अभिनीत किया जाय। इसमें छात्र वेशभूषा पर ध्यान नहीं देंगे, केवल पात्रानुसार अभिनय हो जायगा। न तो कोई रंगमंच होगा, न ही विचित्र वेशभूषा धारण की जायगी।

पहली अभिनय-विधि व्यावहारिक नहीं समझ पड़ती। इसमें अत्यधिक समय, धन एवं शक्ति व्यय होगी। दूसरी अभिनय-विधि उपयुक्त है और यथासम्भव इसका प्रयोग करना चाहिए।

(३) **व्याख्या-विधि**—नाटक-शिक्षण की तीसरी विधि है, व्याख्या-विधि। इस विधि में उपयुक्त प्रश्नों द्वारा अध्यापक पात्रों के चरित्र तथा पाठगत भावों का विश्लेषण करता है। कठिन स्थलों का स्पष्टीकरण अध्यापक स्वयं कर देता है। यह विधि बिल्कुल गद्य-शिक्षण की भाँति हो जाती है।

उपर्युक्त तीनों विधियाँ नाटक को पढ़ाने के लिए अकेले ही उपयुक्त नहीं हो सकतीं। नाटक, गद्य तथा पद्य—दोनों के बीच की विधा है, अतः दोनों के तत्त्वों का सम्मिश्रण आवश्यक है। नाटक को यदि गद्य के ढङ्ग पर ही पढ़ा दिया गया, तो वह नीरस हो जायगा और छात्र संवाद शैली से अपरिचित रह जायेंगे।

अतः नाटक की पाठ-योजना की रूपरेखा एवं उसको पढ़ाने में जिन सोपानों का प्रयोग होना चाहिए, उन्हें आगे दिया जा रहा है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. सामान्य प्रारम्भिक बातें
२. सामान्य उद्देश्य
३. विशिष्ट उद्देश्य
४. सहायक सामग्री
५. पूर्व-ज्ञान
६. **प्रस्तावना**—प्रस्तावना में पूर्व-ज्ञान पर आधारित प्रश्न होंगे। किन्तु प्रस्तावना केवल प्रश्नोत्तर द्वारा उचित नहीं रहेगी। नाटककार का संक्षिप्त परिचय देकर पाठ-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातों का संक्षेप में उल्लेख करके पाठ को प्रारम्भ करना ठीक रहेगा। आवश्यकतानुसार उद्देश्य-कथन भी कर दिया जायगा।
७. **विषयोपस्थापन**—
   (क) **पाठ्य-सामग्री**—सम्पूर्ण पाठ एक ही अन्विति में होना चाहिए।
   (ख) **शिक्षक द्वारा आदर्श पाठ**—शिक्षक द्वारा सम्पूर्ण पाठ का उचित भाव-भंगिमा के साथ सस्वर पाठ। आंगिक अभिनय न हो। केवल स्वर का उतार-चढ़ाव रहे।
   (ग) छात्रों द्वारा पात्रों के भाव के अनुसार अनुकरण वाचन। एक छात्र एक ही पात्र की विषय-वस्तु का वाचन करे।
   (घ) आवश्यकतानुसार बोध-परीक्षा के प्रश्न। नाटक में बोध-प्रश्न अनिवार्य नहीं हैं। इन्हें वैकल्पिक समझना चाहिए।
८. **संक्षिप्त व्याख्या**
   (क) समास-विग्रह तथा सन्धि-विच्छेद
   (ख) कठिन पदों का अर्थ
   (ग) भाव-विश्लेषण तथा चरित्र-चित्रण सम्बन्धी प्रश्न
   (घ) शिक्षक द्वारा स्पष्टीकरण।
९. **पाठ्याभिनय**—छात्रों द्वारा पूरे पाठ का वाचिक अभिनय होगा। अध्यापक निर्देश देता रहेगा। एक छात्र ही पात्र का अभिनय करेगा। अभिनय आंगिक नहीं होगा।

नोट—नाटक या संवाद-पाठ में गृह-कार्य की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी यदि शिक्षक चाहें, तो चरित्र-चित्रण सम्बन्धी प्रश्न दे सकते हैं।

नाटक की पाठ-योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम................	**दिनांक**..........
अध्यापक का नाम................	**कक्षा**—८, **वर्ग**—स
विषय—संस्कृत-नाटक	**अवधि**—४० मिनट
शीर्षक—स्वामिभक्ता पन्ना धात्री	**कालांश**—तृतीय

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामान्य उद्देश्य— १. छात्रों को उचित आरोह-अवरोह तथा उचित भावभंगिमा के साथ संवाद करने का ज्ञान देना।

२. छात्रों को अभिनय की कला का ज्ञान कराना।

३. विविध परिस्थितियों के अनुकूल मानवीय व्यवहार से छात्रों को परिचित करना।

४. मानव-प्रकृति एवं मानव-चरित्र से उन्हें परिचित होने का अवसर प्रदान कराना।

५. छात्रों के भाषा-ज्ञान की वृद्धि करना।

६. छात्रों को चिंतन, प्रश्नोत्तर, वार्त्तालाप, भाषण, कथनोपकथन आदि अवसरों पर प्रभावोत्पादक ढंग से अपने भावों को व्यक्त करने की कला का ज्ञान देना।

विशिष्ट उद्देश्य— १. छात्रों को पन्ना धात्री के चरित्र से अवगत कराते हुए साहस, शूरता और स्वामिभक्ति के भावों से ओत-प्रोत करना।

२. उन्हें देश-भक्ति के लिए आत्मोत्सर्ग करने की प्रेरणा देना।

३. उन्हें क्रोध और करुणा के प्रसंगों में संवाद करने का ढंग बताना।

सहायक सामग्री— चेतक पर आरूढ़ महाराणा प्रताप का एक चित्र एवं अन्य कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्व-ज्ञान— छात्र भारतीय इतिहास के ख्यातनामा देश-भक्तों और स्वामिभक्तों की कथाओं से परिचित हैं।

प्रस्तावना— अध्यापक महाराणा प्रताप और चेतक का चित्र दिखाते हुए उनकी कथा सुनायेगा—

"मुगल-सम्राट अकबर के अधिकार से मेवाड़ को छुड़ाने की आजीवन चेष्टा करने वाले वीर महाराणा प्रताप से आप सभी परिचित हैं। मुट्ठी-भर सैनिकों के सहारे सपरिवार भूखे रह-रह कर, महीनों बीहड़ वनों की खाक छानते हुए इस शूरवीर ने मुगल सेना के साथ युद्ध किया, किन्तु अपना स्वाभिमानी मस्तक कभी नहीं झुकाया। इसी वीर का स्वामिभक्त घोड़ा था चेतक, जिसने रणभूमि में भाले और तलवारों से सैकड़ों घाव पाकर भी मरते दम तक महाराणा का साथ दिया। अपने स्वामी के लिए प्राण-त्याग करने के कारण ही पशु होते हुए भी मनुष्यों की भाँति, उसका स्मारक हम सबका पूजा-स्थान है। वास्तव में ऐसे स्वामिभक्त वंदनीय होते हैं।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रश्न— १. तुम किसी स्वामिभक्त मनुष्य का नाम बताओ।
२. किसी स्वामिभक्त नारी का नाम बताओ।

उद्देश्य-कथन— ऐसी ही एक स्वामिभक्त नारी हुई थी, राजस्थान के प्रसिद्ध मारवाड़ प्रदेश में। नाम था—पन्ना धाय। वह महाराज विक्रम की सेविका और उनके पुत्र उदयसिंह का लालन-पालन करने वाली धाय थी। उसी राज-परिवार के एक राज्य-लोलुप मनुष्य बनवीर ने महाराज विक्रम को कैद में डालकर, राज्य पर अकस्मात् अधिकार कर लिया। एक दिन वह कारागार में विक्रम की हत्या कर उदयसिंह को मारने के लिए भी महलों में आया। किन्तु पन्ना धाय ने अपनी स्वामिभक्ति तथा युक्ति से स्वामिपुत्र उदयसिंह की किस प्रकार रक्षा की, यही घटना आज हम 'स्वामिभक्त पन्ना धात्री' नाटक में पढ़ेंगे।

विषयोपस्थापन— सम्पूर्ण पाठ एक ही अन्विति में पढ़ाया जायगा।

स्वामिभक्ता पन्ना धात्री

[उदयसिंहः स्वपिति। सहसा राजकीयः महत्तरः रामलः प्रविशति]

रामलः—हन्त ! सर्वनाशः संजातः। बनवीर हतकः कारागारे महाराज विक्रमं हत्वा उदयमपि हन्तुं इत एवं आगच्छति।

पन्ना—रामलः ! किमद्यजातम् ? कथं प्रलपसि ?

रामलः—अम्ब ! सत्यं वदामि। त्वर्यताम्, त्वर्यताम्, कुमारस्य रक्षोपायः क्रियताम्।

पन्ना—यदि सत्यं तर्हि उदयं दुर्गान् बहिर्नयस्व।

रामलः—अम्ब ! त्वया बिना कुमारः कथं जीविष्यति ? बने तस्य रक्षां कः करिष्यति ? कुमारं प्रदृष्ट्वा बनवीरः त्वां हनिष्यति।

पन्ना—सर्वं निर्णीतं मय। तं वञ्चयिष्यामि। उदयस्य स्थाने कमपि शाययिष्यामि।

रामलः—कम् ? मातः स्पष्टं वद।

पन्ना—अरे, एवं चन्दनम् प्रिय चन्दनम्।

रामलः—अहो, धन्यासि देवि, या स्वपुत्रं स्वामिपुत्रस्य रक्षाय मृत्युमुखे निक्षिपसि।

पन्ना—अलम् अलम्। समयः अत्येति। उदयं शीघ्र बहिः नय। अहम् आगच्छामि।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[पन्ना वंशपात्रात् उच्छिष्टाः पत्रावलीः निःसार्य सावधानतया उदयं तत्र शाययति । उच्छिष्ट-पत्रैः तमाच्छादयति । रामलः उदयं नीत्वा बहिर्गच्छति । सा उदयस्य स्थाने चन्दनं शायपति । तं परिकुम्ब्य वस्त्रेण आच्छादयति सहसैव रक्तरंजितं खड्गं गृहीत्वा बनवीरः प्रविशति ।]

बनवीरः—पन्ने ! निर्दिश, उदयः कुत्र अस्ति ?

पन्ना—बलवीर त्वमुदयस्य संरक्षकः असि । किमिदम् आचरसि ?

बनवीरः— मा विलम्बं कुरु । शत्रु वधः महत्पुण्यम् ।

पन्ना—रे शठ ! किं प्रलपसि ? अहं तत्र कार्ये विघ्नं करिष्यामि ।

[बलवीरात् कृपाणं ग्रहीतुमिच्छति]

बनवीरः—(भर्त्सयन्) पन्ने ! दूरम् अपसर । अन्यथा त्वामपि मारयिष्यामि । (पर्यङ्कं दृष्ट्वा) किस अयमेव उदयः ?

[बनवीरः—कृपाणम् उत्तोलयति]

पन्ना—तिष्ठ रे निष्ठ नराधम ! परलोकात् विभीहि ।

बनवीरः—नहि नहि, शत्रु कण्टकाः अवश्य दूरी कर्तव्याः । अयमेव परमो धर्मः ।

[पन्ना त पृष्ठतः गृहणाति । बनवीरः पन्नायाः बन्धनात् आत्मानं उन्मोच्य चन्दनस्य वधं करोति ।]

पन्ना—राक्षस !

[भूमौ अचेतन निपतति । बनवीरः अट्टाहासं कुर्वन् गच्छति]

आदर्श पाठ— शिक्षक द्वारा सम्पूर्ण पाठ का उचित आरोह-अवरोह युक्त स्वर एवं समुचित भाव-भंगिमा के साथ वाचन किया जायगा ।

अनुकरण पाठ— कतिपय छात्रों द्वारा पृथक्-पृथक् पात्र की विषय-वस्तु का पाठ किया जायगा ।

बोध-परीक्षा-प्रश्न—
१. पन्ना किसका लालन-पालन करती थी ?
२. उदय के स्थान पर उसने किसका बलिदान कर दिया ?
३. बनवीर उदय की हत्या क्यों करना चाहता था ?

काठिन्य-निवारण या व्याख्या— अध्यापक निम्न पदों के अर्थ पूछेगा तथा व्याख्या करेगा ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

	पद	अर्थ	प्रणाली
१.	इत एव	इधर ही	संकेत द्वारा एवं अर्थ कथन द्वारा
२.	किमद्यजातम्	क्या हो गया आज	संधि विच्छेद द्वारा—किम्+अद्यजातम्
३.	प्रलपसि	व्यर्थ की बातें कर रहे हो (बक-बक कर रहे हो)	व्युत्पत्ति द्वारा—प्र+लप्+सि (प्रकर्षेण लपसि-लप् लप् करोसि)
४.	त्वर्यताम्	शीघ्रता कीजिए	पर्याय-कथन द्वारा—शीघ्रतां कुरु
५.	रक्षोपायः	रक्षा का उपाय	संधि-विच्छेद द्वारा—रक्षा+उपायः
६.	अदृष्ट्वा	न देखकर	समास-विग्रह एवं व्युत्पत्ति द्वारा - नञ समास, क्त्वा प्रत्यय
७.	निर्णीतम्	निश्चय कर लिया	पर्याय-कथन द्वारा—'निश्चितम्'
८.	वञ्चयिष्यामि	धोखा दूँगी	,, ,, ,, प्रतारयिष्यामि
९.	शाययिष्यामि	सुला दूँगी	,, ,, ,, शयनं कारयिष्यामि
१०.	निक्षिपसि	डालती हो	अर्थ-कथन द्वारा
११.	अत्येति	बीत रहा है	संधि-विच्छेद एवं व्युत्पत्ति द्वारा
१२.	निर्दिश	बताओ	अर्थ-कथन द्वारा
१३.	किमिदमाचरसि	यह क्या कर रहे हो	संधि-विच्छेद द्वारा—किम्+इदम्+आचरसि
१४.	अपसर	दूर हट	अर्थ-कथन या पर्याय-कथन द्वारा
१५.	विभीहि	डर (भयभीत हो)	अर्थ-कथन द्वारा

भाव-विश्लेषण एवं चरित्र-चित्रण सम्बन्धी प्रश्न—

१. रामल कौन था ?
२. उसने पन्ना को क्या सूचना दी ?
३. रामल ने किस विषय में शीघ्रता करने के लिए कहा ?
४. पन्ना ने रामल से कुमार को कहाँ ले जाने के लिए कहा ?
५. कुमार को ले जाने पर, बनवीर द्वारा क्या कर डालने की शंका रामल को हुई ?
६. पन्ना ने क्या युक्ति सोच ली थी ?
७. वह उदय के स्थान पर किसको सुलायेगी ?
८. पन्ना की युक्ति को सुनकर रामल ने उसके प्रति क्या शब्द कहे ?
९. पन्ना का हृदय अपने इस निर्णय के प्रति कैसा था ?
१०. पन्ना ने रामल के हाथों उदय को किस प्रकार बाहर भेजा ?
११. बनवीर किस रूप में पन्ना के समीप आया ?
१२. उसने पन्ना से क्या कहा ?
१३. पन्ना ने बनवीर को क्या समझाया ?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१४. जब पन्ना ने बनवीर से कृपाण लेनी चाही, तो बनवीर ने क्या कहा ?
१५. यहाँ पर सोते हुए बालक को बनवीर ने कौन समझा ?
१६. उदय समझकर बनवीर ने किसकी हत्या कर दी ?
१७. बनवीर के चले जाने पर पन्ना की क्या दशा हुई ?
१८. पन्ना ने उदय की रक्षा का उपाय सोचने में कितनी देर लगायी ?
१९. इसमें पन्ना का क्या गुण प्रकट होता है ?
२०. उसने बनवीर से, पलंग पर अपने पुत्र के होने की बात क्यों नहीं कही ?
२१. उदय को बचाकर अपने पुत्र की हत्या करने से पन्ना में किस गुण का पता लगता है ?
२२. बनवीर कैसे स्वभाव का व्यक्ति था ?
२३. पन्ना और बनवीर में तुम्हें किस व्यक्ति के प्रति श्रद्धा होती है ?
२४. किसके प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होता है ?

पाठ्याभिनय— नाटक के पात्रानुसार वाचिक-अभिनयपूर्वक छात्रों द्वारा सम्पूर्ण नाटक का पाठ किया जायगा।

गृह-कार्य— पन्ना और बनवीर के चरित्र की विशेषताएँ बताते हुए दोनों के चरित्र की रचना कीजिए।

नाटक की पाठ-योजना

[द्वितीय]

विद्यालय का नाम………… **दिनांक**…………
अध्यापक का नाम ………… **कक्षा ९, वर्ग—ब**
कालांश—षष्ठ **अवधि—४० मिनट**
विषय—संस्कृत-नाटक **उपविषय—'रावण-विभीषण-संवाद'**

सामान्य उद्देश्य—
१. छात्रों को उचित आरोह-अवरोह के साथ संवाद करने का ज्ञान कराना।
२. उन्हें अभिनय की कला का ज्ञान कराना।
३. उन्हें इस तथ्य की जानकारी देना कि मानव-व्यवहार में परिस्थिति-भेद से परिवर्तन हो जाता है।
४. मानव-प्रकृति एवं मानव-चरित्र से छात्रों का परिचय कराना।
५. छात्रों को प्रभावोत्पादक ढङ्ग से भावाभिव्यक्ति की क्षमता प्रदान करना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को भास कृत 'अभिषेक' नाटक के एक दृश्य से परिचित कराते हुए उन्हें रावण तथा विभीषण के स्वभावों का ज्ञान कराना।

सहायक सामग्री— सामान्य कक्षोपयोगी उपकरण।

पूर्व-ज्ञान— छात्र मातृभाषा में अनेक नाटक पढ़ चुके हैं तथा वे नाटकों के अभिनय का अवलोकन भी कर चुके हैं।

प्रस्तावना— संस्कृत में अनेक नाटक लिखे गये हैं। कालिदास एवं भवभूति की भाँति भास भी एक उच्च कोटि के नाटककार हैं। भास ने कुल तेरह नाटक एवं नाटिकाएँ लिखी हैं। नाटिका का आधुनिक रूप एकांकी नाटक है। आज का पाठ भास कृत 'अभिषेक' नाटक से लिया गया है।

प्रस्तुत पाठ में उस समय का वर्णन है जबकि विभीषण की स्पष्टवादिता से क्रुद्ध होकर रावण उसे अपने दरबार से निकाल देता है।

विषयोपस्थापन— सम्पूर्ण पाठ एक ही अन्विति में रखा जायगा।

विभीषणः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अस्ति काचिद्विवक्षा महाराजस्य हितमन्तरेण।

रावणः —उच्यताम्। तच्छ्रेयो वयमपि श्रोतारः।

विभीषणः—सर्वथा राक्षसकुलस्य विनाशोऽभ्यागत इति मन्ये।

रावणः —केन कारणेन ?

विभीषणः—महाराजस्य विप्रत्तिपत्त्या।

रावणः —का मे विप्रतिपत्तिः ?

विभीषणः—ननु सीतापहरणमेव।

रावणः —सीतापहरणमेव को दोषः स्यात् ?

विभीषणः—अधर्मश्च।

रावणः —'च' शब्देन सावशेषमिव ते वचनम्। तद्ब्रूहि।

विभीषणः—तदेव ननु।

रावणः —विभीषण। किं गृहसे ! मम खलु प्राणैः शापितः स्य यदि सत्यं न ब्रूयाः।

विभीषणः—अभयं दातुमर्हति महाराजः।

रावणः —दत्तमभयम् उच्चताम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभीषणः—बलवद्विग्रहश्च ।
रावणः —(सरोषम्) कोऽत्र ?
ममानवेक्ष्य सौभ्रात्रं शत्रुपक्षमुपस्थितम् ।
नोत्सहे पुरतो द्रष्टुं तस्मादेषं निरस्यताम् ।।
विभीषणः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । अहमेव यास्यामि ।

आदर्श वाचन— शिक्षक द्वारा सम्पूर्ण पाठ का उचित भाव-भंगिमा के साथ आदर्श वाचन किया जायगा ।

अनुकरण वाचन— अध्यापक दो छात्रों को खड़ा करके एक को रावण तथा दूसरे को विभीषण की कही हुई बातों को पढ़ने को कहेगा । वाद में दो अन्य छात्र खड़े कर दिये जायेंगे ।

संक्षिप्त व्याख्या

समास-विग्रह—

राक्षसकुलस्य	=राक्षसानां कुलम् इति राक्षसकुलम्तस्य
सीतापहरणम्	=सीताया अपहरणम् सीतापहरणम्
सावशेषम्	=अवशेषेण सहितम् सावशेषम्
शत्रुपक्षम्	=शत्रोः पक्षः इति शत्रु पक्षः तम् ।

सन्धि-विच्छेद—

काचिद्विवक्षा	=काचित् + विवक्षा
हितमन्तरेण	=हितम् + अन्तरेण
तच्छ्रेयो	=तत + श्रेयः
वयमपि	=वयम् + अपि
विनाशोऽभ्यागत	=विनाशः + अभ्यागत
सीतापहरणमेव	=सीता + अपहरणम् + एव
सावशेषमिव	=स + अवशेषम् + इव
दातुमर्हति	=दातुम् + अर्हति
दत्तमभयम्	=दत्तम् + अभयम्
बलवद्विग्रहश्च	=बलवद् + विग्रहः + च
कोऽत्र	=कः + अत्र
ममानवेक्ष्य	=मम + अनवेक्ष्य
नोत्सहे	=न + उत्सहे
तस्मादेष	=तस्मात् + एषः

पदार्थ—

पद	अर्थ
प्रसीदतु	प्रसन्न होइए
कदाचित्	कोई
विवक्षा	वोलने की इच्छा, अभिप्राय
श्रेयः	कल्याणकारी
विप्रतिपत्त्या	संघर्ष, विरोध

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सावशेषमिव	कुछ और बाकी है
गूहसे	छिपाते हो
प्राणैः शापितः	प्राणों की सौगन्ध है
वलवद्विग्रहश्च	और बलवान् से झगड़ा
अनवेक्ष्य	न देखकर
उत्सहे	उत्साह नहीं करता हूँ
पुरतो	सामने
निरस्यताम्	निकाल दो

भाव-विश्लेषणात्मक प्रश्न—

१. विभीषण किस बात को कहने का इच्छुक था ?

२. रावण ने इस पर क्या कहा ?

३. विभीषण के मतानुसार राक्षस कुल का विनाश किस कारण से आ गया था ?

४. रावण की क्या विप्रत्तिपत्ति थी ?

५. सीतापहरण से क्या हानि थी ?

६. विभीषण ने 'और' शब्द कहकर वाक्य अपूर्ण क्यों छोड़ दिया ?

अध्यापक-कथन— इस स्थल पर नाटककार का उक्ति-वैचित्र्य दर्शनीय है। विभीषण 'अधर्मश्च' कहकर रुक जाता है। आगे वह 'राम' से लड़ाई लेने को कहना चाहता है, किन्तु रुक जाता है। रावण के आग्रह करने पर वह बताता है कि बलवान से विग्रह होगा।

७. रावण ने विभीषण से आगे की बात कहने का किस प्रकार आग्रह किया ?

८. विभीषण ने कब आगे कहा ?

९. 'बलवद्विग्रहश्च' सुनकर रावण क्यों क्रुद्ध हुआ ?

१०. उसने क्रोध में क्या कहा ?

११. इस संवाद में विभीषका का स्वभाव किस प्रकार दर्शाया गया है ?

१२. इस पाठ को पढ़ने से रावण के विषय में तुम क्या धारणा बनाते हो ?

१३. रावण में वे कौन-से अवगुण थे, जिससे उसका चरित्र गिर गया था ?

१४. इस पाठ से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ्याभिनय— कतिपय छात्र क्रम से पात्रानुसार पाठ का वाचिक अभिनय करेंगे (आंगिक नहीं)।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१३ | कथा-शिक्षण

कथा का महत्त्व

शिक्षा-शास्त्र की दृष्टि से कथा साधन और साध्य—दोनों है। साध्य के रूप में यह हमारी जिज्ञासा को शान्त करती है, मनोरंजन प्रदान करती है और सौन्दर्य की अनुभूति कराती है। साहित्य की यह एक विशेष विधा है और इससे बालक की कल्पना-शक्ति एवं तर्क-शक्ति का विकास होता है। इस दृष्टि से कथा का उद्देश्य कथा सुनना है, न कि और कुछ। जिस प्रकार गद्य, काव्य, नाटक, व्याकरण आदि स्वतन्त्र विधाएँ हैं, उसी प्रकार कथा भी एक स्वतन्त्र विधा है।

साधन के रूप में कथा-कथन एक प्रविधि है और इसका उपयोग अन्य विषयों के प्रतिपादन में किया जाता है। इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र आदि विषयों के अध्यापन में कथा-कथन का विशेष महत्त्व है। कभी-कभी भाषा के अध्यापन में गद्य-खण्ड अथवा पद्यांश को पढ़ाते समय किसी अन्तःकथा का स्पष्टीकरण किया जाता है। इस अवसर पर भी कथा एक साधन के रूप में हमारे समक्ष आती है।

प्रस्तुत अध्याय में हम कथा को साध्य के रूप में ही लेंगे। कथा का यह रूप बड़ा महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत साहित्य में कथा का विशेष महत्त्व है। सम्भवतः इसी भाषा में सर्वप्रथम कथा का विकास हुआ। संस्कृत भाषा जहाँ अपने काव्य, गद्य-काव्य, व्याकरण तथा दर्शन के ग्रन्थों के लिए प्रसिद्ध है, वहीं पर वह अपने कथा-साहित्य के लिए भी विख्यात है।

संस्कृत का कथा-साहित्य

संस्कृत की कथाएँ बड़ी ही कौतूहलपूर्ण हैं। पंचतन्त्र तथा हितोपदेश तो नीति सम्बन्धी उच्च-कोटि के कथा-ग्रन्थ हैं। संस्कृत-कथाओं का मुख्य उद्देश्य धर्मार्थ-काम'

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की प्राप्ति है। इन कथाओं में नीति-रीति के उपदेश भरे पड़े हैं। शिष्टाचार, सदाचार, राजनीति तथा लोकनीति सम्वन्धी विषयों का प्रतिपादन कथाओं के माध्यम से किया गया है। पंचतन्त्र संस्कृत का अत्यन्त प्राचीन कथा ग्रन्थ है। महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति के पुत्र अयोग्य, विवेकशून्य एवं शास्त्रों को न जानने वाले थे। उन पुत्रों को नीतिमान् बनाने के लिए विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण गुरु रखे गये। आचार्य विष्णुशर्मा के नीतियुक्त उपदेशों से राजकुमार विवेकयुक्त एवं ज्ञानी हो गये। विष्णु शर्मा ने उन राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए कथाओं का आश्रय लिया। छह मास के अन्दर ही इन सुन्दर कथाओं के माध्यम से राजकुमार नीतिवान् बन गये। पंचतन्त्र में यही उपदेश कथाओं के रूप में हमें मिलते हैं। तन्त्र का अर्थ है, क्रमबद्ध परिपाटी। कथाओं की पाँच क्रमबद्ध परिपाटियों को पंचतन्त्र कहा गया है। ये पाँचों तन्त्र हैं—मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्ध-प्रणाश और अपरीक्षित कारक। पंचतन्त्र की रचना ३०० ई० के आस-पास हुई। पंचतन्त्र की कथाएँ भारत में सनातन रूप से प्रचलित थीं। विष्णु शर्मा ने इन्हें तन्त्रात्मक रूप ही दिया होगा, न कि इनकी रचना की होगी। डा० हर्टेल के अनुसार, 'पंचतन्त्र' की रचना २०० ईसवी-पूर्व में कश्मीर में हुई थी। फारस के सम्राट् अनुशेर खाँ के आदेश पर शाही हकीम बुर्जोए ने पंचतन्त्र का पहलवी भाषा में अनुवाद किया। पहलवी से सीरिया की भाषा में इसका अनुवाद ५७० ई० में, अरवी में ७६० ई० में, पुनः सीरिया की भाषा में १००० ई० में, यूनानी भाषा में ११८० ई० में, फारसी में ११३० व १४९४ ई० में, स्पैनिश में १२५१ ई० में, हिब्रू में १२५० ई० में, लैटिन में १२७० ई० में, जरमन भाषा में १४८१ ई० में, इतालवी में १५५२ ई० में एवं अंग्रेजी में १५७० ई० में हुआ। ११०० ई० में किसी जैन कवि ने पंचतन्त्र की कथाओं को तन्त्राख्यायिका नाम से नया रूप दिया। ११९९ ई० में पूर्णभद्र से पंचाख्यानक नाम से पंचतन्त्र को नया रूप दिया, जिसमें २१ कथाएँ जुड़ी मिलती हैं। पंचतन्त्र के दक्षिण में भी नये-नये रूप मिले। तमिलनाडु में प्राप्त पंचतन्त्र में ९० कथाएँ हैं। अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से भी पंचतन्त्र को घटा-बढ़ा कर अनूदित किया गया है। बंगाल में पंचतन्त्र कुछ नये रूप में हितोपदेश के नाम से विख्यात हुआ, जिसका विकास दसवीं शताब्दी ई० से लेकर चौदहवीं शताब्दी ई० तक के मध्य माना जाता है। नारायण इसके सम्पादक के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'हितोपदेश' की रचना का भी इसी से मिलता-जुलता उद्देश्य था। पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन बड़े योग्य शासक थे, किन्तु उनके पुत्र बड़े अयोग्य थे। उन अयोग्य पुत्रों को 'हितोपदेश' से ही नीतिमान् बनाया गया था।

उपर्युक्त नीति-कथाओं के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में अन्य कथाएँ भी उपलब्ध हैं। 'वृहत्कथा' एक उच्च कोटि का ग्रन्थ है जिसमें लोक-कथाओं का गुणाढ्य द्वारा संग्रह किया गया है। वृहत्कथा की कथाएँ सम्भवतः बहुत पहले से ही भारतीय जनता में प्रचलित थीं, जिन्हें सूत तथा कथाविद सुनाते रहे होंगे। इन कथाओं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का सर्वप्रथम संग्रह गुणाढ्य द्वारा पहली ईसवी शताब्दी में हुआ। 'वृहत्कथा श्लोक संग्रह', 'वृहत्कथा मञ्जरी' और 'कथासरित्सागर' वृहत्कथा के ही संस्कृत रूपान्तर हैं। इनमें पहला बुद्धस्वामी द्वारा, दूसरा क्षेमेन्द्र द्वारा और तीसरा सोमदेव द्वारा रचित ग्रन्थ हैं। बुद्धस्वामी कृत वृहत्कथा श्लोक संग्रह आठवीं शताब्दी की रचना है और वृहत्कथा मंजरी व कथासरित्सागर ग्यारहवीं शताब्दी की रचनाएँ। 'वेताल पंचविंशतिका' भी अच्छा कथा-ग्रन्थ है। विक्रमांक को बेताल ने जो कथाएँ सुनायीं, वे आज भी कुतूहल उत्पन्न कर देती हैं। बेताल पंचविंशतिका की रचना कब हुई तथा इसके आदि सम्पादक कौन थे, इन सबके विषय में इतिहास में कोई जानकारी नहीं है। इसको सबसे पहले कश्मीर में रचित कथासरित्सागर की प्रति में पाया गया है, अतः अनुमान है कि कश्मीर में ही इन कथाओं का सर्वप्रथम विकास हुआ होगा। इसके अतिरिक्त 'शुक सप्तति' नामक कथा-ग्रन्थ में ७० कथाओं का संग्रह है। ये कथाएँ एक तोते के मुख से मदनसेन की पत्नी को सच्चरित्र बनाये रखने के लिये कही गई हैं। शुक सप्तति के विस्तृत रूप के सम्पादक चिन्तामणि भट्ट व संक्षिप्त रूप के सम्पादक सम्भवतः कोई श्वेताम्बर जैन लेखक हैं। 'सिंहासन द्वात्रिंशतिका' में बत्तीस सुन्दर कथाएँ हैं। हिन्दी में भी इन कथाओं का 'सिंहासन-बत्तीसी' नाम से अनुवाद मिलता है और 'बेताल-पच्चीसी' नाम से 'बेताल पंचविंशतिका' की कथाएँ भी हिन्दी में मिलती हैं। 'भोज-प्रबन्ध' तथा 'भट्टक द्वात्रिंशतिका' भी उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं जिसमें महाराज भोज की दानवीरता की अनेक कथाएँ हैं। बौद्ध-साहित्य में भी कथाओं की रचना हुई है।

संस्कृत कथाओं की विशेषताएँ

संस्कृत कथाएँ बड़ी गतिशील एवं प्रवाहयुक्त होती हैं। उनसे हमारी जिज्ञासा की तृप्ति होती है और वे उपदेशों से भी युक्त होती हैं। संस्कृत कथाओं की मुख्य विशेषताओं को दर्शाया जा रहा है—

(१) **कथानक**—संस्कृत की कथाओं का कथानक क्रमबद्ध होता है। उसमें प्रारम्भ, मध्य एवं अन्त के सोपानों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कथा को आद्योपान्त पढ़ने की प्रबल इच्छा होती है। इसमें दैनिक जीवनपयोगी परिस्थितियों का सुन्दर एवं सजीव वर्णन प्राप्त होता है। 'नीति-कथाओं' में उपदेश भी मिलते हैं। 'लोक-कथाओं' का लक्ष्य उपदेश न होकर मनोरंजन ही समझ पड़ता है। कथा-वस्तु की दृष्टि से संस्कृत की कथाएँ उच्च कोटि की हैं।

(२) **चरित्र-चित्रण**—पात्रों की दृष्टि से संस्कृत की कथाएँ दो प्रकार की हैं—(१) वे कथाएँ जिनमें पशु-पक्षी पात्र हैं, (२) वे कथाएँ जिनमें मनुष्य पात्र हैं। पहले प्रकार की कथाएँ नीति-कथाएँ हैं और दूसरे प्रकार की कथाएँ लोक-कथाएँ हैं। पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में अधिकतर पशु-पक्षी ही पात्र हैं। यह मनोवैज्ञानिक कारण से किया गया है। यदि किसी को कोई उपदेश देना हो, तो प्रत्यक्ष उपदेश देना ठीक नहीं होता। शराबी से यदि यह कहा जाय कि तुम बड़ अवगुणी हो और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शराब को शीघ्र त्याग दो, तो हमारी इस बात का प्रभाव उस पर नहीं पड़ेगा । किन्तु यदि इस बात को किसी अन्य पर विशेष रूप से पशु-पक्षी पर ढाल कर कहा जाय तो कुछ प्रभाव पड़ सकता है । यह बात सरलता से समझायी जा सकती है कि एक वानर नशे में था, अतः वह नष्ट हो गया । हितोपदेश एवं पंचतन्त्र में पशु-पक्षी पात्रों का संभवतः इसीलिए सहारा लिया गया है । यदि किसी शास्त्रज्ञाता पंडित का स्वभाव हमें अच्छा न लगे, तो उसे प्रत्यक्ष रूप से यह कहना कि दुष्ट व्यक्ति अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ता, शिष्टाचार के विरुद्ध हो जाता है; किन्तु व्याघ्र ने जिस शास्त्र-ज्ञान का परिचय देने के पश्चात् भी स्वभाववश दुष्टता की, वह उपेक्षणीय नहीं हो सकती और उसी प्रसंग में "न धर्म शास्त्रं पठतीति कारणं न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः, स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः" खूब उपयुक्त बैठता है । लोक-कथाओं के पात्र मानव ही हैं, क्योंकि इनका उद्देश्य उपदेश देना नहीं है ।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से संस्कृत की कथाएँ बहुत ऊँची ठहरती हैं । थोड़े से पात्र होते हैं और उनसे उपदेश की ध्वनि निकलती है । छात्रों को आदर्श चरित्र का निर्माण करने में सहायता मिलती है ।

(३) **कथनोपकथन**—कथनोपकथन की दृष्टि से संस्कृत की कथाओं का अपना विशेष महत्त्व है । वार्त्तालाप प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावशाली है । भाषा सरल एवं सुबोध है । भाषा का गठन पात्र के अनुकूल है । आदर्श पात्र आदर्श भाषा का ही प्रयोग करता है । कथनोपकथन का प्रभाव छात्रों पर अवश्य पड़ना चाहिए । इस दृष्टि से संस्कृत की कथाएँ अपना बहुत प्रभाव डालती हैं ।

(४) **भाषा एवं शैली**—संस्कृत की कथाओं की भाषा सरल, सुबोध एवं प्रवाहयुक्त है । शैली में विविधता है । संस्कृत की कथाएँ पूर्णरूपेण गद्य में नहीं हैं । उनमें बीच-बीच में पद्य का पुट मिलता है । प्रायः हम अपने वार्त्तालाप को प्रभावशाली बनाने के लिए आप्त-वाक्य का आश्रय लेते हैं और कवियों का उद्धरण देते हैं । अपनी बात के समर्थन में पद्यात्मक उक्ति देना वार्त्तालाप को प्रभावशाली बनाने का सर्वोत्तम साधन है । इसीलिए संस्कृत की कथाओं में बीच-बीच में पद्य मिलता है । इन पद्यों में कभी-कभी किसी कथा की ओर भी संकेत कर दिया जाता है और सुन्दर उपदेश दे दिया जाता है । उदाहरण के लिए, नीचे का श्लोक देखिए—

अज्ञात कुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।
मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृद्धो जरद्गवः ।।

ये पद्य आचरण के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं ।

(५) **प्रस्तुति**—संस्कृत की कथाओं का शीर्षक भी आकर्षक होता है । पंच-तन्त्र एवं हितोपदेश में तो नई कथा को प्रस्तुत करने में बड़ी चतुरता दिखायी गयी है । एक कथा के अन्त में दूसरी कथा के उद्देश्य को बता दिया जाता है और पाठक नई कथा पढ़ने के लिए लालायित हो उठता है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(६) उद्देश्य--संस्कृत की प्रत्येक कथा का, विशेष रूप से पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की कथा का, एक सन्देश होता है। प्रत्येक कथा शिक्षाप्रद है और छात्र की कल्पना एवं तर्क-शक्ति का विकास करने में समर्थ है। चरित्र के लिए ये कथाएँ सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करती हैं और बालक के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। ये कथाएँ जीवन का सुन्दर विश्लेषण करती हैं, अतः इनसे हमें जीवन की यथार्थता का परिचय भी मिलता है। लोक-कथाएँ स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करती हैं।

विभिन्न स्तरों पर कथा का चुनाव

कथा का चुनाव बालक के मानसिक विकास के आधार पर होना चाहिए। बालकों की रुचि सबसे अधिक अपने वातावरण में होती है। वे वर्तमान जीवन में रुचि लेते हैं। उनके चारों ओर का वातावरण उनके आकर्षण का विषय होता है। गाँव का बालक आस-पास के तालावों, कुओं, बाग-बगीचों, खेत-खलिहानों आदि में रुचि लेता है। अतः अपने निजी जीवन से सम्बन्धित कथा को वह पसन्द करता है। बालक स्वभाव से ही कथा सुनने में रुचि लेता है। बहुत छोटे बालकों का संसार सीमित होता है। वे अपने चारों ओर के वातावरण से भी अपरिचित होते हैं। अतः वे प्रायः आत्मकेन्द्रित हो जाते हैं और अपने ही विषय में रुचि लेते हैं। यदि उन्हीं के विषय में कोई कथा कही जाय तो वे आनन्दित हो उठते हैं। जब बालक कुछ बड़े होते हैं तो वे अपने से अन्य बालकों के विषय में भी कथा सुनना चाहते हैं।

पशु-पक्षी बालक के लिए अनेक प्रकार के कुतूहल उत्पन्न करते हैं। स्वभाव से ही बालक चूहों, खरगोशों, गीदड़ों, शेरों, बाघों, चीतों आदि में रुचि लेता रहता है और उनके विषय में कुछ सुनना चाहता है। संस्कृत की कथाएँ बालक के कुतूहल को शान्त करती हैं। भाषा की सरलता व कठिनता को ध्यान में रखते हुए बहुत-सी कथाएँ बालकों को सुनायी जा सकती हैं। बेताल पंचविंशतिका और सिंहासन द्वात्रिंशतिका की कथाएँ बालक बहुत पसन्द करते हैं। इन कथाओं को सरल भाषा में लिखकर प्रारम्भिक स्तर के छात्रों को सुनाया जा सकता है।

मध्य-स्तर पर पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की कथाएँ बहुत उपयुक्त होती हैं। इस स्तर पर बालक किशोरावस्था के काल्पनिक लोक में विचरण करते रहते हैं। उनके मन में अनेक प्रकार के सन्देह घर कर जाते हैं। वे बड़े-बड़े काम करना चाहते हैं। काम-वासना इस काल में विशेष रूप से जाग्रत होती है। किशोरों के चरित्र का विकास करने के लिए इस समय उनके समक्ष उपयुक्त आदर्श प्रस्तुत करना आवश्यक है। पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की कथाएँ बालकों को जीवनोपयोगी शिक्षा देती हैं और उनके चरित्र का निर्माण करने में सहायता देती हैं। कथाएँ उच्च कक्षाओं में भी आ सकती हैं।

कथाओं का चुनाव करते समय हमें अग्रलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए--

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. कथा की भाषा छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल हो।
२. प्रारम्भिक स्तर पर काल्पनिक कथाओं का विशेष महत्त्व है।
३. किशोरावस्था में बालकों को चरित्र-निर्माण की कथाओं की आवश्यकता है, अतः मध्य स्तर पर चरित्र को ऊँचा उठाने वाली कथा हो।
४. कथानक ऐसा हो कि बालक रुचि ले।
५. घटना-प्रधान कथा बालक अधिक पसन्द करते हैं।
६. प्रारम्भिक स्तर पर भयावह कथा सुनाते समय सावधानी बरती जाय।
७. कथा में वार्त्तालाप की पर्याप्त मात्रा हो।
८. उच्च स्तर पर महापुरुषों की कथाएँ, अन्वेषण सम्बन्धी कथाएँ, सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक कथाएँ चुनी जा सकती हैं।
९. प्रत्येक स्तर की कथा का कुछ न कुछ स्पष्ट प्रयोजन हो।

कथा-शिक्षण

छात्रों की कल्पना-शक्ति का विकास करना, उनकी तर्क-शक्ति को विकसित करना तथा उनके चरित्र-निर्माण में योग देना कथा-शिक्षण के प्रमुख उद्देश्य हैं। कथा-शिक्षण का यह भी उद्देश्य है, कि बालक हानिकारक मनोरंजन की ओर न जाकर स्वस्थ मनोरंजन की ओर उन्मुख हों।

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति तभी होती है, जब कथा को उपयुक्त रीति से पढ़ाया जाय। कथा वस्तुतः पढ़ायी नहीं जाती, सुनायी जाती है। कथा सुनाना स्वयं में एक कला है और योग्य शिक्षक इस कला का विकास करता रहता है। कथा सुनाने में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :—

१. कथा कण्ठस्थ करके न सुनायी जाय। कण्ठस्थ करके सुनाने में स्वाभाविकता नहीं रहती है। कुछ विशेष वाक्यों को अवश्य याद कर लेना चाहिए तथा कथा का क्रम भली प्रकार याद करके उसे अपने शब्दों में ही सुनाना चाहिए। बीच-बीच में जो पद्य आये हों, उन्हें तो रटकर ही सुनाना चाहिए।
२. कथा सुनाने से पहले अध्यापक को तैयारी कर लेनी चाहिए, जिससे बीच-बीच में वह भूले नहीं। आवश्यकता पड़ने पर किसी कागज पर कुछ महत्त्वपूर्ण बातें लिखी भी जा सकती हैं। एक-दो बार पुस्तक में भी सरसरी दृष्टि से देखा जा सकता है, किन्तु पुस्तक एवं कागज का आश्रय यथासम्भव न लिया जाय तो अधिक अच्छा है।
३. अध्यापक को स्वयं कथा सुनाने में रुचि लेनी चाहिए, नहीं तो वह भली प्रकार कथा सुना ही नहीं पायेगा। उसे कथा में विश्वास उत्पन्न करते जाना चाहिए।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. अध्यापक को कथा के सन्दर्भ, उसकी पृष्ठभूमि, तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों, परम्पराओं एवं मान्यताओं का भी ज्ञान होना आवश्यक है।

५. कक्षा में कथा संकोच एवं हिचकिचाहट से न कही जाय। संशयात्मक ढंग से कही हुई कथा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

६. प्रत्येक कथा की कुछ विशेषता होती है। अध्यापक को इस विशेषता से परिचित होना चाहिए और छात्रों के समक्ष उस विशेषता का उल्लेख होना चाहिए।

७. कथा सुनाने में अध्यापक का दृष्टिकोण कहानी की विचारधारा के अनुसार चलना चाहिए। अध्यापक की तन्मयता, उत्सुकता तथा उत्साह कथा-कथन का प्राण है।

८. अध्यापक के कथन की भाषा सरल एवं सुबोध हो। शैली आकर्षक होनी चाहिए।

९. यदि आवश्यकता हो तो अध्यापक को यथावसर वाचिक अभिनय की ओर ध्यान देना चाहिए। उसकी मुखाकृति एवं अंग-संचालन का भी महत्त्व है।

१०. कथा सुनाते समय स्वर का उतार-चढ़ाव भी महत्त्वपूर्ण है।

कथा सुनाने मात्र से ही कथा-शिक्षण समाप्त नहीं होता। अध्यापक के कथा सुनाने की कुशलता की सफलता इस बात में है कि छात्र स्वयं उस कथा को कहने में समर्थ हो जाय। अतः कथा कहलाना भी कथा-शिक्षण का आवश्यक अंग है। बालक कथा कह सकें, इसके लिए अध्यापक को निम्नलिखित प्रविधियों का आश्रय लेना चाहिए—

१. कथा की पुनरावृत्ति।
२. घटनाओं की रूपरेखा बनवाना।
३. कुछ छात्रों द्वारा वार्त्तालाप की आवृत्ति।
४. कथा का पात्रानुसार सस्वर पाठ।
५. अभिनय।
६. प्रश्नोत्तर द्वारा कथा का विकास।
७. चित्र द्वारा कथा का विकास।

प्रारम्भिक स्तर पर छात्रों से चित्र द्वारा या प्रश्नोत्तर द्वारा कथा कहलाना अच्छा रहेगा। मध्य स्तर पर कथा में आये शब्दों, सूक्तियों आदि को याद करने की प्रेरणा देना और बाद में छात्रों को अपने शब्दों में कथा कहने की प्रेरणा देना आवश्यक है। उच्च कक्षाओं में अपूर्ण कथा को पूरा करने का आदेश दिया जा सकता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कथा सुनाना तथा छात्रों से कथा सुनना कथा-शिक्षण के आवश्यक अंग हैं। इसके अतिरिक्त कथा लिखवाने का अभ्यास भी कराया जा सकता है। कथा लिखवाने से यह तात्पर्य है कि छात्र कथा को अपनी पुस्तिकाओं में लिखें जिससे लिखने का अभ्यास बढ़े। लिखने से सुनी हुई कथा स्थायी बन जाती है। प्रारम्भिक स्तर पर कुछ अव्यवस्थित वाक्य दे दिये जायँ और उन्हें क्रम में रखने को कहा जा सकता है। मध्य स्तर पर कथा का सार भी लिखवाया जा सकता है। उच्च कक्षाओं में मौलिक कथा-रचना की प्रेरणा दी जा सकती है।

शिक्षण-क्रम

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम पाठ-योजना बनाते समय कथा-शिक्षण के क्रम इस प्रकार लिख सकते हैं—

१. **सामान्य प्रारम्भिक बातें**
२. **सामान्य उद्देश्य**
३. **मुख्य उद्देश्य**
४. **सहायक सामग्री (चित्र)**
५. **पूर्व-ज्ञान**
६. **प्रस्तावना**
   (क) प्रश्नों द्वारा प्रस्तुत कथा की आवश्यकता बताना।
   (ख) उद्देश्य-कथन।
७. **उपस्थापन—**
   (क) सरल हिन्दी में कथा सुनाना।
   (ख) महत्त्वपूर्ण शब्दों एवं सूक्तियों तथा पदों के अर्थ श्यामपट पर सिखाना।
   (ग) मौन वाचन।
८. **बोध-प्रश्न**—सरल संस्कृत में कुछ प्रश्न किये जायँ, जिनसे यह पता लग जाय कि छात्र कथा को कितना समझ गये हैं।
९. **शिक्षक द्वारा प्रवचन**—कक्षा के महत्त्वपूर्ण अंश की रक्षा करते हुए अध्यापक द्वारा कथा का सार संस्कृत में कहना।
१०. **पुनरावृत्ति**—सरल संस्कृत के प्रश्नों एवं उत्तरों द्वारा कथा की पुनरावृत्ति।
११. **गृह-कार्य**—छात्रों को सम्पूर्ण कथा घर से लिखकर लाने को कहा जाय। घर पर कथा संस्कृत में ही लिखी जाय और शिक्षक उसका संशोधन अवश्य करे।

टिप्पणी—(१) यदि कथा अधिक लम्बी हो, तो कथा को दो-तीन भागों में विभक्त कर लिया जाय और शिक्षक एक अन्विति को प्रस्तुत करे, बोध-प्रश्न तथा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसका सार स्पष्ट करे। इस सार को हिन्दी या संस्कृत में श्यामपट पर लिख दिया जाय। इस प्रकार सब अन्वितियों को समाप्त कर लेने के पश्चात् पुनरावृत्ति हो। वैसे यदि कथा एक ही अन्विति में पढ़ायी जाय, तो उत्तम है।

(२) यदि कथा में अभिनय के गुण हों, तो दूसरे दिन उस कथा का दो-एक प्रश्नों द्वारा स्मरण कराके दो-तीन छात्रों को पात्रानुसार चुनकर उस कथा का अभिनय कराया जाय।

(३) यदि कथा की भाषा क्लिष्ट है तो कठिन स्थलों की व्याख्या सावधानी से की जाय।

(४) रचना-पाठ में भी कथा के वाक्यों के आधार पर लिखित कार्य कराया जा सकता है। रचना के कालांश में नई कथा का विकास भी किया जा सकता है। रचना-पाठ में कथा का विशेष महत्त्व है।

(५) गद्य पाठ्य-पुस्तक अथवा द्रुत पाठ्य-पुस्तक की कथा को गद्य या द्रुत-पाठ की भाँति न पढ़कर कथा की ही विधि से पढ़ाना चाहिए।

कथा की पाठ-योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम............	**अवधि**—३० मिनट
अध्यापक का नाम............	**कालांश**—चतुर्थ
दिनांक............	**कक्षा**—७, **वर्ग**—'स'
विषय—संस्कृत कथा	**उपविषय**—'व्याघ्रचर्मप्रतिच्छन्नः गर्दभः'

सामान्य उद्देश्य—
१. छात्रों की कल्पना-शक्ति का विकास करना।
२. उनकी तर्क-शक्ति का विकास करना।
३. उन्हें मानव-चरित्र की विशेषताओं से परिचित कराते हुए उनके चरित्र-निर्माण में योग देना।
४. उन्हें संस्कृत के अनूठे कथा-साहित्य से परिचित कराना।
५. छात्रों को स्वस्थ मनोरंजन की ओर प्रवृत्त करना।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को पंचतन्त्र की एक लघु-कथा से परिचित कराते हुए इस बात की जानकारी देना कि कपट का परिणाम अच्छा नहीं होता।

सहायक सामग्री— लपेट श्यामपट पर लिखी हुई कथा।

पूर्व ज्ञान— छात्र हिन्दी की अनेक कथाएँ पढ़ चुके हैं। वे यह भी जानते हैं कि हितोपदेश और पंचतन्त्र में संस्कृत भाषा में बड़ी सुन्दर कथाएँ हैं।

कथा-वस्तु— (यदि कथा पाठ्य-पुस्तक की है तो यहाँ पर कथा-वस्तु लिखने की आवश्यकता नहीं है, अन्यथा लपेट श्यामपट पर कथा लिखकर कक्ष में टाँग देनी चाहिए।)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याघ्रचर्मप्रतिच्छन्नः गर्दभः

कस्मिश्चित् अधिष्ठाने शुद्धपटः नाम रजकः प्रतिवसतिस्म। तस्य एकः गर्दभः अस्ति। सः घासाभावात् अति दुर्बलतां गतः। अथ तेन रजकेन अटव्यां परिभ्रमता मृत-व्याघ्रः दृष्टः। चिन्तितं च-अहो (शोभनम् आपतितम्। अनेन व्याघ्रचर्मणा प्रतिच्छाद्य रासभं रात्रौ यवक्षेत्रेषु उत्स्रक्ष्यामि। व्याघ्रं मत्वा समीपवर्तिनः क्षेत्रपालाः एनं न निष्कासयिष्यन्ति।

तथानुष्ठते रासभः रात्रौ यथेच्छं यवभक्षणं करोति। प्रत्यूषे भूयोऽपि रजकः स्वाश्रयं नयति। एवं गच्छता कालेन स रासभः पीवरतनुः जातः। बन्धनस्थानमपि कृच्छ्रात् नीयते। अथ अन्यस्मिन् अहनि स मदोद्धतः दूरात् रासभशब्दम् अश्रृणोत्। तच्छ्रवणमात्रेण एवं स्वयं तारस्वरेण शब्दयितुम् आरब्धः। अथ ते क्षेत्रपालाः 'रासभः अयं व्याघ्रचर्मप्रतिच्छन्नः' इति ज्ञात्वा लकुट—पाषाण—शरप्रहारैः तं व्यापादितवन्तः।

प्रस्तावना—

१. हिन्दी कथा की तुमने कौन-कौन-सी पुस्तकें पढ़ी हैं? (इसी प्रकार संस्कृत में भी कुछ कथा-ग्रन्थ हैं। पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ऐसे ही ग्रन्थ हैं।)

२. पंचतन्त्र में किस प्रकार की कथाएँ हैं?

३. तुम्हारी समझ में कपट का परिणाम क्या होता है?

उद्देश्य-कथन— आज हम ऐसी कथा पढ़ेंगे जिसमें कपटी को दण्डित किया गया है।

कथा-प्रवचन— अध्यापक सरल हिन्दी में छात्रों को प्रस्तुत कथा का सारांश बतायेगा।

काठिन्य-निवारण—

पद	अर्थ	स्पष्टीकरण
अधिष्ठाने	स्थान पर	सप्तमी का एकवचन
घासाभावात्	घास के अभाव से	घास+अभावात्
रजकेन	धोबी के द्वारा	तृतीया का एकवचन
अटव्याम्	वन में	अटवी छोटे वन को कहते हैं।
परिभ्रमता	घूमते हुए	परि+भ्रम+शतृ+तृतीया का एकवचन
आपतितम्	हुआ	आ+पत्+क्त (इट् का आगम)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतिच्छाद्य	ढककर	ल्यप् प्रत्ययान्त
रासभं	गधा	पर्याय—गर्दभं, खरं, वैशाख-नन्दनं
उत्स्रक्ष्यामि	छोड़ दूँगा	भविष्यकालिक क्रिया
प्रत्यूषे	सुबह, तड़के	प्रति+ऊषे
पीवरतनुः	मोटा शरीर	पीवरः तनुः यस्य सः
कृच्छ्रात्	कष्ट से	कष्टात्
तारस्वरेण	जोर से	उच्च-स्वरेण
व्यापादितवन्तः	मार डाला	भूतकालिक क्रिया

मौन पाठ—छात्र अपनी पाठ्य-पुस्तक में दी हुई कथा का मौन पाठ करेंगे ?

बोध-प्रश्न—१. सः गर्दभः कस्मात् कारणात् आदि दुर्बलता गतः ?
२. तेन रजकेन केन वस्तुना रासभं आच्छादितः ?
३. रासभः कदा यवभक्षणं करोतिस्म ?
४. प्रत्यूषे रजकः किं करोति ?
५. गच्छता कालेन गर्दभः कीदृशोऽभवत् ?
६. गर्दभः कदा तारस्वरेण शब्दयितुमारब्धः ?
७. तदा क्षेत्रपालाः किमकुर्वन् ?

सार-कथन—अध्यापक कथा के महत्त्वपूर्ण अंश की रक्षा करते हुए कथा का सार संस्कृत में इस प्रकार कहेगा—

एकस्य रजकस्य एकः दुर्बलः गर्दभः आसीत् । तेन रजकेन सः व्याघ्रचर्मणां आच्छादितः । तदा सः यवक्षेत्रेषु यव-भक्षणां करोतिस्म । कालान्तरे जनाः एतद् रहस्यं ज्ञात्वा तं लगुडेन व्यापादितवन्तः ।

पुनरावृत्ति अथवा कथा-रचना प्रश्न—
१. दुर्बलं गर्दभं दृष्टवा रजकेन किं कृतम् ।
२. तद् रहस्यं जनैः कथं ज्ञातम् ?
३. स गर्दभः केन प्रकारेण दण्डितः ?
४. रजकस्य कपटस्य कः परिणामः अभवत् ?

गृह-कार्य— श्यामपट पर लिखे हुए शब्दों के आधार पर संस्कृत में इस कथा का सारांश लिखो ।

शब्द— रजकः, रासभः, व्याघ्रचर्मणा, प्रतिच्छाद्य, यवक्षेत्रेष, व्याघ्रंमत्वा, क्षेत्र-पाला, रासभशब्दम्, लगुडैः, व्यापादितवन्तः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कथा की पाठ-योजना

[द्वितीय]

विद्यालय का नाम............ **दिनांक**............

अध्यापक का नाम............ **कक्षा**—११, **वर्ग**—य

विषय—संस्कृत (कथा) **अवधि**—४० मिनट

शीर्षक—स्वावलम्बी गोपालः **कालांश**—द्वितीय

सामान्य उद्देश्य—१. छात्रों की कल्पना-शक्ति को विकसित कर, उसे सही दिशा प्रदान करना।

२. उनमें तर्क करने की क्षमता की वृद्धि करना।

३. आचार-व्यवहार का ज्ञान प्रदान करते हुए छात्रों को उनके चरित्र-निर्माण में योग देना।

४. शुभ-अशुभ को सम्मुख रखकर छात्रों की अनुकरणात्मक प्रवृत्ति को शुभ की ओर गमन करने की प्रेरणा देना।

५. अध्ययन की गणना के मध्य स्वस्थ मनोरंजन को उत्पन्न करते हुए विषय को सुबोध बनाना।

६. कथा-रचना की प्रवृत्ति को परिष्कृत करना।

विशिष्ट उद्देश्य—१. छात्रों में स्वावलम्बन की भावना के प्रति आदर उत्पन्न करना तथा उन्हें स्वावलम्बी होने की प्रेरणा देना।

२. आलस्य के प्रति घृणा और कर्म के प्रति सजगता के भाव भरना।

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्व ज्ञान—सामान्यतः छात्र स्वावलम्बन शब्द का अर्थ जानते हैं और उसके महत्त्व से भी परिचित हैं।

कथा-वस्तु

स्वावलम्बी गोपालः

अस्ति दक्षिणापथे काञ्ची नाम नगरी। तत्र विद्यालये माधवः गोपालः च इति द्वौ छात्रौ पठतःस्म। तयोः माधवः धनिकः गोपालः तु निर्धनः। माधवः रमणीये सौधे निवसति प्रतिदिनं वाहनेन विद्यालयं आगच्छति च। गोपालः तु उपनगरे पित्रा सह कुटीरे निवसति। तस्य माता बाल्ये एव दिवं गता। अतः गृह-कार्यम् अपि तेनैव कर्त्तव्यं भवति।

अथ एकदा गोपालः माधवेन निमन्त्रितः तद्गृहं ययौ। तत्र उद्यानस्य एक-भागे द्वावपि सह-पाठिनौ संभाषमाणौ आस्ताम्। माधवेन उक्तम्—"सखे! तव ईदृशीं अवस्थां दृष्ट्वा भृशम् अनुतप्ये। गृहस्य सर्वं कर्मं त्वमेव करोषि। पुनः पदातिः एक क्रोश द्वय-परिमितं अध्वानं चलित्वा विद्यालयं आगच्छसि। मम गृहे बहवः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भृत्याः सन्ति । यद् आज्ञापयामि तत् सर्वं ते कुर्वन्ति ।" गोपालः उवाच—"मित्र ! यथा त्वं जानासि तथा न भृत्यहीनः अहम् । ममापि अष्टौ भृत्याः सन्ति ते मद्वचनम् अनुवर्तन्ते ।"

तद् आकर्ण्य विस्मितः माधवः प्रोवाच—"भद्र ! कथ एतत् ।"

गोपालः आह—"सत्यम् एवं उक्तं मया । एते मम अष्टौ भृत्यः—द्वौ पादौ, द्वौ हस्तौ, द्वे नेत्रे, द्वे श्रोत्रे च । एते सदैव मदुक्तम् अनुतिष्ठन्ति । यदा अहं विद्यालयं गन्तु इच्छामि तदा पादौ आज्ञापयामि—मां विद्यालयं नयतम् इति । तौ च सत्वरम् एव मां तत्र नयतः ।"

तयो तत् संभाषणं तत्र आगतेन माधवस्य पिता श्रुतम् श्रुत्वा भृशं चमत्कृतः । अब्रवीत् च—साधु वत्स ! साधु ईदृशाः एव भृत्याः प्रशस्याः । इति अभिधाय परं प्रीतः सन् पुनः तम् अभिनन्दितवान् ।

प्रस्तावना—

१. महात्मा गांधी क्या-क्या वस्त्र पहनते थे ?
२. वह कहाँ का बना हुआ कपड़ा होता था ?
३. उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं को प्रयोग करने पर क्यों बल दिया ?
४. अपने आप पर ही अवलम्बित रहने वाले को क्या कहा जाता है ?

उद्देश्य-कथन— स्वावलम्बन जीवन की उन्नति का मूल है । स्वावलम्बी मनुष्यों को अधिक परिश्रम अवश्य करना पड़ता है, किन्तु वह परिश्रम उनमें सन्तोष और आनन्द का भाव उत्पन्न करता है तथा समाज में उनकी प्रशंसा करता है । आज हम तुम्हारे जैसे ही विद्यालय में पढ़ने वाले एक छात्र—'स्वावलम्बी गोपाल'—की कथा का यहाँ अध्ययन करेंगे ।

विषयोपस्थापन— कथा को निम्नलिखित एक ही अन्विति में पढ़ाया जायगा—
(१) अस्ति..........अभिनन्दितवान् ।

कथा-प्रवचन— **शिक्षक द्वारा—**

छात्रो ! दक्षिण भारत में एक नगरी थी; नाम था उसका काञ्ची । वहाँ एक विद्यालय में तुम्हारे जैसे ही बहुत-से छात्र अध्ययन करते थे । एक कक्षा में पढ़ने वाले माधव और गोपाल नाम के छात्रों में घनिष्ठ मित्रता थी । पर उन दोनों में माधव एक धनी बाप का लड़का था और गोपाल एक गरीब का लाड़ला । माधव एक सुन्दर महल में रहता था और प्रतिदिन सवारी में बैठकर ही विद्यालय में पढ़ने आता था । बेचारा गोपाल नगरी से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूर, एक छोटी-सी कुटिया में रहता था। उसके साथ उसका पिता था। दुर्भाग्य से उसकी माँ मर चुकी थी। वह पैदल ही विद्यालय को जाता था।

एक दिन माधव ने गोपाल को अपने घर आने का निमन्त्रण दिया। गोपाल के पहुँचने पर माधव उसे अपने बाग में ले गया। दोनों ने प्रेमपूर्वक बातें कीं। माधव बोला—"गोपाल! मैं तुम्हारी गरीबी से बहुत दुःखी हूँ। देखो! मेरा कितना सुन्दर घर है। कितने सेवक मेरी आज्ञा का पालन करते हैं। जिसे कहूँ, वही काम के लिए दौड़ पड़ता है। किन्तु तुम्हारे यहाँ ऐसा नहीं है।"

गोपाल बोला—"नहीं मित्र! ऐसी बात नहीं है। चिंता मत करो। मेरे पास भी आठ-आठ नौकर हैं जो सदा मेरी आज्ञा के अनुसार ही काम करते हैं।"

माधव ने आश्चर्यचकित होकर कहा—"भाई, तुम्हारे वे नौकर कौन-कौन-से हैं?"

गोपाल बोला—"गिनो, दो हाथ, दो पैर, दो आँखें और दो कान। कुल हुए आठ। ये ही मेरे नौकर हैं। इनको मैं जो आज्ञा देता हूँ, वही ये करते हैं। जैसे, मैं पैरों से कहता हूँ कि मुझे विद्यालय को ले चलो, तो वे मुझे शीघ्र वहाँ ले जाते हैं।"

माधव इस बात से बहुत चकित था। उसके पिता ने भी पीछे से गोपाल की यह बात सुन ली थी। सामने आकर उन्होंने गोपाल की पीठ ठोंकी और उसके द्वारा बताई गई स्वावलम्बी बनने की बात की बहुत प्रशंसा की।

काठिन्य निवारण—अध्यापक निम्नलिखित पदों का अर्थ स्पष्ट करेगा—

पद	अर्थ	प्रणाली
१. रमणीये सौधे	सुन्दर महल में	पर्याय-कथन द्वारा—सुन्दरे प्रासादे
२. दिवंगता	स्वर्ग को चली गयी	पर्याय कथन द्वारा—स्वर्गं गता
३. सम्भाषमाणौ आस्ताम्	बात करने लगे	अर्थ बताकर
४. भृशम् अनुतप्ये	बहुत दुःखी हूँ	अर्थ बताकर
५. अध्वानम्	मार्ग को	पर्याय-कथन द्वारा—मार्गम्
६. मदुक्तम्	मेरे कहे हुए को	सन्धि-विच्छेद द्वारा—मत्+उक्तम्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७. सत्वरम्	शीघ्र	शीघ्रम् पर्याय-कथन द्वारा—या मन्दम् के विलोम द्वारा
८. चमत्कृतः	चकित हुआ	पर्याय-कथन द्वारा—चकितोऽभवत्
९. प्रशस्याः	प्रशंसनीय हैं	वाक्य-प्रयोग या पर्याय-कथन द्वारा
१०. अभिनन्दितवान्	प्रशंसा की	अर्थ-कथन द्वारा

मौन-पाठ— छात्रों द्वारा सम्पूर्ण कथा का।

बोध-प्रश्न—
१. दक्षिणापथे का नाम्नी नगरी आसीत् ?
२. तत्र विद्यालये कौ द्वौ छात्रौ अपठताम् ?
३. तयोः कः धनिक आसीत् ?
४. तयोः कः निर्धनः आसीत् ?
५. माधवः कुत्र न्यवसत् ?
६. गोपालः कुत्र अवसत् ?
७. गोपालस्य गृहे कति जनाः आसन् ?
८. तस्य माता क्व गता ?
९. सः गोपालः एकदा केन निमन्त्रितः ?
१०. तदा कुत्र स्थित्वा तौ वार्त्तालापं अकुरुताम् ?
११. माधवस्य गृहे के कर्म कुर्वन्ति स्म ?
१२. गोपालस्य गृहे के न आसन् ?
१३. अतः माधवेन सहानुभूति प्रदर्शयन् गोपालाय किं कथितम् ?
१४. गोपालेनापि निज गृहे कति भृत्याः प्रोक्ता ?
१५. के नाम तस्य गोपालस्य भृत्याः आसन् ?
१६. ते कस्योक्तं अनुतिष्ठन्ति स्म ?
१७. कौ गोपालं, विद्यालयं प्रति सत्वरं नयतः स्म ?
१८. यदा तौ वार्त्ता अकुरुताम तदा कः तत्र समायातः ?
१९. माधवस्य पिता तच्छ्रुत्वा कथं अन्वभवत् ?
२०. सः प्रीतः सन गोपालं किं अब्रवीत् ?
२१. गोपाले कः गुण आसीत्, यस्मात् तस्य प्रशंसा कृता ?
२२. भूयम्, अस्मात् गोपालात् कां शिक्षां लभध्वे ?

अध्यापक-कथन—"दक्षिणापथे एका नगरी आसीत्। तस्याः नाम काञ्ची इति। तत्र एकस्मिन् विद्यालये द्वौ मित्र-छात्रौ अपठताम्। तयोः एकः माधवः आसीत् यः धनिकः आसीत्। अन्यश्च गोपालः यः निर्धनः आसीत्। एकदा माधवेन गोपालः निजगृह निमन्त्रितः। सः तं उद्यानं अनयत्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उद्याने माधवेन गोपालस्य निर्धनता प्रति अनुतापः प्रकटितः। कथितम् यत् मम गृहे तु भृत्याः सन्ति किन्तु नैते सन्ति तव गृहे। किन्तु गोपालः शीघ्रं अवदत्—"नहि मित्र? मम गृहेऽपि अष्टौ भृत्याः सन्ति। ते च द्वौ पादौ, द्वौ हस्तौ, द्वे नेत्रे, द्वे श्रोत्रे च। ते सदैव मदुक्तं अनुतिष्ठन्ति।" अनेन कथनेन गोपालः स्वावलम्बनस्य महत्त्वं प्रकटितवान्। तस्य वार्त्तां श्रुत्वा माधवस्य पिता प्रसन्नोऽभवत् तम् अभिनन्दितवान् च।"

पुनरावृत्ति अथवा कथा-रचना-प्रश्न

प्रश्न	उत्तर (श्यामपट्ट पर लेख्य)
१. काञ्ची नाम्नी नगरी कुत्र आसीत्?	१. दक्षिणापथे कोञ्ची नाम नगरी आसीत्।
२. तत्र विद्यालये कौ द्वौ मित्र-छात्रौ पठतः स्म?	२. तत्र विद्यालये माधवः गोपालश्चेति द्वौ मित्र-छात्रौ पठतः स्म।
३. तयोः कः धनिकः कश्च निर्धनः?	३. तयोः माधवः धनिकः गोपालश्च निर्धनः आसीत्।
४. केन कः निमन्त्रितः?	४. माधवेन, एकदा गोपालः निमंत्रित।
५, माधवेन गोपालं प्रति किमुक्तम्?	५. माधवेन गोपालस्य निर्धनतां प्रति चिन्ता प्रकटिता निजगृह अनेके भृत्याः प्रोक्ताः।
६. गोपालः किं प्रोवाच?	६. गोपालः प्रोवाच-"सन्ति मम गृहेऽपि अष्टौ भृत्याः।"
७. के नाम गोपालस्य भृत्याः आसन्?	७. तेच—द्वौ पादौ, द्वौ हस्तौ, द्वे नेत्रे, द्वे श्रोत्रे च।
८. गोपालस्य वार्त्तां श्रुत्वा कः तम् अभिनन्दितवान्?	८. गोपालस्य वार्त्तां श्रुत्वा माधवस्य पिता तम् अभिनन्दितवान्।
९. किमर्थं गोपालः अभिनन्दितः?	९. यतः भृत्य-चर्चया गोपालेन स्वावलम्बनस्य महत्त्वं प्रकटितम्।

छात्रों से श्यामपट पर लिखे हुए शब्दों के आधार पर कथा लिखने के लिए कहा जायगा। अध्यापक कक्षा-भ्रमण करता हुआ पर्यवेक्षण करेगा।

गृह-कार्य — संस्कृत-भाषायां, संक्षेपेण कस्यचित् अन्यस्य स्वावलम्बिनः जीवनः कथां लिखत।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१४ द्रुत पाठ-शिक्षण

द्रुत पाठ का स्वरूप

अध्ययन दो प्रकार का हो सकता है—(१) गहन अध्ययन, और (२) विस्तृत अध्ययन। गहन अध्ययन में हमारा यह उद्देश्य होता है कि छात्र प्रस्तुत सामग्री का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करें और वे उस सामग्री की बारीकियों से परिचित हो जायँ। संस्कृत भाषा की शिक्षा में भी कुछ पाठ गहन अध्ययन के होते हैं। किन्तु विस्तृत अध्ययन में हम प्रस्तुत सामग्री का शीघ्रता से अध्ययन करके तद्‌गत भावों को ग्रहण करने की योग्यता उत्पन्न करना चाहते हैं। गहन अध्ययन में शिक्षक का यह प्रयत्न होता है कि छात्र ज्ञान-वृद्धि करें और अभिव्यक्ति में कुशलता अर्जित करें। गहन अध्ययन के पाठों द्वारा छात्रों को भाषा का ज्ञान कराया जाता है, पाठ्य-पुस्तकों पर बल दिया जाता है और यह चेष्टा की जाती है कि छात्र पुस्तक के प्रत्येक शब्द का अर्थ समझें, व्याख्या करें, विश्लेषण करें, समानार्थक शब्द जानें, सूक्तियों का आशय समझें और पाठ्य-सामग्री का भाव ग्रहण करने के पश्चात् सारांश अथवा भावार्थ लिखने की क्षमता प्राप्त करें। अतः हम यह कह सकते हैं कि गहन अध्ययन के पाठों का उद्देश्य छात्रों के शब्द-भण्डार की वृद्धि करना और उन्हें शुद्ध भाषा लिखने की प्रेरणा देना है। इसके लिए नये शब्दों, नयी सूक्तियों एवं लोकोक्तियों का उन्हें पूर्व ज्ञान देना होता है।

गहन अध्ययन के पाठों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है। ये पाठ गद्यात्मक या पद्यात्मक शैली में हो सकते हैं। गद्यात्मक सूक्ष्म पाठों का अध्ययन, जिस विधि से होना चाहिए, उसका परिचय हम 'गद्य-शिक्षण' के अध्ययन में प्राप्त कर चुके हैं। कविता के शिक्षण के समय विचार करते समय हम पद्यात्मक गहन पाठ को देख चुके हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपर्युक्त गहन पाठों के उद्देश्य से विस्तृत अध्ययन का उद्देश्य भिन्न होता है। यहाँ अध्ययन की गहनता मुख्य न होकर विस्तार मुख्य होता है। इस प्रकार के अध्ययन द्वारा हम अधिकाधिक सामग्री को समझकर साहित्य से अधिकाधिक सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं। विस्तृत अध्ययन द्रुत पाठों द्वारा होता है। द्रुत पाठों की पुस्तकें भी भिन्न होती है। द्रुत पाठ की शिक्षण-विधि सूक्ष्म पाठ की शिक्षण-विधि से कुछ भिन्न होती है।

द्रुत पाठ पद्य अथवा गद्य किसी में हो सकते हैं। इसके अध्ययन में इस बात पर बल दिया जाता है कि छात्र शीघ्र पढ़कर समझ सकें। संस्कृत भाषा एवं साहित्य को प्रायः अत्यधिक कठिन समझा जाता है। किन्तु यथार्थ रूप में ऐसी बात नहीं है। संस्कृत-साहित्य में भी सरल एवं कठिन दोनों प्रकार की सामग्रियाँ हैं। आवश्यकता है, उन सामग्रियों को परखने की एवं उपयुक्त सामग्री चयन करने की। वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थल ऐसे हैं, जो बहुत ही सरल भाषा में हैं। भर्तृहरिशतक के कुछ श्लोक भी बड़े सरल हैं। हाँ, गद्यात्मक साहित्य में बाण, सुबन्धु एवं दण्डी का साहित्य द्रुत पाठ के योग्य नहीं होगा। किन्तु संस्कृत के विद्वान् एवं संस्कृताध्यापक इस दिशा में कार्य कर सकते है। सरल एवं सुबोध भाषा में गद्य की रचना वे स्वयं कर सकते हैं। 'शिवराज-विजय' के भी कुछ अंश लिये जा सकते हैं। वर्तमान काल में निकलने वाली संस्कृत पत्रिकाओं अथवा संस्कृत पत्रों से उपयुक्त अंश भी छाँटे जा सकते हैं।

विभिन्न स्तरों पर द्रुत पाठ

संस्कृत भाषा छात्रों की मातृभाषा नहीं है, वह उनकी द्वितीय भाषा के रूप में ही उनके समक्ष आती है। इसका अध्यापन छठी कक्षा से ही प्रारम्भ होता है। छठी, सातवीं तथा आठवीं कक्षाएँ संस्कृत की दृष्टि से प्रारम्भिक कक्षाएँ ही हैं। इस स्तर पर उनकी मातृभाषा में 'हमारे पूर्वज' जैसी द्रुत पाठ की पुस्तकें भी पढ़ायी जाती हैं। किन्तु संस्कृत का ज्ञान इस स्तर पर बालकों को बहुत कम रहता है, अतः प्रारम्भिक स्तर पर संस्कृत में द्रुत पाठ नहीं प्रारम्भ हो सकता है। इस स्तर पर तो छात्रों को भाषा का ज्ञान प्राप्त करना होता है, अतः गहन पाठ की ही प्रायः व्यवस्था की जाती है और छात्र संस्कृत के गद्यात्मक या पद्यात्मक अंशों को सूक्ष्म दृष्टि से पढ़ते हैं।

मध्य स्तर पर आकर छात्र संस्कृत भाषा से कुछ परिचय प्राप्त कर लेते हैं। इस स्तर पर सरल संस्कृत श्लोकों को देखकर वे चौंकते नहीं। उन्हें सामान्य रूप से पढ़कर उनका अर्थ समझने की वे चेष्टा करते हैं। संस्कृत गद्य को भी वे कुछ-कुछ समझ लेते हैं। अतः इस स्तर पर 'द्रुत पाठ' का अध्यापन किया जाना चाहिए।

उच्च स्तर पर छात्रों को, 'द्रुत पाठ' अवश्य पढ़ाया जाना चाहिए और पृथक् रूप से द्रुत पाठ की पुस्तकें उनके पाठ्यक्रम में स्वीकृत होनी चाहिए। इसमें कोई

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्देह नहीं है कि भविष्य में छात्रों को अत्यधिक द्रुत पाठ पर भी रहना पड़ता है, क्योंकि विद्यालयीय जीवन बिताने के पश्चात् उनके पास इतना समय नहीं बचता कि वे संस्कृत-साहित्य का गहन अध्ययन कर सकें। यदि द्रुत पाठ में उनकी रुचि जाग्रत कर दी जायगी तो भविष्य में वे उसी प्रकार से संस्कृत-साहित्य का अवलोकन करते रहेंगे।

द्रुत पाठ का महत्त्व

द्रुत पाठ का संस्कृत भाषा-शिक्षण में इतना अधिक महत्त्व नहीं है जितना कि मातृभाषा-शिक्षण में। संस्कृत में हम गहन अध्ययन द्वारा ही साहित्य के रहस्यों से अवगत होते हैं और काव्य का आनन्द प्राप्त करते हैं। यदि काव्य-साहित्य का गहन अध्ययन न किया जाय तो हम संस्कृत काव्य का रसास्वादन नहीं कर पाते। गहन अध्ययन के द्वारा ही संस्कृत के पण्डित आज भी अपनी प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं और ज्ञान-राशि के चिर संचित भण्डार को सुरक्षित रखे हुए हैं। गहन अध्ययन के पाठ स्मृति में अधिक स्थायी होते हैं और छात्र के जीवन को बहुत प्रभावित करते रहते हैं। दण्डी, सुबन्धु, बाण, कालिदास, भारवि, भवभूति आदि महान् लेखकों एवं कवियों की कृतियों को सरसरी दृष्टि से नहीं पढ़ा जा सकता।

उपर्युक्त विवेचन से यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि संस्कृत भाषा में द्रुत पाठों का कोई स्थान नहीं है। वस्तुतः गहन अध्ययन के पाठ कभी-कभी नीरस हो जाते हैं। उनमें भाषा पर बहुत बल दिया जाता है। शब्दों की व्युत्पत्ति, सन्धि, समास, कारक आदि पर गहन अध्ययन के पाठ में ध्यान देना ही पड़ता है। पाठ्य-सामग्री का भावार्थ, संक्षेपण अथवा अनुवाद सूक्ष्म पाठों में अवश्यम्भावी है। कभी-कभी हमारे समक्ष कुछ ऐसे श्लोक या ऐसे गद्य खण्ड आते हैं जिनका हम अत्यधिक व्याकरण विश्लेषण नहीं करना चाहते। गहन अध्ययन के पाठों की शिक्षण-प्रणाली से उन्हें पढ़ाने पर वे नीरस एवं निर्जीव से लगने लगते हैं और छात्रों का मन तो ऊबता ही है, उनका समय भी नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में 'द्रुत पाठ' का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। सूक्ष्म पाठ में शब्द-कोष पर अत्यधिक बल दिया जाता है और गहन अध्ययन करने पर पाठ में आए हुए शब्द हमारे 'घनिष्ठ मित्र' बन जाते हैं। द्रुत पाठ के अन्तर्गत पाठ्य-सामग्री में प्रयुक्त शब्द हमारे परिचित-से होते हैं और हम उनके परिचय से लाभ उठाते हुए उनके सहयोग से भावों तक पहुँच जाते हैं तथा हमें उन शब्दों का अता-पता पूछने की जरूरत नहीं पड़ती है। द्रुत पाठ में हम शब्दों के व्यावहारिक प्रयोग पर ही दृष्टि रखते हैं।

द्रुत पाठ का उद्देश्य

द्रुत पाठ का उद्देश्य भाषा-शिक्षण न होकर शीघ्र पठन एवं साहित्य से अधिकाधिक परिचय प्राप्त करना है। द्रुत पाठ के अग्रलिखित उद्देश्य हो सकते हैं—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे विषय-वस्तु को समझ सकें।
२. छात्रों को शीघ्र पढ़ने का अभ्यास कराना, जिससे उनमें शीघ्र किन्तु शुद्ध पठन की आदत उत्पन्न हो सके।
३. छात्रों में साहित्य के प्रति रुचि जाग्रत करना।
४. उन्हें अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करने की प्रेरणा देना और स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करना।
५. छात्रों को स्वतन्त्र अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना।

द्रुत पाठ का उद्देश्य शब्द-कोश की वृद्धि करना नहीं है, फिर भी द्रुत पाठों से छात्रों का शब्द-ज्ञान बढ़ता है और वे गहन अध्ययन के पाठों में सीखे हुए नवीन शब्दों के प्रयोग को द्रुत पाठ में प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

शिक्षण-विधि

द्रुत पाठ की शिक्षण-विधि सूक्ष्म पाठ से भिन्न होती है। सूक्ष्म पाठ में शब्द की व्याख्या, कठिन स्थलों का स्पष्टीकरण एवं गूढ़ भावों का विश्लेषण मुख्य होता है। कविता-शिक्षण में भी भावों का विश्लेषण एवं समानार्थक कविताओं पर बल दिया जाता है। सूक्ष्म पाठ का उद्देश्य जहाँ पर साहित्य से परिचय देना है, वहीं पर भाषा की शिक्षा देना भी रहता है। किन्तु द्रुत पाठ में ऐसी बात नहीं है। अतः द्रुत पाठ के शिक्षण में भावों को ग्रहण करना ही मुख्य बात है।

द्रुत पाठ में अध्यापक को आदर्श वाचन करने की आवश्यकता. नहीं है। इसमें समय अधिक नष्ट होगा। ऐसी आशा की जाती है कि द्रुत पाठ की पुस्तकों की सामग्री सरल एवं सुबोध होगी और उनमें उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया होगा जिनसे छात्र गद्य अथवा पद्य पाठों से परिचित हो गये हैं। अतः द्रुत पाठ में आये हुए शब्द उच्चारण की दृष्टि से कठिन नहीं होंगे। अतः उच्चारणाभ्यास की भी जरूरत नहीं है। छात्रों को प्रारम्भ में सस्वर वाचन की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। प्रस्तावना के पश्चात् अध्यापक छात्रों को प्रस्तुत पाठ की सामग्री को मौन रूप से पढ़ने का निर्देश दे दे और उनसे कह दे कि यदि कोई शब्द, वाक्य या वाक्यांश कठिनाई प्रस्तुत कर रहे हैं तो वे उन शब्दों, वाक्यों या वाक्यांशों का अर्थ अध्यापक से पूछ लें। इसके पश्चात् मातृभाषा में कुछ ऐसे प्रश्न किये जायँ जिनसे छात्रों के बोध की सीमा का पता लग जाय। तत्पश्चात् छात्रों को पठित सामग्री का सारांश कुछ संस्कृत वाक्यों में कहने की प्रेरणा दी जाय। उच्च स्तर पर मातृभाषा में प्रश्नोत्तर के सोपान के स्थान पर संस्कृत भाषा में ही प्रश्नोत्तर किया जाय और बाद में संस्कृत भाषा में सारांश कहने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। एक अन्विति का इस प्रकार शिक्षण करने के पश्चात् दूसरी अन्विति ली जाय। अधिक से अधिक तीन अन्वितियों में ही पाठ को विभक्त करना चाहिए और यदि पाठ छोटा हो तो केवल एक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही अन्विति पर्याप्त होगी। सभी अन्वितियों का अध्ययन समाप्त होने के पश्चात् तीन-चार प्रश्नों द्वारा पुनरावृत्ति कर दी जाय। पुनरावृत्ति संस्कृत में ही ठीक रहेगी। यदि एक अन्विति है तो पुनरावृत्ति की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी और बाद में दो-एक छात्रों द्वारा पाठ का सस्वर वाचन करा दिया जाय। सस्वर वाचन के लिए जो छात्र चुने जायँ, वे प्रतिभाशाली छात्र हों और उनकी पठन की गति द्रुत हो।

शिक्षण-क्रम

उपर्युक्त शिक्षण-विधि के आधार पर पाठ-सूत्र की रचना की जानी चाहिए। द्रुत पाठ का शिक्षण क्रम निम्न प्रकार का होगा—

१. **सामान्य प्रारम्भिक बातें**
२. **सामान्य उद्देश्य**
३. **विशिष्ट उद्देश्य**
४. **सहायक सामग्री**
५. **पूर्व-ज्ञान**
६. **प्रस्तावना**—द्रुत पाठ की प्रस्तावना प्रश्नोत्तर द्वारा अथवा पाठ के संक्षिप्त प्रसंग द्वारा हो सकती है। तत्पश्चात् उद्देश्य-कथन कर दिया जायगा।
७. **विषयोपस्थापन**
   (क) छात्रों द्वारा मौन वाचन
   (ख) बोध प्रश्न
   (ग) काठिन्य-निवारण (छात्रों के पूछने पर)
   (घ) संस्कृत में प्रश्नोत्तर अथवा संस्कृत में सारांश कहना। इस सोपान को विचार-विश्लेषण का सोपान भी कह सकते हैं।

   टिप्पणी—उच्च स्तर में 'ख', 'ग', और 'घ' के स्थान पर केवल संस्कृत में प्रश्नोत्तर।
८. **पुनरावृत्ति**—यदि एक से अधिक अन्वितियाँ हों तो, अन्यथा सस्वर वाचन। आवश्यकतानुसार पुनरावृत्ति के पहले भी सस्वर वाचन कराया जा सकता है।
९. **गृह-कार्य**—संस्कृत में किसी प्रश्न का उत्तर लिखना अथवा पठित सामग्री के सारांश को अपने शब्दों में लिखना।

द्रुत पाठ-योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम..............
अध्यापक का नाम..............
कालांश—सप्तम
विषय—संस्कृत द्रुत पाठ

दिनांक..........
कक्षा—९, **वर्ग**—घ
समय—४० मिनट
उपविषय—भोजचरितम्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामान्य उद्देश्य—१. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे विषय-वस्तु को पढ़कर समझ सकें।
२. छात्रों को शीघ्र किन्तु शुद्ध पठन की प्रेरणा देना।
३. छात्रों में साहित्य के प्रति रुचि जाग्रत करना।
४. उन्हें अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करने की प्रेरणा देना और स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करना।
५. छात्रों को स्वतन्त्र अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना।

विशिष्ट उद्देश्य— भोज प्रबन्ध से उद्धृत एक अंश को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्राचीनकालीन धारा नगरी के महाराज भोज की उदारता एवं उनकी गुण-ग्राहकता से उन्हें परिचित कराना।

सहायक सामग्री— कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्व-ज्ञान — छात्र अपनी मातृभाषा की पुस्तक में यह पढ़ चुके हैं कि विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् चलाया है और इनके दरबार में कालिदास महाकवि थे। वे यह भी जानते हैं कि राजा भोज भी इसी प्रकार के उदार राजा थे।

पाठ्य-अंश— (इसे प्रतिदिन पाठ-योजना में लिखने की आवश्यकता नहीं है।)

ततः कदाचित् द्वारपालः प्रणम्य भोजं प्राह—राजन्! द्रविडदेशात् कोऽपि लक्ष्मीधरनामा कविः द्वारम् अध्यास्ते। इति। राजा 'प्रवेश्य' इति प्राह। स च आगत्य तत्र राजानं 'स्वस्ति' इति उक्त्वा तदाज्ञया उपविष्टः प्राह—देव! मया सकुटुम्बेन अत्र निवासाशया समागतम्। इति। ततो राजा मुख्यामात्यं प्राह—अस्मै गृहं दीयताम् इति।

ततः निखिलमपि नगरं विलोक्य कमपि मूर्खममात्यः न अपश्यत् यं निरस्य विदुषे गृहं दीयेत। तत्र सर्वत्र भ्रमन् कस्यचित् कुविन्दस्य गृहं वीक्ष्य कुविन्दं प्राह—कुविन्द! गृहात् निस्सार, तव गृहं विद्वान् एष्यति। इति,

ततः कुविन्दः राजभवनमासाद्य राजानं राजस्य प्राह—देव! भवदमात्यः मां मूर्खं कृत्वा गृहात् निस्सारयति, पश्य त्वम् मूर्खः अहं पण्डितः वा इति—

काव्य करोमि, न हि चारुतर करोमि।
यत्नात् करोमि यदि, चारुतरं करोमि॥
भूपाल-मौलि-मणि—मण्डित-पाद-पीठ ।
हे साहसांक ! कवयामि वयामि यामि॥

ततः राजा 'आधु भोः कुविन्द !' इति उक्त्वा प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ 'मा भैषीः' इति पुनः कुविन्दं प्राह।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रस्तावना— १. भारत में विक्रम संवत् किस राजा ने चलाया ?
२. उसके दरबार में संस्कृत के कौन-से महाकवि थे ?
३. कवियों का आदर करने वाले किसी अन्य प्राचीन राजा का नाम बताओ।

उद्देश्य-कथन— आज हम उसी राजा भोज के द्वारा एक कवि के समागम पर किये गए स्वागतोपचार के विषय में अध्ययन करें।

विषयोपस्थापन— सम्पूर्ण पाठ एक ही अन्विति में रखा जायगा।

मौन वाचन— छात्रों द्वारा सम्पूर्ण पाठ का मौन वाचन किया जायगा।

काठिन्य-निवारण— (छात्रों के पूछने पर)

पद	अर्थ
अध्यास्ते	स्थित है
निवासाशया	निवास की आशा से
निरस्य	निकालकर
वीक्ष्य	देखकर
आसाद्य	पहुँचकर
साहसाङ्क	राजा
मा भैषीः	भयभीत मत हो

अध्यापक निम्नलिखित पंक्ति को स्पष्ट कर देगा—
भूपाल-मौलि मणि मण्डित-पाद-पीठ=राजाओं के मुकुट की मणियों से सुशोभित पादपीठ वाले, अर्थात् राजा भोज।

बोध-प्रश्न— १. द्वारपाल ने राजा भोज से क्या कहा ?
२. कवि ने राजा के पास आकर क्या किया ?
३. वह किस आशा से राजा के पास आया था ?
४. राजा ने मुख्य मन्त्री से क्या कहा ?
५. मुख्य मन्त्री ने कुविन्द को किसलिए घर से निकलने को कहा ?
६ कुविन्द से राजा ने क्या निवेदन किया ?
७. इस कहानी से तुम भोजकालीन धारा नगरी के विषय में क्या धारणा बना सकते हो ?

छात्रो ! अब कुछ प्रश्नों का उत्तर संस्कृत में देने की चेष्टा करो—

१. धारायां द्रविडदेशात् किन्नामधेयः कविरागतः ?
२. राजद्वारं आसाद्य स कविः कमाचारं प्रदर्शितवान् ?
३. तेन कविता स नृपः किमभिहितः ?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. नृपेणामात्यः किमाज्ञप्तः ?
५. तदा धारानगरी कीदृशैः पुरुषैः सुशोभिता आसीत् ?
६. अमात्यः कस्मात् कारणात् तं कुविन्दं गृहात् निस्सारितवान् ?
७. तेन कुविन्देन केन प्रकारेण स्वयोग्यतायाः परिचयः दत्तः ?
८. अनया कथया भवान् धारानगर्याः विषये किं जानाति ?

सस्वर वाचन— कतिपय छात्रों द्वारा ।

गृह-कार्य— इस पाठ का सारांश घर पर लिखो तथा श्लोक को कंठस्थ करो ।

द्रुत पाठ-योजना

[द्वितीय]

विद्यालय का नाम............ **दिनांक**.............
अध्यापक का नाम............ **कक्षा**—१०, **वर्ग**—द
विषय—संस्कृत (द्रुत पाठ) **अवधि**—४० मिनट
शीर्षक—महात्मा गांधी **कालांश**—पंचम

सामान्य उद्देश्य—१. विद्यार्थियों को विषय-वस्तु को पूर्णतया समझ सकने योग्य बनाना ।

२. छात्रों को शीघ्र पढ़ने का अभ्यास कराना, ताकि उनमें शीघ्र किन्तु शुद्ध पठन की आदत उत्पन्न हो सके ।

३. छात्रों में साहित्य के प्रति रुचि जाग्रत करना ।

४. उन्हें अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करने की प्रेरणा देना और स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करना ।

५. छात्रों को स्वतन्त्र अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना ।

६. छात्रों में चारित्रिक विकास करना ।

विशिष्ट उद्देश्य—१. छात्रों को महात्मा गांधी की जीवनी का सामान्य ज्ञान प्रदान करना ।

२. गांधीजी के जीवन से उन्हें सत्यवादी व संकलपवान् बनाने तथा देश-भक्ति के लिए आत्म-बलिदान तक करने की प्रेरणा देना ।

३. अवकाश के क्षणों में महापुरुषों के चरित्र पढ़ने की रुचि उत्पन्न कर उनका सच्चरित्र निर्माण करना ।

सहायक सामग्री— कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण ।

पूर्व-ज्ञान— छात्र महात्मा गांधी के नाम तथा उनके देश-भक्ति के कार्यों का सामान्य ज्ञान रखते हैं ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाठ्य-अंश—-

महात्मा गांधी

को न जानाति प्रातः स्मरणीयस्य महात्मनो गान्धिनो नाम। एष खलु महापुरुषो न केवलं भारतस्य हितम् आचचार अपितु विश्वस्यापि जगतः। तद्यपि नास्ति साम्प्रतं महात्मा गांधी अस्मिन् जगति भौतिकेन देहेन, किन्तु यशःशरीरेण अद्यापि विद्यते, सदैव स्थास्यति। सत्यम्, अहिंसा, लोकसेवा च रत्नत्रयमस्य जीवनस्य प्रधानमुद्देश्यमासीत्। एतत् त्रयस्य उपासनादेव एष विश्ववन्दनीयो जातः।

अध्ययनार्थं यदा स विदेशं गन्तुकामः आसीत्, मातुः समक्षं तिस्रः प्रतिज्ञाः अकरोत्—नाहं कदापि मदिरां पास्यामि, नाह मांसस्पर्शमपि, करिष्यामि। पूर्णरूपेण च ब्रह्मचर्यव्रतमाचरिष्यामि इति। स्व-प्रतिज्ञाः पालयन् यत्र स विधिशास्त्रम् धीतवान्। स्वदेशमागत्य स मुम्बापुर्यां बैरिष्टरवृत्ति प्रारभत। तदा स अफ्रीकादेशं गतः।

अफ्रीका देशे भारतीयानां गौराङ्गैः कृतां दुर्दशां विलोक्य तेषां समुद्धाराय अहिंसामूलस्य सत्याग्रहस्य प्रयोगमकरोत्। ततः स स्वदेशोद्धाराय भारतवर्षं प्रति प्रस्थितः। भारतवर्षेऽपि तमेव उपायं अवलम्ब्य तेन स्वतन्त्रता प्राप्ता। स न केवलं भारतं स्वतन्त्रमकरोत् अपितु रचनात्मकैः कार्यैः तस्य निर्माणमपि अकरोत्। स्वदेशवस्तूनां प्रचारः, अस्पृश्यतायाः उन्मूलनं ग्रामोद्योगानां समुज्जीवनम् मादकवस्तुनां बहिष्कारः राष्ट्रभाषायाः प्रचारश्च तस्य निर्माणकार्याणि।

यावज्जीवं स मानवसेवाव्रतम् आचरत्। अन्तेऽपि तदर्थमेव स्वान् प्राणान् जुहाव। धन्योऽयम् महापुरुषः।

प्रस्तावना—

१. हमारे देश की सरकार का चुनाव कौन करता है ?

२. जनता द्वारा चुनी हुई सरकार द्वारा शासन चलाये जाने के कारण हमारा देश कैसा गणराज्य कहा जाता है ?

३. भारत के स्वतन्त्र होने से लेकर अब तक किस दल की सरकार का हमारे यहाँ शासन रहा है ?

४. कांग्रेस दल ने भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए क्या-क्या कष्ट सहे ?

५. किस महापुरुष के नेतृत्व में कांग्रेस दल ने अंग्रेजों को भारत से भगाकर स्वतन्त्रता प्राप्त की थी ?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उद्देश्य कथन—स्वतन्त्र भारत का प्रत्येक नागरिक सदा-सदा के लिए महात्मा गांधी का ऋणी रहेगा। जीवन के सुखों को छोड़कर, जिस महापुरुष ने कष्टों की आग में कूद, यातनाओं को सहन किया और भारत को स्वतन्त्र ही नहीं किया, अपितु उसका प्रारम्भिक निर्माण किया, उसे कोई भूल नहीं सकता। उन्हीं महात्मा गांधी की जीवनी और उनके सिद्धान्तों का अध्ययन आज हम 'महात्मा गांधी' नामक पाठ में करेंगे।

विषयोपस्थापन—सम्पूर्ण पाठ को अन्विति-द्वय में विभक्त कर पढ़ाया जायगा—

१. को न जानाति············गतः।

२. अफ्रीकादेशे················महापुरुषः।

मौन वाचन— छात्रों द्वारा—प्रथमान्विति का।

बोध-परीक्षा प्रश्न—१. महात्मा गांधी किस शरीर से संसार में अब नहीं हैं?

२. महात्मा गांधी किस शरीर से संसार में हैं और सदैव रहेंगे?

३. महात्मा गांधी विदेश क्यों गये थे?

काठिन्य-निवारण—अध्यापक निम्नलिखित पदों का छात्रों से अर्थ पूछेगा और कठिनाई का निवारण करेगा—

	पद	अर्थ	प्रणाली
१.	विश्वस्यापि	समस्त (सारे)	पर्याय-कथन द्वारा सर्वस्यापि
२.	साम्प्रतम्	आजकल, इस समय	पर्याय कथन द्वारा—इदानीम् अधुना
३.	विश्ववन्दनीयः	सबके लिए वन्दना करने योग्य	समास-विग्रह द्वारा—विश्वैः वन्दनीयः
४.	गन्तुकामः	जाने की इच्छा वाले	अर्थ-कथन द्वारा
५.	विधिशास्त्रम्	कानून शास्त्र को	,, ,, ,,
६.	मुम्बापुर्याम्	बम्बई नगरी में	,, ,, ,,

विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न—

१. कस्य प्रातःस्मरणीयस्य नाम सर्वे जानन्ति?

२. महात्मा गांधी कस्य हितम् आचचार?

३. कीदृशा देहेन सः अस्मिन् अगति नास्ति?

४. सः कीदृशा शरीरेण अद्यापि विद्यते सदैव वर्तिष्यते च?

५. तस्य जीवनस्य प्रधानमुद्देश्यम् किम् आसीत्?

६. तेषां उपासनात् सः कथं जातः?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७. अध्ययनार्थं विदेशं गन्तुकामः सः किम् अकरोत् ?
८. कासीत् तस्य प्रथमा प्रतिज्ञा ?
९. कासीत् तस्य द्वितीया प्रतिज्ञा ?
१०. कासीत् तस्य तृतीया प्रतिज्ञा ?
११. विदेशे सः किम् अधीतवान् ?
१२. स्वदेशमागत्य सः किम् कर्त्तुमारभत ?
१३. पश्चात् स कुत्र गतः !

मौन वाचन— छात्रों द्वारा, द्वितीय अन्विति का ।

बोध-परीक्षा प्रश्न—१. अफ्रीका देश में महात्मा गांधी ने किनका उद्धार किया ?
२. भारत को स्वतन्त्र कराने के अतिरिक्त भी गांधी जी ने क्या कार्य किया ?
३. उन्होंने जीवन-भर किस व्रत का आचरण किया ?

काठिन्य-निवारण— अध्यापक निम्नलिखित पदों के सम्बन्ध से छात्रों की कठिनाई का निवारण करेगा—

पद	अर्थ	प्रणाली
१. गौराङ्गैः	अंग्रेजों द्वारा	सन्धि-विच्छेद व समास द्वारा— गौर + अंगैः
२. अस्पृश्यतायाः उन्मूलनम्	छुआछूत की समाप्ति	अर्थ-कथन द्वारा
३. यावज्जीवम्	जीवन-भर	पद-विश्लेषण द्वारा— यावत् जीवम्

विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न—

१. अफ्रीका देशे गौराङ्गैः केषां दुर्दशा कृता ?
२. भारतीयानां समुद्धाराय गांधी कस्य प्रयोगमकरोत् ?
३. भारतवर्षेऽपि तेनैव उपायेन स किम् प्राप्नोत् ?
४. स्वतन्त्रतायाः अतिरिक्त सः देशे किम अपरम् अकरोत् ?
५. तेन कस्य प्रचारः कृतः !
६. तेन कस्य उन्मूलनं कृतम् ?
७. तेन कस्य उत्कर्षः विहितः ?
८. तेन कस्य बहिष्कारः कृतः ?
९. गान्धिना कस्य प्रसारः कृतः ?
१०. स जीवनपर्यन्तम् किम् आचरत् ?
११. अन्तेऽपि मानवसेवाव्रताय किम अकरोत् ?

सस्वर वाचन— कतिपय छात्रों द्वारा दोनों अन्वितियों का ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आवृत्त्यात्मक प्रश्न—

१. महात्मा गांधी केन अद्यापि विद्यते ?
२. कस्य रत्न-त्रयस्य स उपासकः आसीत् ?
३. विदेशं गन्तुकामः स कस्याः समक्षं प्रतिज्ञाः अकरोत् ?
४. काः नाम ताः प्रतिज्ञा आसन् ?
५. कस्य उपास्य प्रयोगेण तेन स्वतन्त्रता प्राप्ता ?
६. रचनात्मकैः कार्यैः सः किम् अकरोत् ?
७. किमर्थं स स्वान् प्राणान् जुहाव ?

गृह-कार्य— पाठस्य सारांशं संस्कृत-भाषायां लिखत ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१५ | पठन-शिक्षण

पठन भाषा-शिक्षण का एक प्रमुख अंग है। पठन का भाषा-शिक्षण में इतना अधिक महत्त्व है कि प्रारम्भ की कक्षाओं में पठन पर ही विशेष बल दिया जाता है और यदि कोई छात्र ठीक से पढ़ लेता है तो यह समझ लिया जाता है कि उसका भाषा-ज्ञान उस छात्र की अपेक्षा श्रेष्ठ है, जो लिखित सामग्री को पढ़ नहीं पाता। पठन के महत्त्व के कारण ही 'पढ़ना' शब्द साधारण बोलचाल में शिक्षा के अर्थ में प्रयुक्त होता है और हम पूछ बैठते हैं कि आपने कहाँ तक पढ़ा है। एक प्रसिद्ध श्लोक में पिता जब पुत्र से कहता है "यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्", तो उस समय पिता का मन्तव्य 'पठ' से केवल व्याकरण को बिना अर्थ समझे बाँच लेने से नहीं है, वरन् उसका अर्ज समझकर अध्ययन करने से है।

पठनारम्भ योग्यता

पठन की शिक्षा प्रारम्भ करने से पहले यह देखना आवश्यक हो जाता है कि बालक इस योग्य हो गया है या नहीं कि उसे पठन-शिक्षा दी जा सके। माध्यमिक कक्षाओं में ही संस्कृत वैकल्पिक रूप में प्रारम्भ होती है। कक्षा ६ में सामान्यतः बालक ११-१२ वर्ष की आयु वाले होते हैं। इस आयु में बालकों एवं बालिकाओं का शारीरिक विकास इतना हो जाता है कि वे विविध ध्वनियों का उच्चारण कर सकें। प्रारम्भ में यह आवश्यक होता है कि बालक के ध्वनि-यन्त्रों का इतना विकास अवश्य हो जाय जिससे कि वह प्रयत्न करने पर विशिष्ट ध्वनियों का उच्चारण कर सकें। पठन के समय बालक को तालु, जिह्वा, ओष्ठ, कण्ठ, दाँत आदि का उचित रूप से उपयोग करना पड़ता है। उसे अपनी आँख, कान एवं नाक पर भी उचित नियन्त्रण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रखना पड़ता है। यदि बालक का शारीरिक विकास इतना हो जाता है तो हम कहते हैं कि वह पठनारम्भ के लिए तैयार है।

पठनारम्भ योग्यता के लिए केवल शारीरिक विकास को देखना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् यह भी जानना आवश्यक है कि बालक जिस परिवार से आ रहा है, उस परिवार का शैक्षिक वातावरण कैसा है। यदि माँ-बाप एवं अन्य पारिवारिक सदस्य सुशिक्षित हैं तो बालक घर पर बहुत-सी बातें सीख जाता है। पाँचवीं कक्षा तक बालक मातृभाषा का अध्ययन किये रहता है। वह नदी, पर्वत, सूर्य, चन्द्रमा, तालाब आदि के नामों एवं रूपों से परिचित रहता है। उसे घर, परिवार, गाँव, मुहल्ला, विद्यालय, प्रकृति, आदि की सामान्य वस्तुओं से परिचय रहता है, अतः उसकी पठन-शिक्षा सरलता से प्रारम्भ की जा सकती है।

पठनारम्भ की दृष्टि से शब्दों का ज्ञान बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। बालक मातृभाषा में अनेक तत्सम एवं तद्भव शब्दों से परिचित हो जाते हैं। वे सामाजिक जीवन एवं शिष्टाचार सम्बन्धी बातों को भी जानते हैं। प्रणाम, नमस्कार, आशीर्वाद, प्रार्थना, नम्रता आदि से परिचित रहते हैं।

पठनारम्भ की दृष्टि से आकृति-ज्ञान भी महत्त्वपूर्ण है। वर्णों में भेद करना आकृति-भेद की योग्यता पर निर्भर है। बहुत-से छात्र व-ब, म-भ, स-श, ग-म, घ-ध आदि को ठीक से इसीलिए नहीं पढ़ पाते। पठनारम्भ के पूर्व कुछ देशों में आकृति-भेद का ज्ञान बढ़ाने के लिए छात्रों को प्रशिक्षित किया जाता है। मॉन्टेसरी शिक्षण-विधि एवं किण्डरगार्टन पद्धति में भी आकृतियों की पहचान एवं उनमें भेद करने पर बल दिया जाता है।

पठनारम्भ की दृष्टि से रंगों की पहचान, आकार-भेद; यथा—बड़ा, छोटा, लम्बा, मोटा आदि का भी ज्ञान आवश्यक है। कक्षा १ से २ के बालकों के लिए ये बातें महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के समक्ष ये कठिनाइयाँ नहीं आतीं। ध्वनि की उच्चता एवं मन्दता का ज्ञान भी पठनारम्भ के लिए आवश्यक है।

किसी बालक में उपयुक्त शारीरिक एवं मानसिक क्षमता है या नहीं, इसका पता विभिन्न परीक्षणों द्वारा लगाया जाता है। पठनारम्भ के लिए बालक तैयार है या नहीं, इसके लिए पठनारम्भ-तैयारी की जाँच के लिए परीक्षण[1] हैं। इन परीक्षणों द्वारा उन बातों की परीक्षा ली जाती है जिनसे पठनारम्भ योग्यता का पता चलता है। अमरीका में इस प्रकार के अनेक परीक्षण हैं। हिन्दी में पठनारम्भ योग्यता की जाँच के लिए 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्'[2] द्वारा परीक्षणों का निर्माण किया जा रहा है। संस्कृत-शिक्षण यदि प्रारम्भिक विद्यालयों से प्रारम्भ किया

---

1. Reading Readiness Tests.
2. National Council of Educational Research and Training.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जायगा तो इन परीक्षणों से लाभ उठाया जायगा, अन्यथा उनकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। संस्कृत पाठशालाओं में यदि प्रारम्भ में ही छात्रों को पठन-शिक्षा दी जाय तो वहाँ पर छात्रों की पठनारम्भ योग्यता की परीक्षा ली जा सकती है।

पठन-शिक्षा से पूर्व

संस्कृत में पठन-शिक्षा से पूर्व बालकों के हृदय में संस्कृत भाषा के प्रति अनुराग उत्पन्न करना चाहिए। पठन की दृष्टि से छात्रों की रुचि का विशेष महत्त्व है। यदि बालक किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति में रुचि लेता है तो उनके विषय में वह अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। अनुराग एवं रुचि के आधार पर बालकों को जो कुछ पढ़ाया जाता है वह अधिक स्थायी होता है। जब बालक यह समझ लेते हैं कि संस्कृत के अध्ययन के बिना वे भारतीय संस्कृति से परिचित नहीं हो सकते तो संस्कृत के अध्ययन के लिए वे प्रेरित होते हैं। आज के युग में केवल श्रवण से कार्य नहीं चल सकता है। मुद्रण के आविष्कार ने पठन को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। यदि छात्रों की रुचि पठन की ओर नहीं होगी तो पठन-शिक्षा निष्फल हो जायगी।

अतः अध्यापकों का कर्त्तव्य है कि वे पठन-शिक्षा से पूर्व पठन में छात्रों की रुचि जाग्रत करें। इसके लिए अनेक उपाय किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, पोस्टर एवं चार्ट में कुछ चित्र बनाकर उनमें संस्कृत भाषा में कुछ लिख दिया जाय अथवा किसी घटना को चित्र में प्रदर्शित करके उसका वर्णन नीचे संस्कृत में कर दिया जाय। छात्रों के मन में चित्र की बातों को जानने की सहज जिज्ञासा उत्पन्न होगी और वे संस्कृत पढ़ने को उत्सुक होंगे। सूचनापट्ट पर संस्कृत में सूचनाएँ चिपका दें। दीवारों पर संस्कृत की सूक्तियों को लिखकर टाँग दें। संस्कृत के समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ मँगायी जायँ। महत्त्वपूर्ण समाचार संस्कृत में सुनाये जायँ। वार्षिकोत्सवों के अवसर पर संस्कृत के वार्त्तालाप या लघु नाटक अभिनीत किये जायँ। छात्रों को रुचिकर कहानियाँ संस्कृत में पढ़कर सुनायी जायँ। ये कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे छात्रों की रुचि पठन में जाग्रत की जा सकती है।

पठन-शिक्षा का महत्त्व

आजकल मानव-जीवन बहुत व्यस्त होता जा रहा है। बातचीत करके विचारों के आदान-प्रदान का अवकाश कम मिल पाता है। अतः विचारों को लिपिबद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। लिपिबद्ध विचारों को अन्य व्यक्ति पढ़कर ही ग्रहण कर सकते हैं। अतः पठन विचारों के आदान-प्रदान का प्रमुख साधन है।

पठन-योग्यता पर ही अन्य विषयों का ज्ञान निर्भर है। पठन भाषागत कौशल है, किन्तु अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करने का आधार है। यदि कोई छात्र ठीक से पढ़कर पठित वस्तु का अर्थ ग्रहण नहीं कर सकता तो वह इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, व्याकरण, दर्शन, मीमांसा, न्याय आदि का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकेगा।

पठन के द्वारा ही हम महर्षि व्यास, वाल्मीकि, कालिदास आदि के सम्पर्क में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आ जाते हैं। छात्रों का मानसिक एवं संवेगात्मक विकास पठन पर बहुत कुछ निर्भर है। विश्व के किसी कोने में उदित ज्ञान को हम पठन द्वारा ग्रहण कर लेते हैं। पठन द्वारा ही हम किसी काल में हुए ऋषियों एवं साहित्यकारों के विचारों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

पठन योग्यता के विकास से भाषा के अन्य कौशलों का भी विकास होता है। पठन-काल में दक्ष छात्र लिखने, बोलने एवं समझने की कला में भी निपुणता प्राप्त कर लेता है।

आजकल विद्यालयों में पठन-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है। यह खेद का विषय है। अध्यापक यह समझ लेते हैं कि छात्र को यदि वर्णमाला का ज्ञान हो गया तो वह ठीक ढंग से पढ़ भी लेगा। ऐसा समझना भ्रमात्मक है। पठन की योग्यता उत्पन्न करने के लिए हमें विशेष रूप से प्रयत्न करना चाहिए।

पठन-शिक्षा की विधियाँ

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी पठन-शिक्षण में निम्नलिखित सात विधियों का उल्लेख करते हैं—

१. देखो और कहो विधि
२. अक्षर-बोध विधि
३. ध्वनि-साम्य विधि
४. अनुध्वनि विधि
५. भाषा-शिक्षण-यन्त्र विधि
६. समवेत-पाठ विधि
७ संगीत-विधि

पहली विधि में शब्द परिचय द्वारा पठन-शिक्षण होता है। चित्र में या श्याम-पट पर शब्द लिख दिया जाता है और छात्र उस शब्द को देखते और कहते हैं।

दूसरी विधि प्रचलित विधि ही है। इसमें अक्षरों का बोध कराकर शब्दों का निर्माण सिखाया जाता है।

तीसरी विधि में समान उच्चारण वाले शब्द; यथा—कर्म, धर्म आदि एक साथ सिखाये जाते हैं।

चौथी विधि एक प्रकार से 'सुनो और कहो' विधि है। शिक्षक शब्द का उच्चारण करता है और छात्र उसका अनुकरण करते हैं।

पाँचवीं विधि नवीन विधि है, किन्तु लिंग्वाफोन की सुविधा हमारे विद्यालयों में प्राप्त नहीं है। व्ययसाध्य होने के कारण इसका अधिक प्रयोग होना कठिन है।

छठी विधि में पूरे पाठ को अध्यापक आदर्श रूप में पढ़ता है और छात्र एक साथ अनुकरण-वाचन करते हैं। श्लोकों के पठन में यह विधि काम में लायी जा सकती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सातवीं विधि मॉण्टेसरी विधि है। वस्तुओं एवं चित्रों के आगे कार्डों पर उनके नाम लिखे रहते हैं। छात्र कार्ड के नाम की और चित्र की संगति स्थापित करता है।

उपर्युक्त सातों विधियों को देखने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वस्तुतः पठन-शिक्षण की सात विधियाँ केवल गिनती गिनने के लिए हैं। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि मूल रूप में पठन-शिक्षण की तीन विधियाँ हैं। वे तीनों विधियाँ निम्नलिखित हैं—

१ वर्णमाला-पद्धति
२. शब्द-शिक्षण-पद्धति
३. वाक्य-शिक्षण-पद्धति

वर्णमाला-पद्धति में सर्वप्रथम छात्रों को अक्षरों से परिचित कराया जाता है। छात्रों को अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ और स्वरों तथा क ख ग घ आदि व्यंजनों को सिखा दिया जाता है। मात्राएँ भी बता दी जाती हैं और छात्रों को संयुक्ताक्षरों का भी ज्ञान करा दिया जाता है। उसके बाद अक्षरों के मेल से शब्दों का ज्ञान कराया जाता है। बाद में वाक्य का ज्ञान करा दिया जाता है।

वर्णमाला-पद्धति की पर्याप्त आलोचना की गयी है। मनोविज्ञान के पंडितों का कथन है कि वर्ण भाषा की इकाई नहीं है। वर्ण स्वयं में निरर्थक होते हैं, अतः छात्रों को रुचि अक्षर सीखने मे नहीं होती है। इसलिए अंग्रेजी सिखाने में अब इस विधि को नितान्त अनुपयुक्त करार दे दिया गया है। भारत में अभी भी यह पद्धति प्रचलित है। इस पद्धति के समर्थकों का तर्क है कि देवनागरी लिपि एवं संस्कृत की वर्णमाला पूर्णतः वैज्ञानिक हैं। इनमें वर्ण और ध्वनि एक ही है, अतः कोई भी वर्ण निरर्थक नहीं है। कम से कम उसका यह अर्थ तो है ही कि वर्ण का नाम ध्वनि का प्रतीक है। जब 'क' कहा जाता है तो 'क' प्रतीक और इस प्रतीक का नाम 'क' तथा ध्वनि 'क' समान ही हैं। अंग्रेजी में यह बात नहीं है। उसमें 'C' प्रतीक का नाम 'सी' है और उच्चारण 'क' है। संस्कृत में वर्णों का क्रम भी उच्चारण-स्थान के अनुसार सजाया गया है। अतः कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृत सिखाने में वर्णमाला पद्धति ही अधिक श्रेयस्कर है। इसमें छात्रों का समय भी अधिक नष्ट नहीं होता।

दूसरी पद्धति है, शब्द-शिक्षण पद्धति। इसमें वर्णों के स्थान पर सर्वप्रथम शब्द से परिचय कराया जाता है। शिशु सर्वप्रथम शब्द का ही उच्चारण करता है। वह अपनी तोतली बोली से भी पापा, नाना, मामा आदि शब्दों का उच्चारण करता है। वाक्य भी बाद में वह बोलता है। अक्षर भी बाद में सीखता है। अतः कुछ विद्वानों के अनुसार बालकों को सर्वप्रथम शब्दों की शिक्षा देनी चाहिए। आचार्य चतुर्वेदी द्वारा वर्णित 'देखो और कहो विधि', 'ध्वनि साम्य विधि', 'अनुध्वनि विधि' तथा मेडम मॉण्टेसरी द्वारा प्रवर्तित 'संगति विधि' वस्तुतः शब्द-शिक्षण की विधियाँ ही हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीसरी विधि है, वाक्य-शिक्षण पद्धति। यह पद्धति सर्वाधिक मनोवैज्ञानिक समझ पड़ती है, क्योंकि भाषा की प्रारम्भिक इकाई वाक्य है, न कि शब्द या अक्षर। जो व्यक्ति यह कहते हैं कि बालक सर्वप्रथम अपने मुख से शब्दों का उच्चारण करता है, वे यह भूल जाते हैं कि उसका शब्द भी वाक्य का ही प्रतिनिधि होकर आता है। जब बालक कहता है 'मामा', तब उसका तात्पर्य होता है 'मामा है' या 'मामा कहाँ हैं?' या 'मामा आओ' आदि। अंग्रेजी भाषा के शिक्षण में आजकल संरचना विधि (Structural Method) को लोग अपना रहे हैं। इस विधि में भी दोष हैं। छात्र प्रायः अभ्यास की हुई परिस्थितियों को ही समझ पाते हैं, अन्य परिस्थितियों में व्याकरण या अनुवाद पद्धति के लोग बाजी मार ले जाते हैं। फिर भी यह पद्धति बालकों को अधिक रुचिकर प्रतीत होती है। समवेत-पाठ विधि या भाषा शिक्षण-यन्त्र विधि इसी वाक्य-शिक्षण विधि के प्रकारान्तर हैं।

उपर्युक्त विधियों को देखने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तीनों ही विधियाँ अपने-अपने स्थान पर ठीक हैं। कुशल शिक्षक यथावसर इन तीनों विधियों का सहारा लेता है। एक में हम अक्षर से प्रारम्भ करते हैं और शब्दों की सीढ़ी को पार करते हुए वाक्य तक पहुँचते हैं तो दूसरी में हम वाक्यों से प्रारम्भ करके शब्दों की सीढ़ी को पार करके अक्षरों तक पहुँचते हैं। शब्दों का महत्त्व दोनों ही विधियों में बीच का है। अतः शब्द-शिक्षण विधि को हम दोनों अन्य विधियों को जोड़ने वाली विधि कह सकते हैं। यह विधि पुल का काम करती है। इस विधि में हम यथासमय दोनों अन्य विधियों का उपयोग कर सकते हैं।

पठन के प्रकार

पढ़ने वालों की संख्या की दृष्टि से पठन दो प्रकार के होते हैं—

१. व्यक्तिगत पठन,

२. कक्षा द्वारा पठन

(१) व्यक्तिगत पठन—व्यक्तिगत पठन में एक ही छात्र गद्यांश का पठन करता है। व्यक्तिगत पठन द्वारा छात्र अर्थ को ग्रहण करके अपनी योग्यतानुसार अध्ययन में प्रगति करता है। प्रत्येक छात्र की अपनी पृथक् क्षमता होती है। बुद्धि, योग्यता, निष्पत्ति आदि की दृष्टि से व्यक्तिगत भिन्नताएँ हैं। अतः पठन व्यक्तिगत होगा, तभी ठीक होगा। अध्यापक जब कक्षा में पढ़ाता है और चाहता है कि छात्रों में पठन की कुशलता उत्पन्न हो तो वह कक्षा में भी छात्रों को व्यक्तिगत रूप से पढ़ने का अवसर प्रदान करता है।

(२) कक्षा द्वारा पठन—कभी-कभी किसी कक्षा में कुछ छात्र सामान्य स्तर से नीचे होते हैं। ऐसे छात्र कक्षा में खड़े होकर पढ़ने में लज्जा का अनुभव करते हैं। यदि ये छात्र अन्य छात्रों के साथ पढ़ें तो धीरे-धीरे व्यक्तिगत रूप से भी पढ़ने लगेंगे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसे छात्रों की दृष्टि से सामूहिक पठन या कक्षा द्वारा पठन अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इस प्रकार के पठन में सम्पूर्ण कक्षा उसी गद्यांश या पद्यांश का एक साथ पठन करती है। कक्षा के सामूहिक पठन का अपना आनन्द है। किसी श्लोक को जब कक्षा के पूरे छात्र पढ़ने लगते हैं तो बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है। मौन रूप से तो सम्पूर्ण कक्षा पठन करती ही है, जोर-जोर से पढ़ने में भी सामूहिक पठन का महत्त्व है। संस्कृत भाषा में उच्चारण का विशेष महत्त्व है। सम्पूर्ण कक्षा द्वारा किसी गद्य-खण्ड या पद्य-खण्ड को पढ़ाने में समय की बचत होती है और मन्द गति वाले छात्रों को प्रोत्साहन मिलता है।

पठन में स्वर की अभिव्यक्ति की दृष्टि से पठन के दो प्रकार हैं—

१. सस्वर पठन

२. मौन पठन

(१) **सस्वर पठन**—जब तक बालक मौन पठन की प्रक्रिया से परिचित नहीं हो जाता, तब तक सस्वर पठन का विशेष महत्त्व है। सस्वर पठन को व्यक्त पठन या मुखर पठन भी कहा जाता है। वस्तुतः इसे व्यक्त पठन कहना अधिक अच्छा है, किन्तु आधुनिक शब्दावली में सस्वर पठन का ही प्रायः प्रयोग किया जाता है, अतः यहाँ पर भी 'सस्वर' शब्द ही रखा गया है। सस्वर पठन संस्कृत-शिक्षण के प्रारम्भिक स्तर पर विशेष रूप से उपयोगी है। हम यह पहले ही कह आये हैं कि भाषा-शिक्षण का एक प्रमुख प्रयोजन बोलने की कला का विकास करता है। इस दृष्टि से सस्वर पठन का विशेष महत्त्व है। सस्वर पाठ द्वारा बालक मौखिक अभिव्यक्ति की कला सीखते हैं। उनमें संस्कृत बोलने का अभ्यास दृढ़ होता है। वे निडर होकर कोई बात कह सकते हैं। सभा के समक्ष बोलने का अभ्यास सस्वर पठन द्वारा ही होता है।

सस्वर पठन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

१. बालक शुद्ध उच्चारण कर सकें।

२. वे ध्वनि के आरोहावरोह से परिचित हो सकें।

३. भावानुरूप स्वर की उच्चता या मन्दता का वे अभ्यास कर सकें।

४. वे पठन की गति पर नियन्त्रण प्राप्त कर सकें।

५. यथावसर वाणी में ओज, प्रसाद एवं माधुर्य ला सकें।

६. विराम-स्थलों का ध्यान रख सकें।

७. अर्थ की दृष्टि से विशिष्ट शब्द-समूहों का ध्यान रख सकें।

बालक को सस्वर पठन का अभ्यास कराने के लिए अध्यापक को उचित आरोहावरोह का ध्यान रखते हुए आदर्श पाठ करना चाहिए। अध्या क को आदर्श पाठ करते समय उच्चारण के प्रति सावधान रहना चाहिए, क्योंकि उसके उच्चारण का अनुकरण छात्र करेंगे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छात्र जब सस्वर पठन कर तो उनकी अशुद्धियों का ध्यान रखना चाहिए और पढ़ लेने के बाद उन अशुद्धियों का संशोधन कर देना चाहिए। कक्षा में सबसे पहले अच्छे पाठकों से सस्वर पठन कराना चाहिए जिससे अन्य बालक उनका अनुकरण कर सकें। उत्तम सस्वर पठन के लिए उच्चारणाभ्यास भी परमावश्यक है।

जिस समय बालक सस्वर पठन कर रहा हो, उस समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह खड़ा होकर पुस्तक को बायें हाथ में लिए हो और पुस्तक नेत्रों से लगभग एक फुट की दूरी पर हो। खड़े होने के ढंग पर भी ध्यान रखना चाहिए। जिस समय एक बालक पढ़ रहा हो, उस समय अन्य बालकों को निर्देश दिया जाय कि वे अपनी पुस्तकों में पढ़े जा रहे अंश को देखते चलें।

कभी-कभी सामान्यतः शिक्षक यह धारणा बना लेते हैं कि पठन पर बहुत अधिक कार्य आजकल किया गया है और अंग्रेजी के पण्डितों ने ही इस पर कार्य किया है। संस्कृत में पठन के गुण-दोषों पर कोई विचार नहीं किया गया है। यह धारणा मिथ्या है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने पठन-कला पर विस्तार से विचार किया है। याज्ञवल्क्य-शिक्षा में बताया गया है कि पठन को किस प्रकार आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता है। उसी में पठन के दोषों का भी उल्लेख किया गया है। याज्ञवल्क्य-शिक्षा में कहा गया है—

शंकितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं मूर्ध्नि गतं तथा स्थानविवर्जितम्॥
विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम्।
व्याकुलं तालुहीनं च पाठदोषाश्चतुर्दश॥

अर्थात् पठन के निम्नलिखित चौदह दोष होते हैं—

१. पठन के समय शंकित होना।
२. भयभीत होना।
३. चिल्लाकर पढ़ना।
४. स्पष्ट न पढ़ना।
५. नाक से पढ़ना।
६. कौवे की तरह कर्ण-कटु स्वर में पढ़ना।
७. मूर्द्धा से पढ़ना।
८. उचित स्थान से उच्चारण न करना।
९. स्वर रहित पठन।
१०. नीरस ढंग से पढ़ना।
११. मिला-मिला कर अस्पष्ट पढ़ना।
१२. विषम बलाघात करना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१३ व्याकुलतापूर्वक पढ़ना ।

१४. तालुहीन की भाँति पढ़ना ।

अन्य स्थलों पर याज्ञवल्क्य कहते हैं—

गीती शीघ्री शिरःकम्पी यथालिखितपाठकाः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥

अर्थात् निम्नलिखित छह प्रकार के पाठक अधम कोटि के माने जाते हैं—

१. गा-गा कर पढ़ने वाला ।

२. अधिक शीघ्रता से पढ़ने वाला ।

३ पढ़ते समय सिर को हिलाने वाला ।

४. चुपचाप पढ़ने वाला ।

५. अर्थ समझे बिना पढ़ने वाला ।

६. जिसका कण्ठ साफ न हो, या दवे स्वर में पढ़ने वाला ।

याज्ञवल्क्य शिक्षा में ही पठन के गुणों पर भी विचार किया गया है । उसमें बताया गया है—

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठकाःगुणाः ॥

अर्थात् अच्छे पठन के निम्नलिखित छह गुण हैं—

१. मधुरता ।

२. अक्षरों का स्पष्टोच्चारण ।

३. पदों का उचित विभाजन (अर्थ की दृष्टि से शब्द-समूहों का एक साथ उच्चारण ।

४. सुन्दर और शुद्ध स्वर के साथ उच्चारण ।

५. धैर्य ।

६. उचित लय के अनुसार पढ़ना ।

(२) **मौन पठन**—जब पढ़ने का कुछ अभ्यास हो जाय तो छात्रों को मौन पठन के लिए प्रेरित करना चाहिए, क्योंकि मौन पठन हमारे लिए अधिक उपयोगी है । मुद्रण के आविष्कार से अब अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो गयी हैं । मुद्रित सामग्री प्रचुर मात्रा में बढ़ती जा रही है । इन सबको पढ़कर इनका सार ग्रहण करना होता है । इस दृष्टि से मौन पठन ही अधिक व्यावहारिक है । समाज में हम प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक समय सस्वर पठन नहीं कर सकते । इससे दूसरे नागरिकों के कार्यों में बाधा पड़ सकती है । अतः मौन पठन का हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है । मौन पठन ही सबसे अधिक प्रचलित भी है, क्योंकि जीवन में इसी से अधिक काम पड़ता है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सस्वर पठन में समय अधिक लगता है। नेत्रों का एक शब्द या शब्द-समूह से दूसरे शब्द-समूह तक जाना बहुत शीघ्रता से होता है। किन्तु नेत्र-संचालन की गति के अनुरूप ही वाणी नहीं चलती, अतः स्वर निकालने में समय अधिक लगता है। मौन पठन में स्वर निकालने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। अतः मौन पठन में समय की बचत होती है।

मौन पठन में शक्ति भी कम लगती है। सस्वर पठन में नेत्र, मस्तिष्क एवं वाणी—तीनों का योग रहता है, जबकि मौन पठन में केवल नेत्र एवं मस्तिष्क का योग रहता है।

भाव को हृदयङ्गम करने की दृष्टि से भी मौन पठन का अधिक महत्त्व है। सस्वर पठन में उच्चारण एवं ध्वनि पर अधिक ध्यान रहता है, इसलिए पठित अंश अच्छी तरह से आत्मसात् नहीं हो पाता। मौन पठन से भावों को ग्रहण करने में अत्यधिक सहायता मिलती है। मुख्य अंग का समझना एवं उसे याद करना भी मौन पठन द्वारा सुविधाजनक होता है। संस्कृत या अन्य भाषा ही नहीं, वरन् सभी विषयों के अध्ययन में मौन पठन ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

मौन पठन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

१. पठन-गति बढ़ाना एवं उसमें क्षिप्रता लाना।
२. पठित अंश के बोधग्रहण की क्षमता उत्पन्न करना।
३. बोधग्रहण की गति में वृद्धि करना।
४. मुख्य तथ्यों के चयन करने एवं केन्द्रीय तथ्य को स्मरण रखने की योग्यता का विकास करना।

छात्रों में मौन पठन का अभ्यास डालने के लिए यह आवश्यक है कि पुस्तकें आकर्षक हों, तथ्य सरल एवं छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल हों तथा छात्रों के शब्द-भण्डार का ज्ञान रखा जाय।

मौन पठन का अभ्यास—मौन पठन का अभ्यास डालते समय छात्रों को निर्देश हो कि वे गुनगुनाएँ नहीं, पूर्ण शान्ति से पाठ को मन में ही पढ़ें। मौन पठन प्रारम्भ करने से पहले कुछ प्रेरणात्मक प्रश्न या समस्या रख दें तो अधिक अच्छा हो। काठिन्य-निवारण पहले ही हो जाना चाहिए। जिस समय छात्र मौन पाठ कर रहे हों, उस समय अध्यापक को निरीक्षण करना चाहिए। पढ़ने के लिए पर्याप्त समय देने के पश्चात् कुछ प्रश्न करने चाहिए। प्रसंगवश किसी घटना या कथा का वर्णन करना हो तो मौन पठन के पूर्व ही कर लिया जाय तो अच्छा रहेगा।

शब्द-भण्डार की वृद्धि—मौन पठन का एक आवश्यक अंग है, छात्रों के शब्द-भण्डार की वृद्धि। पहले ही कहा जा चुका है कि मौन पठन द्वारा छात्रों में समवेत

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पठन की आदत उत्पन्न की जाती है और साथ ही साथ बोधग्रहण की क्षमता का विकास किया जाता है। बोधग्रहण तभी सम्भव होता है जब छात्रों के शब्द-भण्डार का विकास होता रहे। इसके लिए उपयुक्त विधियों द्वारा शब्दों का तात्पर्य बताना चाहिए। शब्दों की व्युत्पत्ति की ओर भी संकेत किया जाय। संस्कृत भाषा की सर्व-प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें अनेकानेक शब्दों के गढ़ने की शक्ति विद्यमान है, जबकि अन्य भाषाओं में यह शक्ति कम होती है।

शब्दों के पर्यायवाची शब्दों की ओर भी संकेत करना चाहिए। छात्रों को इस बात का ज्ञान कराना चाहिए कि संस्कृत में पर्यायवाची शब्द अनेक हैं, किन्तु संस्कृत में प्रत्येक शब्द केवल पदार्थ का ही बोधक न होकर गुण का भी बोधक है। अंग्रेजी या अन्य भाषाएँ इस दृष्टि से बड़ी अक्षम हैं। अंग्रेजी में जब Water कहा जाता है तो उससे केवल 'जल' पदार्थ का बोध होता है, अर्थात् अंग्रेजी के शब्द केवल पदार्थों के प्रतिनिधि होकर आते हैं। इसीलिए केवल अंग्रेजी के विद्वान् या केवल अंग्रेजी के माध्यम से भाषा-विज्ञान का अध्ययन करने वाले विद्वानों की समझ में यह बात सरलता से नहीं आती है। वे समूचे भाषा-शास्त्र को इसी दृष्टि से देखते हैं। संस्कृत में एक-एक शब्द पदार्थ का प्रतिनिधि तो होता ही है, साथ में वह उस पदार्थ के किसी विशेष गुण का भी प्रतिनिधि होता है। उदाहरणार्थ, 'वाटर' के लिए संस्कृत में हम पयः, पानीयम् या उदकम् कहते हैं। पयः का अर्थ है, पोषण करने वाला। पानीयम् का अर्थ है, तृप्त करने वाला। उदकम् का अर्थ, अन्दर से बाहर आया हुआ। दूसरा उदाहरण लीजिए। पृथ्वी को अंग्रेजी में Earth कहते हैं। Earth शब्द केवल उस पदार्थ का द्योतक है जिसका प्रतीक बनकर वह शब्द आया है। संस्कृत में पृथ्वी के लिए कुछ शब्द ये हैं—पृथ्वी, धरा, भूमि, उर्वी, गुर्वी, क्षमा। पृथ्वी का अर्थ है फैली हुई; धरा का अर्थ है धारण करने वाली; भूमि का अर्थ है अनेकानेक पदार्थों की जननी; उर्वी का अर्थ है विशाल; गुर्वी का अर्थ है भारी और क्षमा का अर्थ है सहन करने वाली। संस्कृत में जब कोई लेखक या कवि किसी शब्द का प्रयोग करता है तो वह केवल पदार्थ के वाचक के रूप में ही नहीं, वरन् पदार्थ एवं विचार—दोनों के प्रतिनिधि के रूप में। अंग्रेजी में केवल नकारात्मक उपसर्गों (Dis, Un, Im, In, Mis) में योग से बने हुए शब्दों अथवा logy के योग से बने हुए शब्दों अथवा कुछ इसी प्रकार के अन्य शब्दों की ओर ध्यान जा सकता है, किन्तु यहाँ पर ऐसे शब्दों से तात्पर्य नहीं है। यहाँ तो मूल शब्दों की ओर ही संकेत किया जा रहा है।

कोश का प्रयोग

शब्द-भण्डार की वृद्धि की दृष्टि से कोश का विशेष महत्त्व है। छात्रों को कोश देखने की ओर प्रवृत्त करना चाहिए। यदि वे कोश देखने की आदत डाल लेंगे तो अनेकानेक शब्दों से उनका परिचय बढ़ेगा। संस्कृत का शब्द-कोश भी काव्य की भाँति रुचिकर है। एक-एक शब्द की अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति की गई है। एक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शब्द में अनेक अर्थ हैं। वाणी के प्रकाशन का जिस बारीकी से संस्कृत के पण्डितों ने विश्लेषण किया है, वह सराहनीय है। संस्कृत में 'अमर कोश' बड़ा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अमर कोश में एक-एक शब्द पर विचार किया गया है, यथा—'अमरा निर्जरा देवाः' अर्थात् देव अमर हैं; किन्तु अमरता व्यर्थ है यदि वृद्धता से छुटकारा न मिले, अतः निर्जरा कहकर अमरता के गुण का विकास किया गया है। 'अमरा निर्जरा देवाः' अमर कोश का प्रारम्भिक वाक्य है।

पाठ्य-पुस्तक

पठन में पाठ्य-पुस्तक का अपना स्थान है। अतः पाठ्य-पुस्तक पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। संस्कृत की उत्तम पाठ्य-पुस्तक के निम्नलिखित उद्देश्य कहे जा सकते हैं—

१. भारतीय वाङ्मय तथा संस्कृत के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करते हुए राष्ट्रीयता का विकास करना।

२. छात्रों को संस्कृत भाषा का सामान्य व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना। उनके संस्कृत शब्द भण्डार की वृद्धि करना तथा विभिन्न उपयोगी शब्दों, धातुरूपों और प्रत्ययों का बोध कराना।

३. उपर्युक्त लक्ष्यों की पूर्ति के लिए बालकों को निम्नलिखित अभ्यास कराना—

   (अ) शुद्ध उच्चारण तथा पठन का अभ्यास।

   (आ) मौखिक तथा लिखित भाव प्रकाशन का अभ्यास।

   (इ) सरल संस्कृत में लिखित पाठ्य-सामग्री का शुद्ध उच्चारणपूर्वक भावों को यथोचित रूप से प्रकट करते हुए विधिपूर्वक पढ़ने का अभ्यास।

   (ई) संस्कृत श्लोकों का सुन्दर तथा आकर्षक ढंग से लयपूर्वक भाव प्रकाशित करते हुए विधिपूर्वक पाठ करने का अभ्यास।

   (उ) अपने अनुभवों को सरल तथा स्पष्ट भाषा में मौखिक तथा लिखित रूप में व्यक्त करने का अभ्यास।

४. शिक्षण-क्रम में श्रव्य-दृश्य प्रणाली, प्रत्यक्ष प्रणाली जैसी मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग करने के लिए पाठ्य-पुस्तक की सहायता लेना।

पठन की दृष्टि से पाठ्य-पुस्तकों का चयन भी महत्त्वपूर्ण है। उपयुक्त पुस्तकों के अभाव में छात्र पठन में रुचि नहीं लेते। पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करते समय उनमें जिन पाठों का समावेश किया जाय, वे कक्षा के स्तर के ही होने चाहिए। संक्षेप में पाठ्य-पुस्तकों की रचना के सिद्धान्तों का नीचे उल्लेख किया जा रहा है—

१ वर्ण्य विषय छात्रों की रुचि एवं योग्यता के अनुसार रखा जाय।

२. भाषा-ज्ञान के क्रमिक विकास की दृष्टि से पाठों का क्रम सरल से कठिन की ओर रखा जाय।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३. बालक के वातावरण से सम्बन्धित पाठ होने चाहिए।
४. पाठों से जीवन के विविध क्षेत्रों का परिचय मिले।
५. पाठ बालकों की रचनात्मक शक्ति का विकास करने की दृष्टि से हों।

केवल पाठ्य-पुस्तकों से ही पठन की योग्यता का विकास नहीं होता है। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त सहायक पुस्तकों का भी चयन करना चाहिए। ये सहायक पुस्तकें यथासम्भव सरल, रोचक एवं स्पष्ट होनी चाहिए। इनके अध्ययन से छात्रों का ज्ञान व्यापक एवं व्यावहारिक होता है।

संस्कृत की पाठ्य-पुस्तकों के विषय में प्रायः कहा जाता है कि ये सदा पुराना राग ही अलापती हैं एवं इनमें नवीन अन्वेषणों के प्रति कोई ज्ञान नहीं दिया जाता। अतः पाठ्य-पुस्तकों की रचना के समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि नवीन दृष्टिकोण उपेक्षित न हो।

सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि पाठ्य-पुस्तकों में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है—

१. पुस्तक की भाषा सरल एवं सुबोध हो।
२. पाठों में विविधता हो। कहानी, नाटक, काव्य, गद्य, इतिवृत्त आदि सभी का समावेश हो।
३. पुस्तकों की शैली छात्रों को बौद्धिक योग्यता के अनुकूल हो।
४. पाठों में नैतिक उपदेश हों और साथ में क्रियात्मक शिक्षा वाले पाठ भी हों।
५. उनमें चरित्र-निर्माण, व्यवहार, राष्ट्रप्रेम, वीरता, धैर्य, त्याग, विश्व-बन्धुत्व तथा अनुशासन आदि उच्च भावों को प्रबुद्ध और विकसित करने की पर्याप्त सामग्री हो।
६. उनमें ईश वन्दना, सरल संस्कृत नीति, महापुरुष, आदर्श बालक, दृश्य-वर्णन, यात्रा, ऋतु वर्णन, राष्ट्रीय तथा सामाजिक पर्व, उपदेशात्मक सरल कहानी, सरल नीति श्लोक, संवाद, खेलकूद आदि पर आधारित पाठों का समावेश हो।
७. उनमें परिवेश परिचय, नगर, राज्य तथा राष्ट्र के ज्ञान की ओर क्रमिक संकेत हो।
८. कुछ वैज्ञानिक उपलब्धियों की भी चर्चा हो जिससे संस्कृत का छात्र कूप मण्डूक न रहे।
९. पाठों के अन्त में वार्तालाप, लिखित अभ्यास, व्याकरण, अनुवाद तथा शब्द प्रयोग के प्रश्न हों।
१०. पाठों में निर्धारित व्याकरण के प्रयोगों का समावेश किया जाय जिनके आधार पर व्याकरण शिक्षण सरल और रोचक हो।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११. इसके अतिरिक्त बालकों को संस्कृत साहित्य से परिचित कराने के लिए संस्कृत के सरल अंश चुने जायँ, पर ये उस स्तर तक न रखे जायँ जब तक बालक उन्हें समझने योग्य न हो।

१२. हिन्दी भाषा में प्रयुक्त तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुलता से किया जाय साथ ही बालकों के निकट परिवेश और उनके दैनिक जीवन से वे सम्बद्ध हों।

१३. पुस्तक आकर्षक और प्रभावोत्पादक चित्रों से सुसज्जित होनी चाहिए।

१४. पुस्तक में शरीर के अंग, सम्बन्धीजन, बर्तन, फल, शाक, वृक्ष, पुष्प, विभिन्न रंग, खाद्य वस्तुओं, लेखन तथा पाठ्य-सामग्री, पशु-पक्षी, वनस्पति, ऋतु, विद्यालय आदि विषयों पर आधारित शब्दावली का विशेष रूप से चयन किया जाय।

१५. पाठ कठिनता के क्रम से रखे जायँ, उनमें नवीन शब्दों की बहुलता नहीं होनी चाहिए।

१६. पाठ्य-पुस्तकों के विषयों से सम्बद्ध विषयों पर सरल एवं स्पष्ट भाषा में सहायक पुस्तकें भी हों।

१७. पाठ्य-पुस्तक में स्वाध्याय की आदत डालने के लिए अभ्यासार्थ प्रश्न भी हों।

१८. पाठ्य-पुस्तकों से केवल भाषा-ज्ञान ही न बढ़े, वरन् सामान्य ज्ञान की भी वृद्धि हो।

१९. पुस्तक का कलेवर बहुत बड़ा न हो।

२०. पुस्तक का मुद्रण अच्छा हो। कागज भी ठीक हो। जिल्द अच्छी हो। मुखपृष्ठ उत्तम एवं आकर्षक हो।

२१. पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों की योग्यता उच्च स्तर की हो।

२२. पुस्तक का मूल्य अधिक न हो।

यदि उपयुक्त पुस्तकों का निर्माण किया जाय और उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों एवं सहायक पुस्तकों का चयन किया जाय, तो छात्रों की पठन-रुचि का विकास होगा और उनका भाषा-ज्ञान बढ़ेगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१६ | लेखन-शिक्षण

संस्कृत भाषा और देवनागरी लिपि

बालक पहले पठन सीखे या लेखन, इसके विषय में शिक्षा-शास्त्री एकमत नहीं हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षक फ्रॉबेल के अनुसार बालक को पहले पढ़ना सिखाना चाहिए। जब बालक अक्षरों को पहचान कर पढ़ना सीख जाय, तब उसे लिखने की शिक्षा दी जाय। इससे लेखन निरर्थक क्रिया न होकर सार्थक प्रक्रिया हो जायगी। इसके विपरीत बाल मनोविज्ञान की पंडिता मॉण्टेसरी के अनुसार बालक को पहले लेखन की शिक्षा दी जानी चाहिए और जब लेखन कार्य करते समय बालक का उसकी शारीरिक क्रियाओं पर नियन्त्रण हो जायगा तो वह लिखित सामग्री को पढ़ने के लिए स्वभावतः उत्सुक हो उठेगा। ऐसा लगता है कि दोनों विद्वानों ने वर्णमाला की कठिनाई को समझकर अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। रोमन लिपि में यह दोष है कि उसमें लिखा कुछ जाता है और पढ़ा कुछ जाता है। अक्षर का जो नाम है वही उसका उच्चारण नहीं है। रोमन लिपि में लिखते 'के' हैं, किन्तु 'के' का उच्चारण 'क' होता है। देवनागरी लिपि में ऐसी बात नहीं है, इसलिए देवनागरी लिपि को तो प्रारम्भ में भी सिखाया जा सकता है। इस दृष्टि से लेखन और पठन साथ-साथ चलने चाहिए, इनमें आगे और पीछे का प्रश्न नहीं है।

संस्कृत भाषा को लोग बँगला, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम्, कन्नड़ और रोमन लिपियों में भी लिखते हैं, किन्तु देवनागरी लिपि संस्कृत की मान्य लिपि है और भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में संस्कृत का अध्ययन करने वाले विद्वान् देवनागरी लिपि में ही संस्कृत को लिखना अधिक पसन्द करते हैं। देवनागरी लिपि संसार की सर्वोत्तम वैज्ञानिक लिपि है, क्योंकि इसमें जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुन्दर हस्तलेख का महत्त्व

मुद्रण-यन्त्र के आविष्कार के पूर्व संस्कृत के बड़े-बड़े ग्रन्थ हाथ से लिखे जाते थे और आज भी इन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों को देखकर आश्चर्य होता है। उन पाण्डुलिपियों में अक्षरों की सुडौलता का पूरा ध्यान रखा गया है और ऐसा लगता है कि इन ग्रन्थों के लेखक लेखन-कला के पूर्ण पारखी थे।

सुन्दर लेखन सभी को अच्छा लगता है। सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई सामग्री को बरवस पढ़ने का मन करता है। अतः छात्रों को सुन्दर लेखन की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए।

असुन्दर हस्तलेख के कारण

आजकल छात्रों के हस्तलेख बड़े भद्दे होते हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो आजकल छात्र प्रारम्भ से ही फाउण्टेन पेन का प्रयोग करने लगते हैं जिससे उनका लेख खराब हो जाता है। दूसरे, छात्रों को लिखते समय कलम किस प्रकार पकड़नी चाहिए, यह भी नहीं मालूम रहता। तीसरे, बालकों को लिखते समय किस प्रकार बैठना चाहिए, इसका कोई विचार नहीं रहता। गलत ढंग से बैठने पर या तिरछे बैठने पर अक्षर टेढ़े हो जाते हैं। चौथा कारण यह है कि छात्रों को लिखने का अभ्यास नहीं कराया जाता। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी महत्त्वपूर्ण हैं जिनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

कुछ छात्रों को ऐसी आदत पड़ जाती है कि वे शिरोरेखा के बिना ही अक्षर लिखते हैं। देवनागरी लिपि का कोई भी अक्षर शिरोरेखाविहीन नहीं होता। अतः सभी अक्षरों के ऊपर रेखा अवश्य खींचनी चाहिए।

कुछ छात्रों को लिपि का ठीक से ज्ञान नहीं होता और वे अक्षरों की रचना में ही त्रुटि कर जाते हैं। ऐसी त्रुटियाँ ष, श, ऋ, ज्ञ, झ, भ वर्णों को लिखने में प्रायः हो जाती हैं। मात्राओं के मिलाने में भी कुछ छात्र त्रुटि करते हैं, रु, रू, क्रम, कृमि, कर्म आदि को लिखने में मात्रा सम्बन्धी एवं संयुक्ताक्षर सम्बन्धी भूल हो जाती हैं। छात्रों को इनके शुद्ध रूप का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

कुछ छात्र अक्षरों और शब्दों को बहुत घना कर देते हैं और अक्षरों तथा शब्दों के बीच में उचित स्थान नहीं देते। इस कारण से भी लेख भद्दा लगता है।

कुछ छात्र अक्षरों को बड़ा-छोटा कर देते हैं जिससे एक पंक्ति में लिखे गये बड़े-छोटे अक्षर भद्दे लगते हैं। कुछ छात्र सीधी पंक्ति में भी नहीं लिख पाते, जिससे लेख अच्छा नहीं हो पाता।

लेख में विरामों का भी ध्यान रखना आवश्यक है। विरामविहीन लेख पढ़ने में बाधा उत्पन्न करते हैं और लेखन का उद्देश्य तो यही है कि दूसरे उसे चाव से पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेखन में गति का भी महत्त्व है। यदि अक्षरों को वनाने में बहुत समय लगता है तो चाहे अक्षर अच्छे ही क्यों न बनें, छात्र को भविष्य में अधिक लाभ नहीं हो सकता। अतः छात्रों को शीघ्र एवं सुन्दर लेखन अभ्यास कराना चाहिए। यह अभ्यास अनुलिपि, प्रतिलिपि एवं श्रुतलेख द्वारा कराया जा सकता है। नीचे संक्षेप में इस पर विचार किया जा रहा है।

अनुलिपि

लिखने का अभ्यास कराने के लिए अनुलिपि अच्छा साधन है। अनुलिपि की कापियाँ अलग से मिलती हैं। इन कापियों पर ऊपर पंक्ति में सुडौल एवं बड़े-बड़े आकार के अक्षर मुद्रित रहते हैं। नीचे की पंक्तियाँ रिक्त रहती हैं। बालक नीचे की रिक्त पंक्तियों में ऊपर की पंक्ति की नकल करते हैं और मुद्रित अक्षरों की ही भाँति सुन्दर एवं सुडौल अक्षर वनाने का प्रयत्न करते हैं। कुछ समय पूर्व प्रारम्भिक विद्यालयों में हिन्दी भाषा के शिक्षण में इस प्रकार की कापियों का पर्याप्त चलन था किन्तु अव इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। प्रारम्भिक विद्यालयों में यदि छात्र देवनागरी लिपि को अच्छी तरह से लिखना सीख जायँ तो वाद में अनुलिपि की आवश्यकता नहीं है। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में कक्षा ६ में जब संस्कृत प्रारम्भ की जाय तो संस्कृत के छपे हुए वाक्यों से युक्त कापियों का प्रयोग करना आवश्यक समझ पड़ता है।

प्रतिलिपि

प्रतिलिपि के लिए अलग से विशेष पुस्तिकाएँ नहीं होतीं। किसी भी पुस्तिका पर छात्र नियमित रूप से किसी पुस्तक या पत्रिका के किसी निर्दिष्ट अंश की प्रतिलिपि करते हैं। प्रारम्भिक विद्यालयों में पहले प्रतिलिपि पर वहुत बल दिया जाता था और छात्र को यह निर्देश दिया जाता था कि प्रतिदिन वह अपनी पाठ्य-पुस्तक या किसी अन्य पुस्तक के कुछ अंश की प्रतिलिपि करे। भाषा का शिक्षक दूसरे दिन नियमित रूप से इन प्रतिलिपियों को देखता था। अब इस क्षेत्र में भी कुछ शिथिलता आ गई है। संस्कृत भाषा की अपनी विशेषता है, अतः कम-से-कम कक्षा ६ तथा कक्षा ७ में संस्कृत-अंश की प्रतिलिपि अवश्य कराई जाय, जिससे छात्र सुन्दर एवं सुडौल अक्षर-रचना के साथ-साथ शुद्ध भी लिख सकें।

प्रतिलिपि में इस बात का छात्रों को ध्यान रखना चाहिए कि अक्षरों की वनावट एवं दो अक्षरों तथा दो शब्दों के बीच की दूरी उचित हो। साथ ही अक्षरों के आकार का भी ध्यान रखा जाय। शिरोरेखा लुप्त होनी चाहिए। जिस पृष्ठ पर प्रतिलिपि की जाय, उस पृष्ठ पर बायीं ओर हाशिया छोड़ देना चाहिए तथा पृष्ठ के ऊपर एवं नीचे भी कुछ स्थान छोड़ देना चाहिए। पृष्ठ पर लिखित एवं अलिखित स्थानों का बड़ा महत्त्व है। पृष्ठ का लगभग छठा भाग अलिखित अवश्य छूटना चाहिए, अन्यथा लिखावट अच्छी नहीं लगती। प्रतिलिपि में विराम-चिह्नों का ध्यान

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रखना चाहिए तथा दो पंक्तियों के बीच में एक पंक्ति का स्थान रिक्त छोड़ देना चाहिए। अक्षर सीधे लिखे जाने चाहिए।

श्रुतलेख

लेखन के अभ्यास के लिए श्रुतलेख भी अच्छा साधन है। श्रुतलेख से सुन्दर लिखने का तो अभ्यास होता ही है, साथ में शीघ्रतापूर्वक लिखने का अभ्यास भी होता है। श्रुतलेख का एक लाभ और है—इससे छात्रों में शुद्ध लिखने की आदत पड़ती है। श्रुतलेख द्वारा अध्यापक छात्र के लेखन का परीक्षण भी कर सकता है। वह यह देख सकता है कि अमुक छात्र ने लिखने में कितनी सुन्दरता, सुडौलता, कितनी शीघ्रता, कितनी शुद्धता एवं कितनी एकाग्रचित्तता का परिचय दिया है।

श्रुतलेख का अभ्यास छात्रों को प्रारम्भिक कक्षाओं में तो दिया ही जाता है, माध्यमिक कक्षाओं में, विशेषकर कक्षा ६ तथा ७ में संस्कृत भाषा के अध्यापन में भी इसे अवश्य प्रोत्साहन मिलना चाहिए। संस्कृत भाषा की अपनी विशेषताएँ हैं। इसकी विभक्तियाँ, हलन्त, अनुस्वार एवं विसर्ग कभी-कभी छात्रों को परेशानी में डालते हैं। छात्र इनमें त्रुटियाँ न करें, इसके लिए श्रुतलेख का अभ्यास डालना चाहिए।

श्रुतलेख गद्य-खण्ड या श्लोक का हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि श्रुतलेख पाठ्य-पुस्तक से ही बोला जाय। हाँ, गद्य-खण्ड या पद्य-खण्ड छात्रों के स्तर का अवश्य होना चाहिए, फिर वह अंश चाहे किसी पुस्तक का हो या किसी पत्रिका से लिया गया हो।

श्रुतलेख के अंश को बोलने के पहले छात्रों को ठीक से बैठने, कलम पकड़ने तथा लिखने के ढङ्ग के विषय में आवश्यक निर्देश देने चाहिए।

श्रुतलेख के अंश को बोलते समय अध्यापक को अपने बोलने की गति का ध्यान रखना चाहिए। वह यह भी देख ले कि बालक उसके वाचन को ध्यान से सुन रहे हैं या नहीं। यदि बालकों का ध्यान केन्द्रित न हो तो उन्हें आवश्यक निर्देश दे देने चाहिए।

सर्वप्रथम अध्यापक को चाहिए कि वह सम्पूर्ण अंश को एक बार पढ़कर कक्षा को सुना दे। इसके वाद थोड़ा-थोड़ा अंश पढ़े। वह थोड़ा-थोड़ा अंश सार्थक अंश हो एवं इसमें पदभङ्ग न हो। अन्त में पुनः सम्पूर्ण अंश को पढ़कर सुना दिया जाय जिससे छात्र अपने लेखन को भी दुहरा लें।

अध्यापक को बोलते समय अपने उच्चारण का ध्यान रखना चाहिए। वर्णों का उच्चारण स्पष्ट हो। पदों एवं वाक्यों का उच्चारण भी उचित रीति से किया जाय। बीच-बीच में रुक-रुक कर न बोला जाय और बीच में पदों या वाक्यों की आवृत्ति न की जाय। विचारों का ध्यान रखना भी आवश्यक है।

श्रुतलेख का संशोधन अवश्य किया जाना चाहिए। संशोधन की विधि पर एक अध्याय में अलग से विचार किया गया है। जब छात्रों को अपनी अशुद्धि का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पता लग जाय तो उन्हें यह निर्देश दिया जाय कि अशुद्ध शब्दों के शुद्ध रूप को दो-चार बार अपनी प्रतिलिपि की या श्रुतलेख की कापी पर लिखें, जिससे उन्हें शब्दों के शुद्ध रूप को लिखने का अभ्यास हो जाय।

संस्कृत-शिक्षण में श्रुतलेख का अत्यधिक महत्त्व है, अतः इसके शिक्षण-क्रम पर विचार कर लेना आवश्यक है। श्रुतलेख के शिक्षण-क्रम का सकेत किया जा रहा है।

श्रुतलेख का शिक्षण-क्रम

१. **सामान्य प्रारम्भिक बातें**

२. **उद्देश्य**

३. **सहायक सामग्री**

४. **पूर्व-ज्ञान**

५. **प्रस्तावना**—श्रुतलेख की प्रस्तावना में प्रारम्भ में कुछ आवश्यक निर्देश होंगे; यथा—कापी निकालना, ध्यान से सुनना, कलम ठीक करना, शान्त रहना आदि।

६. **विषयोपस्थापन**—

(क) सम्पूर्ण अन्विति का पाठ।

(ख) अन्विति की इकाइयों का शनैः-शनैः पाठ; छात्रों द्वारा लिखना।

(ग) पुनः सम्पूर्ण अन्विति का पाठ तथा छात्रों द्वारा लेखन को दुहराना।

(घ) संशोधन।

(ङ) अशुद्ध शब्दों का शुद्ध रूप लेखन।

७. **गृह-कार्य**

श्रुतलेख-पाठ-योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम·········· **दिनांक**··········

छात्राध्यापक का नाम········ **कक्षा**—६, **वर्ग**—द

कालांश—षष्ठ **अवधि**—४० मिनट

विषय—संस्कृत श्रुतलेख

सामान्य उद्देश्य—१. छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे संस्कृत की ध्वनियों को पहचान सकें तथा उनमें भेद कर सकें।

२. उन्हें सुनकर अर्थग्रहण करने की क्षमता प्रदान करना।

३. उन्हें संस्कृत भाषा को शुद्ध लिखने का अभ्यास कराना।

४. लेखन में की गयी त्रुटियों को पहचानने की क्षमता प्रदान करना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५. उन्हें इस योग्य बनाना कि वे ध्वनियों, शब्दों एवं वाक्यों के रूपों को समझ सकें एवं उनकी वर्तनी का स्मरण रख सकें।

सहायक सामग्री—लपेट श्यामपट्ट पर लिखित श्रुतलेख की सम्पूर्ण सामग्री।

पूर्व-ज्ञान— छात्र संस्कृत शब्दों को मातृभाषा में पढ़ते रहे हैं, श्लोकों को सामाजिक जीवन में सुनते रहे हैं और संस्कृत के वाक्यों से उनका परिचय हो गया है। वे देवनागरी लिपि पर अधिकार प्राप्त कर चुके हैं।

प्रस्तावना— छात्रो ! आज श्रुतलेख लिखा जायगा। अपनी पुस्तिकाएँ निकालो। कलम से लिखना है, पेंसिल का प्रयोग वर्जित है। मैं अनुच्छेद को बोलूँगा और तुम लोग ध्यान से शान्तिपूर्वक सुनोगे। जब लिखने को कहूँगा तब लिखोगे।

विषयोपस्थापन— अध्यापक निम्नलिखित अनुच्छेद का सस्वर स्पष्टतया वाचन करेगा—

चीनः अस्ति एकः विशालतमो देशः। तस्य जनसंख्यापि महती अस्ति। तस्य साम्यवादिशासनेन स्वार्थलिप्सया जनतासु महात् अत्याचारः विहितः। येन तासु महान् असन्तोषः व्याप्तः अभवत्। तस्य निराकरणाय स्वजनतायाः ध्यानमन्यत्र प्रेषणीयम् आवश्यकमासीत्। अतएव तेन भारतोपरि आक्रमणं कृतम्। इदयन्तु पुराकालतः एव सम्पूर्णं विश्वं जानाति यत् चीनीयाः यदैव अन्यदेशेभ्यः बलवत्तराः जाताः तदैव दुर्बलानि राष्ट्राणि आक्रम्य स्वदेशस्य सीमानम् अवर्द्धयन्। अस्य प्रमाणम् अन्यत्र नैव गवेषणीयम्। इतः कतिपयवर्षपूर्वम् एव त्रिविष्टपदेशः चीनेन बलात् विजितः। अन्येऽपि स्वप्रतिवेसिनो देशाः हिन्देशिया-ब्रह्मदेश-श्याम अफगानस्थानादयो तेन आतङ्किताः सन्ति। चीनः बलवान् शत्रुः अस्ति अतः अस्माभिः सैनिकक्षेत्रेषु सैन्यसज्जा कर्तव्या एव यतः तथैव तस्य वास्तवोऽवरोधः भविष्यति।

तत्पश्चात् उपर्युक्त अनुच्छेद को अनेक इकाइयों में बाँटकर अध्यापक एक-एक इकाई को धीरे-धीरे बोलेगा। उपयुक्त अनुच्छेद को निम्नलिखित ढंग से इकाइयों में विभक्त किया जा सकता।

चीनः। अस्ति एकः। विशालतमो देशः। तस्य। जनसंख्यापि। महती। अस्ति ! तस्य साम्यवादिशासनेन। स्वार्थलिप्सया। जनतासु। महान् अत्याचारः विहितः। येन। तासु। महान् असन्तोषः। व्याप्तः अभवत्। तस्य। निराकरणाय। स्व जनतायाः। ध्यानमन्यत्र। प्रेषणीयम्। आवश्यकमासीत्। अतएव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेन । भारतोपरि । आक्रमणं कृतम् । इदन्तु । पुराकालतः । एव । सम्पूर्ण विश्वं । जानाति । यत् चीनीयाः । यदैव अन्यदेशेभ्यः । बलवत्तराः जातः । तदैव दुर्बलानि राष्ट्राणि । आक्रम्य । स्वदेशस्य । 'सीमानम् अवर्द्धयन् । अस्य प्रमाणम् । अन्यत्र नैव । गवेषणीयम् । इतः । कतिपयवर्षपूर्वम् । एव । त्रिविष्टपदेशः । चीनेन बलात् । विजितः अन्येऽपि । स्वप्रतिवेशिनो । देशाः हिन्देशिया-ब्रह्मदेश । स्याम-अफगानस्थानादयो । तेन आतंकिताः सन्ति । चीनः । बलवान् शत्रुः अस्ति । अतः अस्माभि । सैनिकक्षेत्रेषु । सैन्यसज्जा । कर्त्तव्या एव । यतः तथैव तस्य । वास्तवोऽवरोधः । भविष्यति ।

छात्रों द्वारा लेखन—ज्यों-ज्यों अध्यापक बोलता जायगा, छात्र लिखते जायेंगे ।

पुनः वाचन— पुनः सम्पूर्ण अनुच्छेद का अध्यापक विरामों का ध्यान रखते हुए पाठ करेगा, जिससे छात्र लेखन को दुहरा लें तथा विराम लगा लें ।

संशोधन— छात्र आपस में एक-दूसरे की कापी बदल लेंगे और प्राप्त कापी पर संशोधन करेंगे । फिर छात्र कापी बदलकर अपनी-अपनी कापी ले लेंगे । अध्यापक लपेट श्यामपट्ट को अब टाँग देगा जिसमें सम्पूर्ण अनुच्छेद लिखा होगा । छात्र अपनी त्रुटियों को पुनः देखेंगे । जो शब्द अशुद्ध लिखे गये हैं, उनका शुद्ध रूप कम से कम पाँच बार छात्र अपनी कापी पर लिखेंगे ।

गृह-कार्य— उपर्युक्त अनुच्छेद की सुन्दर ढंग से घर पर प्रतिलिपि करो, अर्थात् सुन्दर हस्तलेख में इसे पुनः लिखो ।

श्रुतलेख-पाठ-योजना
[द्वितीय]

विद्यालय का नाम................ **दिनांक**...............

अध्यापक का नाम................ **कक्षा** ....

कालांश—चतुर्थ **अवधि**—४० मिनट

विषय—संस्कृत श्रुतलेख

सामान्य उद्देश्य—१. छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे संस्कृत की ध्वनियों को पहचान सकें तथा उनमें भेद कर सकें ।

२. उन्हें सुनकर अर्थ ग्रहण करने की क्षमता प्रदान करना ।

३. उन्हें संस्कृत भाषा को शुद्ध लिखने का अभ्यास कराना ।

४. लेखन में की गई त्रुटियों को पहचानने की क्षमता प्रदान करना ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५. उन्हें इस योग्य बनाना कि वे ध्वनियों, शब्दों एवं वाक्यों के रूपों को समझ सकें एवं उनकी वर्तनी का स्मरण रख सकें।

सहायक सामग्री—लपेट श्यामपट्ट पर लिखित श्रुतलेख की सम्पूर्ण सामग्री।

पूर्व ज्ञान— छात्र मातृभाषा के कालांशों में श्रुतलेख लिखने के अभ्यस्त हैं। वे संस्कृत के भी श्रुतलेख पिछली कक्षा में लिखते रहे हैं।

प्रस्तावना— आज हम लोग श्रुतलेख लिखेंगे। पहले ध्यान से सुनो। जब लिखने को कहूँगा, तब लिखोगे।

विषयोपस्थापन—अध्यापक निम्नलिखित श्लोकों का सस्वर वाचन करेगा—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते ॥

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो—
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

वेदाविनशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय।
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ॥
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

तत्पश्चात् उपर्युक्त श्लोकों को अनेक इकाइयों में बाँटकर अध्यापक एक-एक इकाई को धीरे-धीरे बोलेगा। उपर्युक्त श्लोकों को निम्नलिखित ढंग से इकाइयों में विभक्त किया जा सकता है—

य। एनं। वेत्ति। हन्तारं। यश्चैनं। मन्यते। हतम्।
उभौ। तौ। न विजानीतौ। नायं हन्ति। हन्यते।
न जायते। म्रियते वा। कदाचिन्नाय।
भूत्वा। भविता वा। न भूयः।
अजो। नित्यः। शाश्वतोऽयं। पुराणो।
न हन्यते। हन्यमाने। शरीरे।
वेदाविनाशिनं। नित्यं। य। एनमजमव्ययम्।
कथं। स पुरुषः। पार्थ। कं घातयति। हन्ति कम्।
वासांसि। जीर्णानि। यथा विहाय।
नवानि। गृह्णाति। नरोऽपराणि।
तथा। शरीराणि। विहाय।
जीर्णान्यन्यानि। संयाति। नवानि। देही।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छात्रों द्वारा लेखन—ज्यों-ज्यों अध्यापक बोलता जायगा, छात्र लिखते जायेंगे ।

पुनः वाचन— पुनः सम्पूर्ण पाठ का अध्यापक विरामों का ध्यान रखते हुए वाचन करेगा, जिससे छात्र लेखन को दुहरा लें और विराम लगा लें ।

संशोधन— छात्र आपस में एक-दूसरे की कापी बदल लें । प्राप्त कापी का संशोधन करें । पुनः अपनी-अपनी कापी वापस ले लें । अध्यापक अब लपेट श्यामपट को टाँग देगा, जिसमें सब श्लोक लिखे होंगे । जो शब्द अशुद्ध लिखे गये हों, उनका शुद्ध रूप कम से कम पाँच बार छात्र अपनी कापी पर लिखेंगे ।

गृह-कार्य— उपर्युक्त श्लोकों को सुन्दर हस्तलेख में घर पर पुनः लिखो, अर्थात् इनकी **प्रतिलिपि** करो ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१७ | रचना-शिक्षण

हमारे विद्यालयों में संस्कृत के अध्यापक संस्कृत रचना की ओर ध्यान नहीं देते। उनके ध्यान न देने का एक प्रमुख कारण यह रहता है कि छात्रों के लिए संस्कृत में लिखना तथा बोलना बहुत कठिन प्रतीत होता है। किन्तु मेरी समझ में यह स्वयं में कारण न होकर अध्यापकों की उपेक्षा का ही परिणाम है। कार्य-कारण के सम्बन्ध को यहाँ लोगों ने उलट दिया है और कारण को ही कार्य समझ लिया है। छात्रों को संस्कृत की कठिनता एवं जटिलता का मिथ्या ज्ञान कराया जाता है उसकी आड़ में संस्कृत के विरोधियों का मन्तव्य पुष्पित एवं फलित होता है। यह स्थिति अवांछनीय है। संस्कृत के अध्यापकों को भी रचना के क्षेत्र में आवश्यक कार्य करना चाहिए।

विचाराभिव्यक्ति के दो रूप

विचारों की अभिव्यक्ति के दो रूप हैं—लिखित तथा मौखिक। मौखिक अभिव्यक्ति प्राकृतिक है। सर्वप्रथम बालक अपनी मातृभाषा के माध्यम से आत्म-प्रकाशन करता है। वर्तमान भारत में संस्कृत के मौखिक रूप से भावाभिव्यक्ति की शक्ति नैसर्गिक नहीं कही जा सकती। संस्कृत में मौखिक आत्म-प्रकाशन व्यक्ति के अध्ययन का परिणाम है।

संस्कृत भाषा में विचाराभिव्यक्ति दोनों रूपों में अध्ययनात्मक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। मौखिक और लिखित—दोनों प्रकार की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों ही भाषा के प्रमुख कौशल हैं। उच्च स्तर पर छात्र से यह अपेक्षा की जाती है कि वह दोनों प्रकार के कौशल में दक्ष हों, किन्तु माध्यमिक स्तर तक के संस्कृत-छात्र से हम केवल यही आशा कर सकते हैं कि वह सरल संस्कृत के माध्यम से मौखिक तथा लिखित रूप में भावाभिव्यक्ति कर सके।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिखित रचना मौखिक रचना से अधिक स्थायी होती है। लिखित रचना में सोचने-विचारने का समय रहता है एवं व्याकरण की दृष्टि से उसकी पुनरावृत्ति की जा सकती है। मौखिक रचना तात्कालिक एवं सामयिक होती है, किन्तु मौखिक एवं लिखित रचना को पृथक् रूप से पढ़ाना ठीक नहीं है। वस्तुतः दोनों में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। बिना मौखिक भावाभिव्यक्ति में दक्ष हुए उच्च कोटि की लिखित रचना सम्भव नहीं है और बिना लिखित रूप से भावों को निबद्ध किए हुए मौखिक भावाभिव्यक्ति क्रमबद्ध एवं स्पष्ट नहीं हो सकती। यदि लिखित रचना के पूर्व किसी विषय पर मौखिक रूप से विचार-विमर्श कर लिया जाय तो अच्छा रहता है और किसी विषय पर वक्तव्य देने के पूर्व उस विषय की मुख्य बातों को पहले लिख लिया जाय तो और भी अच्छा रहता है।

रचना-शिक्षण के उद्देश्य

मौखिक रचना का उद्देश्य बालकों को सरल और शुद्ध शब्दों में अपने भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रदान करना है। संस्कृत-शिक्षण के प्रारम्भिक स्तर (कक्षा ६, ७, ८) पर बालकों को इस योग्य बनाना रहता है कि वे प्रश्नों का उत्तर सरल किन्तु पूर्ण वाक्य में दें। मध्य स्तर पर उनसे यह भी आशा की जाती है कि वे अपने अनुभव को स्वाभाविक रूप से संस्कृत में व्यक्त कर सकें। उच्च स्तर पर छात्रों को इस योग्य बनाना चाहिए कि वे सरल संस्कृत में वार्त्तालाप कर सकें तथा अपने भावों को लिखित रूप में व्यक्त कर सकें।

माध्यमिक स्तर तक अर्थात् कक्षा १२ तक छात्रों में इतनी योग्यता आ जानी चाहिए कि वे संस्कृत के माध्यम से निम्नलिखित रचना-कार्य कर सकें—

१. प्रश्नों का उत्तर पूर्ण वाक्य में देना।
२. सूक्तियों का प्रयोग।
३. वार्त्तालाप के द्वारा विशेष अवसरों के अनुकूल भाषा का प्रयोग।
४. संक्षिप्तीकरण (लम्बे अनुच्छेद को संक्षेप में लिखने की योग्यता)।
५. किसी विषय पर दो-एक अनुच्छेद स्वयं लिखना; जैसे—विद्या, सत्संग, आश्रम आदि पर कुछ अनुच्छेद लिखना।
६. दिनचर्या का वर्णन।
७. जीवन-चरित के रूप में कुछ वाक्य लिखना।
८. संवाद लिखना।
९. पत्र लिखना।

प्रारम्भिक स्तर पर रचना-कार्य

संस्कृत-शिक्षण की दृष्टि से छठी, सातवीं एवं आठवीं कक्षाएँ प्रारम्भिक स्तर की कक्षाएँ कही जायेंगी। इन कक्षाओं में अग्रलिखित रचना-कार्य करना उपयुक्त रहेगा, क्योंकि इस स्तर पर छात्रों को भाषा का स्वल्प ज्ञान रहता है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. **चित्रों पर प्रश्न करना**—अध्यापक किसी पुष्प, पशु, विद्यालय, घर या बाजार आदि के चित्र पर सरल प्रश्न करता जाता है और छात्र सरल वाक्यों में प्रश्नों का उत्तर देते जाते हैं। इस स्थल पर प्रश्नों के उत्तर में आने वाले शब्दों का ज्ञान करा देना भी उचित रहेगा।

२. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करना**—वाक्य में एक-दो शब्दों का स्थान छोड़ दिया जाता है और छात्र उनमें उपयुक्त शब्द लिखता है।

३. **उपयुक्त शब्द चुनना**—एक वाक्य लिखते हैं, किन्तु उनमें एक शब्द का स्थान छोड़ देते हैं और कोष्ठक में उपयुक्त शब्द के अतिरिक्त कुछ अन्य शब्द लिख देते हैं। छात्र सही शब्द को चुनकर वाक्य पूरा करता है।

४. **दिए हुए शब्दों एवं उक्तियों से वाक्य-रचना**—पाठ्य-पुस्तकों से शब्दों एवं उक्तियों को लेकर वाक्य बनाने की शिक्षा भी दी जा सकती है।

५. **प्रश्नों का उत्तर लिखना**—छात्रों को कुछ प्रश्न दे दिये जायँ और उनसे उन प्रश्नों का उत्तर लिखने को कहा जाय।

६. **शब्द-परिवर्तन**—वाक्यों में आये हुए शब्दों को बदलकर दूसरे शब्द लिखने का अभ्यास भी कराया जा सकता है।

७. **उत्तरों के प्रश्न लिखना**—उत्तर लिख दिये जायँ और छात्रों को उन प्रश्नों को लिखने के लिए कहा जाय जिनके वे उत्तर हों।

मध्य स्तर पर रचना-कार्य

संस्कृत-शिक्षण की दृष्टि से मध्य स्तर पर उच्चतर माध्यमिक कक्षाएँ होंगी। कक्षा ९, १०, ११ और १२ में जब छात्र आते हैं तो वे संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त किये रहते हैं। वे संस्कृत की प्रवृत्ति से कुछ परिचित होने लगते हैं, किन्तु अभी भी उनका भाव-ज्ञान बहुत ही स्वल्प होता है, अतः इस स्तर पर भी उन्हें रचना-कार्य की प्रारम्भिक बातें ही सिखानी चाहिए। इस स्तर पर निम्नलिखित रचना-कार्य उपयुक्त रहेंगे—

१. **चित्रों पर प्रश्न करना।**
२. **प्रश्नों के उत्तर लिखना।**
३. **उत्तरों के प्रश्न लिखना।**
४. **रिक्त-स्थान पूर्ति।**
५. **उपयुक्त शब्द-चयन।**
६. **प्रस्तुत शब्दों एवं उक्तियों से वाक्य-रचना**
७. **शब्द-परिवर्तन।**

उपर्युक्त रचना-कार्य प्रारम्भिक स्तर पर भी थे। ये माध्यमिक स्तर पर भी छात्रों के बौद्धिक स्तर के अनुकूल होने चाहिए।

८. **विभक्ति एवं प्रत्यय लगाकर नये शब्द बनाना।**
९. **उपसर्गों के प्रयोग द्वारा नये शब्दों का प्रयोग सीखना।**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१०. **वार्त्तालाप लिखना**—दो मित्रों की वार्त्ता, पिता-पुत्र की वार्त्ता तथा दो पशुओं की वार्त्ता को सरल वाक्य में लिखने का प्रारम्भ किया जा सकता है।

११. **पत्र-लेखन**—पत्र-लेखन भी रचना की एक शैली है। संस्कृत की कक्षाओं में पत्र-लेखन पर ध्यान नहीं दिया जाता है। इसीलिए संस्कृत में पत्र लिखने की परम्परा नहीं है। मध्य स्तर पर पत्र-लेखन की कला की शिक्षा प्रारम्भ हो जानी चाहिए। इस स्तर पर केवल निजी एवं पारिवारिक पत्रों के लिखने की ही शिक्षा देनी चाहिए।

१२. **अनुच्छेद रचना**—किसी उपयुक्त विषय पर दो-तीन अनुच्छेद लिखने की शिक्षा का प्रारम्भ करना चाहिए।

१३. **संक्षेपण**—किसी लम्बे अनुच्छेद को संक्षेप में लिखने की कला की शिक्षा का प्रारम्भ मध्य स्तर से हो जाना चाहिए।

उच्च स्तर पर रचना कार्य

मध्य स्तर को पार करते-करते छात्रों को संस्कृत भाषा का कुछ ज्ञान हो जाता है और वे सरल संस्कृत में अपने भावों को व्यक्त करने में समर्थ हो जाते हैं। अतः उच्च कक्षाओं में निम्नलिखित ढङ्ग के रचना-कार्य होने चाहिए—

१. **रिक्त-स्थान पूर्ति।**

२. **प्रश्नोत्तर।**

३. **शब्द-रचना।**

४. **संवाद-लिखना।**

५. **पत्र-लेखन**—

(क) निजी एवं पारिवारिक।

(ख) व्यावहारिक; यथा—निमन्त्रण-पत्र, बधाई-पत्र, संवेदना-पत्र, आवेदन-पत्र, स्मृति-पत्र आदि।

६. **संस्कृत-पत्र-सम्पादक के पास समाचार भेजना तथा घटनाओं का विवरण लिखना।**

७. **डायरी लिखना।**

८. **सारांश तथा संक्षिप्तीकरण।**

९. **मौलिक रचना**—कहानी, जीवनी, नाटक, आत्मकथा आदि।

कुछ सावधानियाँ

संस्कृत में रचना-कार्य की दृष्टि से निम्नलिखित सावधानियाँ वरती जानी चाहिए—

१. सुलेख का अभ्यास होना चाहिए और शिक्षक को लिखावट पर बल देना चाहिए।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२. जहाँ तक हो सके, रचना-कार्य कक्षा में ही हो।
३. छात्रों को शब्द-रचना एवं वाक्य-रचना का अभ्यास करने के बाद उनसे लिखने को कहा जाय, जिससे अशुद्धियाँ न हों।
४. कक्षा के अनुकूल शब्द-समूह एवं सूक्तियों को अध्यापक अवश्य प्रदान करें।
५. उत्तम एवं आदर्श रचनाओं का उदाहरण कक्षा में प्रस्तुत करना चाहिए जिससे छात्र अच्छी रचना से प्रेरणा ले सकें।
६. विषय-सामग्री छात्रों के वातावरण से ही ली जाय। अपने वातावरण में छात्रों की स्वाभाविक रूप से रुचि होती है।
७. अध्यापक योग्य सामग्री का निर्देश दे, किन्तु छात्रों को विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता रहनी चाहिए।
८. विस्तार की अपेक्षा शुद्धता, सुगठन, क्रमबद्धता तथा सुसम्बद्धता पर ध्यान देना चाहिए।
९. अध्यापक को चाहिए कि वह कक्षा के लिए उपयुक्त पुस्तकों का निर्देश स्वयं करे, जिससे छात्रों को पुस्तक से हर समय सहायता मिल सके।

शिक्षण-क्रम

मध्य स्तर पर किसी उपयुक्त विषय पर अनुच्छेद लिखना प्रमुख रचना-कार्य है। प्रत्येक रचना-कार्य में, विशेष रूप से अनुच्छेद लेखन में, पाठ-योजना की रूपरेखा एवं चित्रण के क्रम का ढंग निम्नलिखित होगा—

१. **सामान्य प्रारम्भिक बातें।**
२. **सामान्य उद्देश्य।**
३. **विशिष्ट उद्देश्य।**
४. **सहायक सामग्री (चित्र आदि)।**
५. **पूर्व-ज्ञान।**
६. **प्रस्तावना**—अनुच्छेद-लेखन, पत्र-लेखन, संवाद-लेखन आदि के लिए उपयुक्त विषय का निर्वाचन ही प्रस्तावना है। यह कार्य छात्रों की सहायता से हो तो अधिक अच्छा है। इसी स्थल पर उद्देश्य-कथन कर दिया जाय। प्रस्तावना उपयुक्त प्रश्नों द्वारा भी हो सकती है।
७. **विषयोपस्थापन**—
   (क) अध्यापक द्वारा शब्दों एवं सूक्तियों का बताना—केवल वही शब्द जो प्रस्तुत रचना-पाठ के लिए आवश्यक हैं। इन शब्दों का अनेक वाक्यों में प्रयुक्त करके छात्रों को बताना चाहिए।
   (ख) लगभग पन्द्रह-बीस आदर्श वाक्यों को अध्यापक मौखिक रूप से प्रस्तुत करेगा, जिनमें सम्बन्धित विषय का वर्णन होगा। इन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाक्यों में पठित शब्दों का ही प्रयोग होगा । वाक्यों को दो-एक बार दुहराया जायगा । यह कार्य प्रश्नोत्तर विधि से भी हो सकता है ।

(ग) छात्रों द्वारा रचना-कार्य—छात्र अनुच्छेद अथवा पत्र लिखेंगे ।

८. **संशोधन**—यथासम्भव दो-एक छात्रों से कक्षा में ही उनके निबन्ध पढ़वाकर शीघ्रता से उनका संशोधन और शेष कापियों को एकत्र करके अध्यापक द्वारा बाद में संशोधन । संशोधन पर आगे पुनः विचार किया जायगा ।

९. **गृह-कार्य**—अन्य विषयों के वर्णन में सहायक १०-१५ नये शब्दों को बताकर छात्रों से उस विषय पर घर से अनुच्छेद लिखकर लाने को कहना ।

रचना-पाठ-योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम........ **दिनांक**........

अध्यापक का नाम........ **कक्षा** – ८, **वर्ग**—द

विषय—संस्कृत रचना, **उपविषय**—गजः **कालांश**—पंचम, **अवधि**—४० मिनट

सामान्य उद्देश्य— १. छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे प्रश्नों का उत्तर सरल वाक्यों में दे सकें ।

२. उन्हें सरल एवं शुद्ध भाषा में मौलिक रूप से अपने भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रदान करना ।

३. उन्हें अपने भावों को लिखित रूप से देने की योग्यता प्रदान करना ।

४. उन्हें स्वयमेव संस्कृत रचना करने की प्रेरणा देना ।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को 'हाथी' पर कुछ वाक्य लिखने की योग्यता प्रदान करना ।

सहायक सामग्री— हाथी का एक चित्र ।

पूर्व-ज्ञान— छात्र हाथी को अनेक बार देख चुके हैं और वे मातृभाषा में उसका वर्णन कर सकते हैं ।

प्रस्तावना— १. पशुओं में ऐसे कौन-से पशु हैं जिन पर हम सवारी करते हैं ?

२. इनमें सूँड़ वाला पशु कौन-सा है ?

३. इस चित्र में तुम क्या देखते हो (चित्र दिखाकर) ? आज हम लोग हाथी के विषय में संस्कृत में कुछ वाक्य बोलने और लिखने की चेष्टा करेंगे ।

विषयोपस्थापन— अध्यापक श्यामपट पर निम्नलिखित शब्द लिखेगा और उसका अर्थ स्पष्ट कर देगा । छात्र भी इन शब्दों का अर्थ लिख

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेंगे। अध्यापक इन शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करके भी मौखिक रूप से बता देगा—

गजः, विशालम्, ह्रस्वे, अक्षिणी, पादाः, स्तम्भवत् दृढ़ाः, स्थूलाः, कर्णौ, मुखादवहिः निक्षिपति, शुण्डया, पिवति, जिघ्रति, श्वसिति, धीरः, गंभीरः, उपयोगः, वाहनकार्ये, वरयात्रायाम्, मृगया।

छात्रो, अव मैं कुछ प्रश्न पूछूंगा जिनका उत्तर तुम यथा-सम्भव संस्कृत में दो। यदि संस्कृत में न दे सको तो हिन्दी में ही दो। (छात्रों के उत्तर न देने पर अथवा हिन्दी में उत्तर देने पर अध्यापक स्वयं संस्कृत वाक्य कह देगा)—

प्र०—(हाथी का चित्र दिखाकर) कः एषः पशुः ?

उ०—एषः गजः अस्ति ?

प्र०—कीदृशोऽयं पशु।

उ०—अयं एकः महान् पशुः अस्ति।

प्र०—अस्य शरीरं कीदृशम् ?

उ०—अस्य शरीरम् अतिविशालम् अस्ति।

प्र०—अस्य देहे के द्वे अंगे ह्रस्वे भवतः ?

उ०—अस्य दोहे अक्षिणी ह्रस्वे भवतः।

प्र०—अस्य कति पादाः सन्ति ?

उ०—अस्य चत्वारः पादाः सन्ति।

प्र०—ते कीदृशाः भवन्ति ?

उ०—ते स्तम्भवत् दृढ़ा स्थूलाश्च भवन्ति।

प्र०—अस्य कीदृशौ कर्णौ ?

उ०—अस्य कर्णौ शूर्पवत् दीर्घौ भवतः।

प्र०—अस्य दीर्घौ दन्तौ कुत्र तिष्ठतः ?

उ०—अस्य दीर्घौ द्वौ दन्तौ मुखाद्वहिः तिष्ठतः।

प्र०—सः कया खाद्यवस्तूनि मुखे निक्षिपति ?

उ०—सः स्वशुण्डया खाद्यवस्तूनि मुखे निक्षिपति।

प्र०—सः शुण्डया कानि अन्यानि कार्याणि करोति ?

उ०—सः तया जलं पिबति, जिघ्रति, श्वसिति च।

अध्यापक-कथन—एवं हस्तस्य सर्वं कार्यं शुण्डया एवं करोति।

प्र०—कीदृशी अस्य प्रकृतिः ?

उ०—(अध्यापक-कथन)—गजः प्रकृत्या धीरः गम्भीरश्च भवति। स्वबुद्धि-प्रभावेश अयं जनानां उपकारं करोति। मानापमानं च जानाति।

प्र०—सर्वेषु पशुषु तस्य कीदृशी स्थितिः ?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उ०—सः सर्वेषु पशुषु बुद्धिमान् बलवान् च भवति ।
प्र०—प्राचीनकाले अस्य कः उपयोगः आसीत् ?
उ०—प्राचीनकाले युद्धेषु विशेषतया अस्योपयोगः आसीत् ।
प्र०—केषु अन्येषु कार्येषु अस्योपयोगः भवति ?
उ०—वाहनकार्ये वर यात्रायां मृगयादिषु च अन्योपयोगः भवति ।

अध्यापक-कथन—गजं भारतवर्षस्य दर्शनीयः सर्वश्रेष्ठश्च पशुः अस्ति । अस्य विशालं शरीरं, गम्भीरः स्वभावः, मन्दा गतिः, अनुशासनपालनं च लोक स्वाभिमुखं आवर्जयति ।

कक्षा-कार्य— श्यामपट्ट पर लिखे हुए शब्दों का उपयोग करते हुए 'गजः' शीर्षक देकर संस्कृत में कुछ वाक्य लिखो जिनमें हाथी का वर्णन हो ।

संशोधन— अध्यापक दो-एक छात्रों को निबन्ध पढ़ने को कहेगा और स्वयं उनका संशोधन करता जायगा। शेष कापियों को वह बाद में देख लेगा ।

गृह-कार्य — हिमालयः, उत्तरस्यां दिशि, वनस्पतयः, अनेकाः, वन्यपशवः, तीर्थस्थानानि, तपोवनानि, औषधयः, विशालः, लभ्यन्ते, सन्ति, निवसन्ति, प्राप्यन्ते शब्दों की सहायता से हिमालयः विषय पर संस्कृत में कुछ वाक्य लिखो ।

रचना-पाठ-योजना
[द्वितीय]

विद्यालय का नाम............... | दिनांक...............
अध्यापक का नाम............... | कक्षा—१२, वर्ग—अ
कालांश—षष्ठ | अवधि—४० मिनट
विषय—संस्कृत-रचना | शीर्षक—'वर्षाकालः'

सामान्य उद्देश्य—
१. छात्रों में वार्तालाप के द्वारा विशेष अवसरों के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न करना ।
२. सूक्तियों के समुचित प्रयोग की शिक्षा देना ।
३. प्रश्नों का उत्तर पूर्ण वाक्य में देने योग्य बनाना ।
४. किसी भी विषय का विस्तार कर सकने अथवा संक्षिप्तीकरण करने की प्रतिभा का सृजन करना ।
५. विविध विषयों पर स्वतन्त्रतापूर्वक अपने भावों की संस्कृत-भाषा में अभिव्यक्ति कर सकने की सामर्थ्य प्रदान करना ।
६. संस्कृत-भाषा के उच्चारण और लेखन की शक्ति का विकास करना ।
७. अनेक प्रकार की वाक्य-संगठना भावानुकूल कर सकने की प्रवीणता उत्पन्न करना ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशिष्ट उद्देश्य—१. भारत में कृषि के लिए एवं जन-जीवन के अस्तित्व के लिए वर्षा का महत्त्व समझाना।

२. वर्षा-ऋतु में होने वाले वातावरण के आनन्दमय परिवर्तन के वर्णन की शक्ति देना।

सहायक सामग्री—वर्षाकाल में वन व ग्राम की शोभा के चित्र-द्वय तथा कक्षोपयोगी अन्य सामान्य उपकरण।

पूर्व ज्ञान— १. छात्र वर्षा के महत्त्व और उसके आगमन के मासों का सामान्य ज्ञान रखते हैं।

२. छात्र वर्षाकाल में होने वाले वसुन्धरा के दिव्य परिवर्तनों से भी परिचित हैं।

३. छात्र षड्ऋतुओं का भी साधारण ज्ञान रखते हैं।

प्रस्तावना— १. एकस्मिन् वर्षे कति मासाः भवन्ति ?

२. वर्षे कति ऋतुवः भवन्ति ?

३. षड्ऋतूनाम् कानि नामानि सन्ति ?

४. ग्रीष्मर्तौः पश्चात् को नाम ऋतुः प्रारम्भते ?

५. अयं ऋतुः वर्षा इति कथं कथ्यते ?

उद्देश्य-कथन— ग्रीष्मर्तौ सूर्यस्य प्रचण्डाः किरणाः भूमिं दहन्ति। तापेन सर्वे प्राणिनः विकलाः जायन्ते जलाशयेषु जलाभावः वर्तते। जीवनं दुस्सह दुर्वहं च भवति। तदैव आकाशे मेघाः एकत्रीभवन्ति वर्षन्ति च भूमौ। अयमेव वर्षा ऋतुः। एतम् वर्षाऋतुं समधिकृत्यैव वयमद्य एकां निबन्धरचना विधास्यामः।

विषयोपस्थापन—अध्यापक वर्षा-ऋतु में आकाश व वन की शोभा वाले प्रथम चित्र का छात्रों के सम्मुख प्रदर्शन करेगा।

प्रश्न	उत्तर
१. वर्षर्तौ आकाशे के समुद-भवन्ति ?	१. वर्षर्तौ आकाशे मेघाः समुद् भवन्ति।
२. ते किं कुर्वन्ति ?	२. ते तत्र इतस्तः विचरन्ति।
३. तेषां रूप-वर्णनं कुरु ?	३. परस्परं संघर्षणं प्राप्य घोरगर्जनां कुर्वन्ति।
	४. ते विचरन्तः कज्जल-पर्वताः इव प्रतीयते।

अध्यापक-कथन—एकेन कविना उक्तम्—

(लपेट श्यामपट का प्रदर्शन करेगा)

"क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशम्,
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति।
क्वचित् क्वचित् [illegible]ांत सन्निरुद्धम्।
रूप यथा शान्तमहार्णवस्य।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

	५. कदाचित् ते आकाशे एकत्री भवन्ति अपरे क्षणे एवं विलीनाः भवन्ति।
	६. वर्षर्तौ नभसि यदा वारिदाः सम्बलिताः भवन्ति तदा भूमौनिविड-अन्धकारः जायते।
४. आकाशे विद्युत कथं भाति ?	७. यदा कदा तेषु मेघेषु स्फुरन्ती विद्युत चित्तं आवर्जयति।
५. घनाः भूम्यै किं प्रयच्छन्ति ?	८. सूर्यतापतप्तायै भूम्यै ते मेघाः शीतल जल प्रयच्छन्ति।
६. जलधाराः ताः कथं प्रतीयते ?	९. ताः अनवरतं भूमौ पतिताः जलधाराः मेघमण्डपाद् आलम्बिताः कौशेय-रज्जवइव प्रतीयन्ते।
७. चित्रे वनस्य शोभा कथं दृश्यते।	१०. वर्षर्तौ प्रकृतेः शोभा अद्भुता जायते।
८. वर्षर्तौ वनस्पतयः कथं भान्ति ?	११. द्रुमः बल्लर्यश्च हरिताः प्रफुल्लिताश्च वर्तन्ते।
९. अस्मिन् ऋतौ भूमौ कानि अंकुरितानि भवन्ति ?	१२. भूमौ नवानि बीजानि अंकुरितानि भवन्ति।
१०. भूमिः कथं विभाति ?	१३. सर्वत्रैव पृथ्वी हरितदुकूलावृताइव शोभते।
	१४. पुष्पाणि विकसन्ति बहुविधानि।
११. समीरः कथं वहति ?	१५. समीरः शीतलः सुरभितः भवति कदाचित् रभसा पुनश्च मन्दं-मन्दं वहति।
१२. नवीनं जलं पृथिव्यां कथं प्रवहति।	१६. वर्षासु नवीन जलं निर्झरान् सरांसि नदीश्च प्रपूरयति।
	१७. पर्वतेत्रु कलकल-ध्वनिना निर्झराः अंग्रेसरन्ति।
(द्वितीय चित्र का प्रदर्शन किया जायगा)	१८. तट-मर्यादां मित्त्वा नद्यः वेगेन समुद्रं प्रति प्रयान्ति।
१३ चित्रं विलोक्य ग्रामस्य शोभां वर्णयत् ?	१९. वर्षर्तौ ग्रामीणां क्षेत्राणि शस्यश्यामलानि भवन्ति।
१४. कृषकाः किम् अनुभवन्ति ?	२० कृषकाः मोदमग्नाः जायन्ते।
१५. चित्रे ग्रामस्य मार्गाः कथं दृश्यन्ते ?	२१. यद्यपि वर्षर्तौ ग्रामीणां मार्गाः पङ्किलाः भवन्ति, तत्र कृमय

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

	उत्पद्यन्ते पुनरपि अन्नोत्पादनस्य आशया प्रमुदिता एवं सर्वे भवन्ति।
१६. वर्षर्तौ जीवानां दशां का भवति ?	२२. वने मयूराः नृत्यन्ति।
	२३. इन्द्रगोपाः प्रादुर्भवन्ति।
	२४. जलाशयेषु मण्डूकाः शब्दं कुर्वन्ति।
	२५. पक्षिणः कलं कूजन्ति पशवश्चसुखिनः भूत्वा विहरन्ति।
१७. वर्षर्तु-शोभाःसर्वेषु ऋतुषु कीदृशी अस्ति ?	२६. ममेदं दृढं मतं यत्—वर्षर्तौ यादृशी प्रकृतिशोभा रमणीया भवति न तादृशी अन्यस्मिन् कस्मिश्चन् ऋतौ सा दृश्यते। अस्मिन् ऋतौ सर्वे मोदं अनुभवन्ति।

(लपेट श्यामपट्ट प्रदर्शन द्वारा)

अध्यापक-कथन—निगदितं वाल्मीकिना रामायणे यत्—

१. मत्ताः गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्रा,
वनेषु विश्रान्ततराः मृगेन्द्राः।
रम्याः नगेन्द्राः निभृताः नरेन्द्राः,
प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः।

२. वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति, भान्ति,
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्याः घनाः मत्तगजा वनान्ताः,
प्रियविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गा॥

संशोधन— अध्यापक कुछ छात्रों की पंजिकाओं में लिखित निबन्ध को पढ़वा कर सुनेगा। कुछ छात्रों के लेखों में संशोधन भी करेगा। अन्य छात्रों की पंजिकाओं को एकत्र कर संशोधनार्थ ले जायगा।

गृह-कार्य— इसी प्रकार 'वसन्त ऋतु' पर एक निबन्ध लिखो।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१८ | अनुवाद-शिक्षण

अनुवाद की उपयोगिता

अनुवाद की चर्चा हम पीछे कर आये हैं, किन्तु वहाँ पर विशेष बल संस्कृत का हिन्दी अथवा अन्य भाषाओं में अनुवाद पर था। यहाँ हम अनुवाद पर विचार इस दृष्टि से कर रहे हैं कि मातृभाषा के अनुच्छेदों का संस्कृत भाषा में अनुवाद करना आवश्यक है।

प्रारम्भिक स्तर पर छात्रों से हम यह आशा नहीं कर पाते कि वे अनुच्छेदों का संस्कृत में अनुवाद कर सकेंगे। मध्य स्तर पर भी यह कार्य कुछ जटिल प्रतीत होता है। इसीलिए विद्यालयों में संस्कृताध्यापक प्रायः अनुवाद को एक बला समझते हैं और उससे बचना चाहते हैं किन्तु अनुवाद की उपयोगिता से आँख नहीं मूँदी जा सकती। अनुवाद के महत्त्व पर एक अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। अतः संस्कृत के छात्रों को इस योग्य तो बनाना ही है कि वे मातृभाषा में उद्‌बुद्ध भावों को आवश्यकता पड़ने पर संस्कृत के माध्यम से व्यक्त कर सकें। इस दृष्टि से अनुवाद का शिक्षण आवश्यक है।

अनुवाद-शिक्षण के उद्देश्य

अन्य भाषाओं के अनुच्छेदों का संस्कृत में अनुवाद करने के कुछ स्पष्ट उद्देश्य हैं, जिन्हें हम निम्नलिखित ढंग से लिख सकते हैं—

१. छात्रों को संस्कृत के माध्यम से विचारों को आदान-प्रदान करने की योग्यता प्रदान करना।
२. विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न भाषाओं के साहित्यों का तुलनात्मक ज्ञान प्रदान करना।
३. छात्रों को मातृभाषा अथवा अन्य भाषा में अभिव्यक्त भाव एवं शैली को समझाना एवं उनकी रक्षा करना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. दूसरों के विचारों को उनकी भाषा एवं शैली के अनुसार संस्कृत भाषा में लिखने का अभ्यास कराना ।
५. अन्य आधुनिक भाषाओं में अभिव्यक्त विचारों को संस्कृत भाषा में अभिव्यक्त करके संस्कृत-साहित्य को आधुनिक विचारों से अभिवृद्ध करना ।

अनुवाद के रूप

साधारणतः अनुवाद के निम्नलिखित रूप दिखाई पड़ते हैं—

१. अक्षरशः अनुवाद
२. छायानुवाद
३. तथ्यानुवाद

(१) **अक्षरशः अनुवाद**—इनमें एक भाषा के शब्दों के स्थान पर संस्कृत भाषा के समानार्थक शब्दों का प्रयोग होता है, अतः इसे शब्दशः अनुवाद भी कहा जाता है । भाषा की इकाई अक्षर या शब्द न होकर वाक्य होते हैं, किन्तु अक्षरशः अनुवाद में अक्षरों एवं शब्दों को ही अत्यधिक महत्त्व दे दिया जाता है । इससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है; उदाहरणार्थ—'मेरा बदन' प्रचलित हिन्दी में 'मेरा शरीर' का द्योतक है । किन्तु यदि इसका अनुवाद संस्कृत में 'मम वदनम्' कर दिया जाय तो भिन्नार्थक हो जायगा । 'सैन्धवमानय' का अनुवाद यदि 'नमक लाओ' कर दिया जाय और आवश्यकता घोड़े की हो, तो अनर्थ हो जायगा । अक्षरशः अनुवाद 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' के तुल्य होता है । यह सर्वथा त्याज्य है ।

(२) **छायानुवाद**—यह अनुवाद की दूसरी शैली है । इसे मर्मानुवाद भी कहा जाता है । इसमें एक भाषा के अनुच्छेद के सारांश को समझकर दूसरी भाषा में अनूदित कर दिया जाता है । इसमें भावाभिव्यक्ति की समता पर बल तो दिया जाता है, किन्तु मूल भाषा का केवल सार ले लिया जाता है । इस प्रकार यह केवल निष्कर्ष रह जाता है और भाषा एवं शैली उपेक्षित रह जाती है ।

(३) **तथ्यानुवाद**—अनुवाद की तीसरी शैली तथ्यानुवाद है । इसमें केवल शब्दों के स्थान पर शब्द नहीं दिये जाते और न ही केवल सारांश तक ही सीमित रहा जाता है, वरन् मातृभाषा या अन्य भाषा में व्यक्त भाव और आत्मा को संस्कृत में प्रतिविम्बित करने का प्रयत्न किया जाता है । इसमें मूल भाषा के भाव तथा शैली दोनों का निर्वाह किया जाता है । यदि हिन्दी के किसी अनुच्छेद का संस्कृत में अनुवाद किया जाता है तो वह इस प्रकार किया जाय मानो हिन्दी का मूल लेखक स्वयं ही सस्कृत में लिख रहा हो । अनुवाद की यह तीसरी शैली सर्वोत्तम शैली है ।

अनुवाद-शिक्षण की विधियाँ

अनुवाद-शिक्षण की सामान्यतः तीन विधियाँ प्रचलित हैं—

१. पुस्तक-विधि
२. दुभाषिया-विधि
३. तुलना एवं अनुकरण-विधि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१) **पुस्तक-विधि**—इस विधि में पुस्तकों द्वारा अनुवाद की शिक्षा दी जाती है। अनुवाद-शिक्षण की विशेष पुस्तकें तैयार की जाती हैं जिनमें व्याकरण क्रम से मातृभाषा में वाक्य लिखे होते हैं। एक-एक प्रकार के वाक्यों को ले लिया जाता है और उन्हें संस्कृत में अनूदित कर दिया जाता है। पहले सरल वाक्य रहते हैं, तत्पश्चात् मिश्रित एवं संयुक्त वाक्य।

(२) **दुभाषिया विधि**—यह विधि सामान्यतः औपचारिक आयोजनों एवं बड़े-बड़े सम्मेलनों में काम आती है। इसमें एक व्यक्ति अपनी मातृभाषा में बोलता है और दूसरा व्यक्ति उसके भावों को संस्कृत में व्यक्त करता चलता है। संस्कृत विश्व-परिषद् के अधिवेशनों में जब राष्ट्रपति या अन्य व्यक्ति हिन्दी में बोलते हैं तो उनके भाषण को उसी समय संस्कृत में अनुवाद किया जाता है। एक वाक्य बोलने के पश्चात् ही वाक्य को संस्कृत में अनूदित कर दिया जाता है और इस प्रकार सम्पूर्ण भाषण का अनुवाद हो जाता है। कक्षा में भी इस पद्धति को कुछ-न-कुछ प्रयोग में ला सकते हैं। किसी अनुच्छेद को लेकर उसे एक छात्र से पढ़वाया जाय। एक-एक वाक्य को अध्यापक सुन्दर संस्कृत में अनुवाद करता चले। इस विधि से छात्रों को संस्कृत में बोलने की भी प्रेरणा मिलती है और वे संस्कृत के सौष्ठव से परिचित होते चलते हैं।

(३) **तुलना एवं अनुकरण विधि**—इस विधि में सर्वप्रथम आदर्श अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है। उस आदर्श अनुवाद को छात्र परखते हैं और उसके पश्चात् उनके समक्ष अनुवाद करने के लिए मातृभाषा में अनुच्छेद दे दिया जाता है। यह अनुच्छेद शैली एवं शब्दावली की दृष्टि से आदर्श अनुवाद वाले अनुच्छेद के समान ही रहेगा। इस विधि से छात्र आदर्श अनुवाद का विश्लेषण करके उसकी मातृभाषा से तुलना करके अनुवाद करना सीखते हैं।

उपर्युक्त तीनों विधियों का समन्वय होना चाहिए, क्योंकि कोई एक विधि स्वयं में पूर्ण नहीं है।

कुछ सावधानियाँ

१. अनुवाद-कार्य छात्र के मानसिक स्तर के अनुसार होना चाहिए।
२. तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए।
३. अनुवाद में कुशलता प्राप्त करने के लिए अभ्यास परमावश्यक है।
४. मूल भाषा-शैली की रक्षा होनी चाहिए।
५. मूल भाषा में प्रयुक्त भावों की भी रक्षा होनी चाहिए।
६. सरलता और सुबोधता का ज्ञान होना चाहिए।
७. मूल एवं अनुवाद की भाषाओं की प्रकृति का ज्ञान होना चाहिए।
८. अनुवाद-कार्य के लिए संस्कृत के व्याकरण का ज्ञान परमावश्यक है।
९. निर्धारित व्याकरण के आधार पर हिन्दी से संस्कृत तथा संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद का अभ्यास होना चाहिए। इनमें शब्दों का एक ही

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वरूप आवर्त्तक हो और उत्तम होगा; यथा—बालकानाम्, छात्रानाम्, अथवा वृक्षैः, पुष्पैः, मृगैः अथवा बालिकायाः, सुतायाः, रामायाः आदि। अतः व्याकरण-पाठ के आधार पर ही अनुवाद-पाठ की योजना बनानी चाहिए।

१०. छात्रों के अनुवाद-कार्य का संशोधन अवश्य होना चाहिए।

अनुवाद कराते समय छात्रों को रूप रटने के लिए बारम्बार आग्रह नहीं करना चाहिए। रूप का अभ्यास कराकर छात्रों को उससे परिचित कराया जाय। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि पहले छात्रों के समक्ष स्वरान्त अदन्त पुल्लिग शब्द रखे जाएँ, उसके बाद अन्य शब्द आएँ। बालकः, देवः, अश्वः, गजः, सिंहः, करः, नरः, घटः, वटः, दोषः, गुणाः जैसे शब्दों का अभ्यास पहले होना चाहिए।

वाक्यों के क्रम में भी सरलता का ध्यान रहे। सामान्य कथन या प्रश्नवाचक वाक्य सरल हों और बाद में कठिन आएँ। पहले तो छात्रों को "अयं कः ? अयं गजः। अयं कः ? अयं बालकः। अयं कः ? अयं विवेकः। अयं कः ? अयं रामः।" जैसे सरल वाक्यों का अभ्यास कराया जायगा। "मोहनः गच्छन्ति। रामः पठति। विवेकः लिखति। श्यामः पत्रं लिखति।" जैसे सरल वाक्य कर्त्ता-क्रिया के अभ्यास के लिए ठीक रहेंगे।

अनुवाद में सरल से कठिन की ओर चलना श्रेयस्कर होगा। इस दृष्टि से यहाँ पर कुछ संकेत दिये जा रहे हैं। जहाँ तक वचन का प्रश्न है पहले एकवचन का अभ्यास कराया जाए, तत्पश्चात् बहुवचन का और बाद में द्विवचन का। कारकों का क्रम निम्न प्रकार से रखना ठीक रहेगा—

प्रथमा
द्वितीया
षष्ठी
सप्तमी
तृतीया
पंचमी
चतुर्थी

संस्कृत के शास्त्रीय व्याकरण की दृष्टि से यह क्रम कुछ अटपटा-सा लग सकता है किन्तु सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय का अवलोकन करने पर भी यही दिखाई पड़ता है कि प्रथमा, द्वितीया और षष्ठी विभक्तियों का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है। सप्तमी व तृतीया का प्रयोग कुछ कम हुआ है, पंचमी का प्रयोग भी कम है किन्तु चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग तो बहुत कम है। कुछ विशिष्ट परिस्थितियों को छोड़कर चतुर्थी का प्रयोग प्रायः नहीं होता अतः इसे बाद में सिखाने में क्रियात्मक व्याकरण की दृष्टि से कोई हानि नहीं है। हाँ, जब बालक इन्हें सीख ले तो बाद में उसे प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, विभक्तियों का शास्त्रीय क्रम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी बता देना चाहिए। किन्तु अभ्यास उन्हीं विभक्तियों का अधिक कराना चाहिए जिनके प्रयोग की अधिक आवश्यकता पड़ेगी।

उच्चतर कक्षाओं में कृदन्तों के प्रयोग का विशेष अभ्यास कराना चाहिए। ललित संस्कृत में कृदन्तों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

अनुवाद-शिक्षण का क्रम

अनुवाद-कार्य की पाठ-योजना एवं शिक्षण का क्रम निम्नलिखित ढंग का होना चाहिए—

१. **सामान्य प्रारम्भिक बातें**
२. **सामान्य उद्देश्य**
३. **विशिष्ट उद्देश्य**
४. **सहायक सामग्री (बहुत कम आवश्यकता पड़ेगी)।**
५. **पूर्व-ज्ञान (आवश्यक है)।**
६. **प्रस्तावना**—मातृभाषा के अनुच्छेद को श्यामपट पर लिख दिया जाय। लपेट श्यामपट पर घर से भी लिखकर लाया जा सकता है।
७. **विषयोपस्थापन**—
   (क) अनुच्छेद का मौन वाचन।
   (ख) कठिन शब्दों पर चिह्न लगाना।
   (ग) अध्यापक द्वारा श्यामपट पर चिह्नित शब्दों के संस्कृत पर्यायवाची शब्द लिखना एवं उनके प्रयोग के निर्देश देना। सुलभ होने पर शब्द-कोश का प्रयोग करना।
   (घ) **मौखिक कार्य**—प्रश्नोत्तर प्रणाली द्वारा अध्यापक प्रस्तुत अनुच्छेद के कुछ वाक्यों का छात्रों द्वारा संस्कृत में अनुवाद करायेगा और आवश्यक निर्देश देगा।
   (ङ) अनुवाद-लेखन।
८. **संशोधन**—छात्र द्वारा लिखे हुए अनुवाद का संशोधन आवश्यक है। संशोधन पर आगे कुछ विचार किया जायगा।
९. **गृह-कार्य**—अनुवाद-लेखन यदि अपूर्ण रह जाय, तो उसे घर से पूरा करके लाने को कहा जाय अथवा कक्षा-कार्य की भाँति ही एक अन्य अनुच्छेद को छात्रों को घर से अनूदित करके लाने को कहा जाय।

अनुवाद-पाठ योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम............... **दिनांक**...............

अध्यापक का नाम............... **कालांश**—पंचम, समय—४० मिनट

विषय—संस्कृत अनुवाद **कक्षा**—३, वर्ग ल

सामान्य उद्देश्य— १. छात्रों को संस्कृत के माध्यम से विचारों को आदान-प्रदान करने की योग्यता प्रदान करना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२. विद्यार्थियों को हिन्दी व संस्कृत के वाक्यांशों का तुलनात्मक ज्ञान प्रदान करना।

३. व्याकरण पाठ में सीखे गये नियमों के प्रयोग के लिए अवसर प्रदान करना।

४. संस्कृत भाषा के प्रयोग में छात्र जो त्रुटियाँ करते हैं, उनसे उन्हें परिचित कराते हुए उनको दूर करने की प्रेरणा देना।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को वर्तमान काल (लट् लकार) प्रथम पुरुष की क्रियाओं का प्रयोग करने की क्षमता प्रदान करना तथा श्यामपट्ट पर हिंदी में लिखे हुए वर्तमान-कालिक दस वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करना सिखाना।

सहायक सामग्री— लपेट श्यामपट्ट पर लिखे हुए कुछ वाक्य।

पूर्व-ज्ञान— छात्र क्रियाओं के लट् लकार के रूप सभी पुरुषों में जानते हैं। साथ ही वे आकारान्त, अकारान्त, इकारान्त तथा उकारान्त संज्ञा शब्दों के रूपों से भी परिचित हैं।

प्रस्तावना— निम्नलिखित वाक्यों को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जायगा—

१. लड़के पढ़ते हैं।
२. लड़कियाँ विद्यालय जाती हैं।
३. मोहन पत्र लिखता है।
४ दो बालक गेंद खेलते हैं।
५. हरी दौड़ता है।
६. बालक मोहन के साथ चलता है।
७. सुरेश सूर्य को नमस्कार करता है।
८. दो मनुष्य बाग को देखते हैं।
९. दो घोड़े दौड़ते हैं।
१०. बहुत-से हाथी यहाँ आते हैं।

विषयोपस्थापन—१. उपर्युक्त दस वाक्यों का छात्रों द्वारा मौन वाचन।
२. छात्रों द्वारा कठिन शब्दों पर चिह्न लगाना।
३. अध्यापक द्वारा स्पष्टीकरण तथा चिह्नित शब्दों के संस्कृत पर्याय बताना।

पढ़ना	=पठ्
जाना	=गम् (गच्छ)
लिखना	=लिख्
खेलना	=क्रीड्
चलना	=चल्
नमस्कार करना	=नम्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देखना	=दृश् (पश्य)
दौड़ना	=धाव्
साथ	=सह
गेंद	=कन्दुक
बाग	=उद्यान
घोड़ा	=अश्व
हाथी	=गज

गम् धातु के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। सहयोग में तृतीया विभक्ति लगेगी।

गेंद यहाँ साधन है, अतः तृतीया विभक्ति होगी।

४. उपर्युक्त सभी वाक्यों का संस्कृत में मौखिक रूप से अनुवाद होगा। अध्यापक एक-एक वाक्य लेता चलेगा और छात्रों से पूछता चलेगा।

अनुवाद-लेखन— अध्यापक छात्रों से अनुवाद-कार्य लिखने को कहेगा और स्वयं निरीक्षण करेगा।

संशोधन— लिखित कार्य का यथासम्भव कक्षा में ही संशोधन होगा।

गृह-कार्य— निम्नलिखित वाक्यों का घर पर संस्कृत में अनुवाद करो—

१ विनोद सोता है।

२. सन्तोष यहाँ ठहरता है।

३. श्याम वहाँ बैठता है।

४. लड़का क्या खाता है?

५. मनुष्य क्या ले जाते हैं?

अनुवाद-पाठ-योजना

[द्वितीय]

विद्यालय का नाम………… **दिनांक**…………

अध्यापक का नाम…. ……. **कालांश**—अष्टम्, **समय**—४० मिनट

विषय—संस्कृत अनुवाद **कक्षा**—१०, **वर्ग**—ख

सामान्य उद्देश्य—१. छात्रों को संस्कृत के माध्यम से विचारों को आदान-प्रदान करने की योग्यता प्रदान करना।

२. विद्यार्थियों को हिन्दी व संस्कृत के वाक्यों का तुलनात्मक ज्ञान प्रदान करना।

३. व्याकरण पाठ में सीखे गये नियमों के प्रयोग के लिए अवसर प्रदान करना।

४. मातृभाषा में अभिव्यक्त विचारों की रक्षा करते हुए उन विचारों को संस्कृत भाषा में अनूदित करना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५. संस्कृत भाषा के प्रयोग में छात्र जो त्रुटियाँ करते हैं, उनसे उन्हें परिचित कराते हुए उनको दूर करने की प्रेरणा देना ।

विशिष्ट उद्देश्य— श्यामपट पर हिन्दी में लिखे हुए दस वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करना ।

सहायक सामग्री— लपेट श्यामपट्ट पर लिखे कुछ वाक्य ।

पूर्व-ज्ञान— छात्र कारक, पुरुष, वचन एवं लिंग के नियमों का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं ।

प्रस्तावना— निम्नलिखित वाक्यों को श्यामपट्ट पर लिख दिया जायगा अथवा पहले से लपेट श्यामपट्ट पर लिखे हुए वाक्यों को प्रस्तुत कर दिया जायगा—

१. विद्या सब धनों से श्रेष्ठ है ।
२. इसे कोई चुरा नहीं सकता ।
३. कोई व्यक्ति इसे छीन भी नहीं सकता ।
४. भाई-बन्धु इसका बँटवारा भी नहीं कर सकते ।
५. यह धन दान या भोग से क्षीण नहीं होता, वरन् और बढ़ता है ।
६. विदेश जाने पर विद्या बन्धु के समान सहायता करती है ।
७. विद्वान सब जगह पूजा जाता है ।
८. राजा अपने राज्य में ही आदर पाता है ।
९. विद्याहीन पुरुष पशु के समान है और वह पृथ्वी पर भार-स्वरूप होता है ।
१०. कल्प-लता के समान विद्या क्या-क्या सिद्ध नहीं करती है ?

विषयोपस्थापन—

१. उपर्युक्त दसों वाक्यों का छात्र मौन वाचन करेंगे ।
२. वे कठिन शब्दों पर चिन्ह लगायेंगे ।
३ अध्यापक द्वारा चिह्नित शब्दों के संस्कृत पर्याय प्रदान करना—

चुरा नहीं सकता—चोरयितुं न शक्नोति ।
छीन नहीं सकता—छपहतुं न शक्नोति ।
बँटवारा नहीं कर सकते—विभक्तुं न शक्नुवन्ति ।
क्षीण नहीं होता—न क्षीयते ।
और बढ़ता है—अधिक वर्धते ।
पृथ्वी पर भार-स्वरूप होता है—भुवि भारभूतः अस्ति ।
क्या-क्या सिद्ध नहीं करती है – किं किं न साधयति ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. उपर्युक्त सभी वाक्यों का संस्कृत में मौखिक रूप से अनुवाद होगा। अध्यापक एक-एक वाक्य लेता चलेगा और छात्रों से पूछता चलेगा।

अनुवाद-लेखन— अध्यापक छात्रों से अनुवाद-कार्य लिखने को कहेगा।

संशोधन— लिखित कार्य का यथासम्भव कक्षा में ही संशोधन होगा।

गृह-कार्य— निम्नलिखित वाक्यों का घर पर संस्कृत में अनुवाद करो—

१. विद्वान् सब व्यक्तियों में श्रेष्ठ व्यक्ति है।

२. विद्या क्या-क्या नहीं देती।

३. भारत में विद्वान आदर पाता है।

४. शासन निर्धन छात्रों की सहायता करता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१९ | लिखित कार्य का संशोधन

संशोधन की वर्तमान दशा

संस्कृत-शिक्षण में जितना महत्त्व लिखित कार्य कराने का है, उतना ही महत्त्व उसके संशोधन-कार्य का है। वह लिखित कार्य निरर्थक है जिसकी कि न समय पर पूछताछ होती है और न गम्भीरतापूर्वक संशोधन। लिखित कार्य की जाँच अत्यावश्यक है। संशोधन ही वह कार्य है जो प्रायः शिक्षकों को सबसे अधिक अरुचिकर प्रतीत होता है और अधिकतर अध्यापक इसे एक बला समझते हैं। इसी कारण संशोधन के प्रति अधिकांश पाठशालाओं एवं विद्यालयों में न्याय नहीं हो पाता। अध्यापक प्रायः इसी नीरस कार्य से बचने का प्रयत्न करते हैं। और छात्रों की उत्तर-पुस्तिकाओं में शीघ्रता से यत्र-तत्र लाल स्याही के कुछ चिह्न लगाकर अपने आपको उत्तरदायित्वों से मुक्त कर लेते हैं। यदि पाठशाला या विद्यालय के प्रधानाचार्य और निरीक्षक महोदय द्वारा अध्यापकों के कार्य का पर्यवेक्षण किया जाता है और सम्बन्धित अध्यापकों को इसकी सूचना दे दी जाती है तो प्रायः अध्यापक छात्रों की अनेक उत्तर-पुस्तिकाओं का ढेर लगा देते हैं जिनमें यत्र-तत्र कुछ संशोधन एवं सर्वत्र हस्ताक्षर दृष्टिगोचर होते हैं और प्रधानाचार्य या निरीक्षक भी केवल उत्तर-पुस्तिकाओं की संख्या से सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा छात्रों की भूलों को सुधारने की दिशा में वे अध्यापक को कुछ मार्गदर्शन भी नहीं दे पाते या देने की आवश्यकता नहीं समझते।

संशोधन के सिद्धान्त

लिखित कार्य का संशोधन करते समय अध्यापक को कुछ सामान्य मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षणिक सिद्धान्तों का ध्यान रखना लाभकारी सिद्ध होगा। आगे इनमें से कुछ की ओर संकेत किया जा रहा है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१) **नियमितता**—लिखित कार्य का संशोधन नियमित रूप से होना चाहिए। ऐसा न हो कि कभी-कभी तो उसी दिन अनुवाद, रचना, गृह-कार्य या अन्य लिखित कार्य का संशोधन कर दिया जाय और कभी-कभी महीनों उनकी ओर ध्यान ही न दिया जाय।

(२) **तत्परता**—लिखित कार्य की तत्परता से माँग की जाय। विद्यालय के प्रधानाचार्य अथवा निरीक्षक द्वारा माँग की जाने पर अध्यापक जिस प्रकार की तत्परता बरतते हैं, उसी प्रकार की तत्परता से उन्हें छात्रों से भी नियमित रूप से लिखित कार्य की माँग करनी चाहिए।

(३) **उपेक्षा का अभाव**—यह बात उपर्युक्त दोनों बातों की पूरक है। यदि अध्यापक लिखित कार्य माँग करने में या संशोधन करने में उपेक्षा करता है तो नियमितता और तत्परता का अभाव हो जाता है। अतः अध्यापक को इस कार्य के प्रति उदासीन नहीं होना चाहिए। अध्यापक की उपेक्षा या उदासीनता छात्रों को भी लिखित कार्य के प्रति उदासीन बना देती है और वे सोचने लगते हैं कि अमुक कार्य कभी कर लिया जायगा। इससे उनमें उपेक्षा वृत्ति बढ़ती है। उनकी दृष्टि में इससे लिखित कार्य का महत्त्व घट जाता है और वे इसे अनावश्यक कार्य समझने लगते हैं।

(४) **रुचि**—संशोधन-कार्य बड़ा नीरस होता है। छात्रों के कल्याण की भावना एवं उदात्त विचार ही इस कार्य में रुचि उत्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं। अतः अध्यापक को येन-केन-प्रकारेण अपने मनोभावों को इस कार्य के अनुकूल बनाना चाहिए जिससे कि वह इसमें कुछ रुचि ले सके। यदि वह रुचि नहीं लेगा तो छात्र भी इसमें रुचि नहीं लेंगे और लिखित कार्य की और उदासीनता में वृद्धि होगी।

(५) **सोद्देश्य होना**—लिखित कार्य को सोद्देश्य होना ही चाहिए, उसका संशोधन भी सोद्देश्य हो। जिस उद्देश्य से लिखित कार्य कराया गया हो, उसी के सन्दर्भ में उसका संशोधन होना चाहिए। अन्य दृष्टि से उसमें यदि कोई छोटी भूल या संशोधन छूट भी जाय तो कोई विशेष हानि नहीं।

(६) **अनुवर्ती कार्य का होना**—संशोधन का अनुवर्ती-कार्य (फालो-अप-वर्क) भी आवश्यक है। यदि किसी छात्र ने कोई भूल की है तो उसे कापी पर हासिए में लिख देना ही पर्याप्त नहीं है। अध्यापक को यह भी देखना है कि उस भूल का सुधरा हुआ रूप छात्र पहचान पाया या नहीं। यदि वर्तनी अशुद्धि है तो उसके शुद्ध रूप का उसने अभ्यास किया या नहीं। यही नहीं, शिक्षक को यह भी देखना है कि भविष्य में लिखित कार्य में वह उस शब्द को शुद्ध रूप में लिखता है या नहीं।

(७) **छात्रों का सहयोग प्राप्त करना**—लिखित कार्य के संशोधन में छात्रों का सहयोग भी प्राप्त किया जा सकता है। यह कार्य कक्षा में क्रम-विशेष से कापियाँ बदलवा कर किया जा सकता है। किन्तु इस बात का ध्यान रखना है कि यह क्रम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सदा एक-सा न रहे, अर्थात् एक बालक की कापी सदा एक निश्चित छात्र को ही देखने को न मिलती रहे। यहाँ पर इस बात का भी ध्यान रखना है कि छात्रों का सहयोग ही लिया जा सकता है, उन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। अतः छात्रों द्वारा संशोधन करने के पश्चात् अध्यापक को भी विहंगम दृष्टि से उस कार्य का संशोधन अवश्य करना चाहिए।

(८) **सामूहिक संशोधन से व्यक्तिगत संशोधन अच्छा होता है**—कक्षा में लिखित कार्य का सामूहिक संशोधन भी हो सकता है। अध्यापक श्यामपट्ट पर आदर्श रूप को लिखकर अथवा प्रोजेक्टर की सहायता से सामूहिक संशोधन करा सकता है, किन्तु सामूहिक संशोधन से व्यक्तिगत संशोधन सदा अच्छा होता है। अतः अध्यापक को यथासम्भव व्यक्तिगत संशोधन की ओर उन्मुख होना है जिससे कि प्रत्येक छात्र की त्रुटियों का निराकरण हो सके।

(९) **संशोधन-चिह्नों का विकास**—अध्यापक को प्रत्येक प्रकार की त्रुटि के लिए एक निश्चित चिह्न का प्रयोग करना चाहिए। अच्छा हो, यदि सभी अध्यापक एक ही प्रकार के चिह्नों का प्रयोग करें, जिससे छात्रों के मन में भ्रम न हो। किन्तु जब तक सर्वमान्य चिह्नों का विकास नहीं होता और इस पर सब एक मत नहीं होते, तब तक प्रत्येक अध्यापक जिन चिह्नों का प्रयोग करें, उन्हें वह कक्षा को पहले ही समझा दें। अच्छा हो, यदि कम से कम एक विद्यालय के अध्यापक कभी बैठकर आपस में विचार-विमर्श करके अपने छात्रों के लिए एक ही प्रकार के चिह्नों के प्रयोग का निर्णय कर लें।

(१०) **यदा-कदा तत्काल जाँच**—अध्यापक को चाहिए कि वह यदा-कदा छात्रों के लिखित कार्य को उसी समय देखे, जाँचे और उनका संशोधन कर दे, जिस समय वे लिख रहे हों। इससे छात्रों में असावधानीवश होने वाली त्रुटियाँ दूर हो सकती हैं।

(११) **निदानात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षण**—लिखित कार्य का संशोधन वस्तुतः निदानात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षण की दृष्टि से होना चाहिए। संशोधन के द्वारा छात्र को यह मालूम हो जाना चाहिए कि उसकी वास्तविक स्थिति क्या है, उसमें क्या कमी है तथा वह किन पक्षों में निर्बल है और किनमें सबल। इन बातों की जानकारी छात्र को मिल जानी चाहिए जिससे कि वह अपने निर्बल पक्ष से सम्बन्धित त्रुटियों को दूर करने के लिए अतिरिक्त प्रयत्न कर सके और सबल पक्षों को और अधिक सुदृढ़ कर सके।

(१२) **संशोधन के पश्चात् मूल्यांकन**—लिखित कार्य का संशोधन करने के पश्चात् उसका मूल्यांकन भी किया जा सकता है। मूल्यांकन में अंक न देकर 'श्रेणी' देना ही ठीक रहता है। श्रेणी भी सामान्यतः तीन-चार ही रहें तो अधिक अच्छा है। उच्च कक्षाओं में श्रेणी विभाजन में बारीकी लाई जा सकती है और कार्य को अनेक श्रेणियों में रखा जा सकता है, किन्तु प्रारम्भिक एवं मध्य स्तर पर कुछ कम श्रेणियाँ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रखना ठीक रहेगा। श्रेणियों के नाम 'अ', 'ब', 'स', 'द', अथवा 'क', 'ख', 'ग', 'घ', अथवा 'श्रेष्ठ', 'सन्तोषजनक', 'साधारण', 'निम्न' हो सकते हैं।

सामान्य अशुद्धियाँ

श्रुतलेख, अनुलिपि तथा प्रतिलिपि के प्रत्येक अंश का, प्रत्येक रचना का एवं अनुवाद के प्रत्येक कार्य का संशोधन किया जाना आवश्यक है। छात्र के लिखित कार्य में प्रायः निम्नलिखित ढंग की अशुद्धियाँ हुआ करती हैं—

१. वर्त्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ।
२. वचन सम्बन्धी त्रुटि।
३. काल सम्बन्धी भूल।
४. कारक सम्बन्धी अशुद्धि।
५. प्रत्यय, उपसर्ग एवं विभक्ति सम्बन्धी अशुद्धियाँ।
६. विराम सम्बन्धी अशुद्धि।
७. सामान्य एवं अपवाद नियमों की अवहेलना।
८. वाक्य में पदक्रम की भूल।
९. अनुच्छेद में क्रमबद्धता का अभाव।
१०. शब्द-रचना सम्बन्धी त्रुटि।
११. तथ्य-सम्बन्धी भूल।
१२. कर्त्ता, कर्म, क्रिया समायोजन की भूल।
१३. लिंग सम्बन्धी त्रुटि।
१४. वाच्य सम्बन्धी अशुद्धि।
१५. विशेषण-विशेष्य-समायोजन की भूल।
१६. शब्द एवं क्रिया के अर्थ को समझने की भूल।
१७. सन्धि की त्रुटि।
१८. समास सम्बन्धी त्रुटि।

छात्रों के लिखित कार्य में अनेक अशुद्धियाँ हुआ करती हैं जिन्हें यदि शुद्ध न किया जाय तो छात्र उसी अशुद्ध रूप का अभ्यास करते रहते हैं और उनका भाषा-ज्ञान दोषपूर्ण हो जाता है।

संशोधन का उद्देश्य

इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि संशोधन का उद्देश्य शुद्धता एवं स्पष्टता से लिखने की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना और बालक को शुद्ध रूप से परिचित कराना है, जिससे वह भविष्य में अशुद्धि का परित्याग कर दे। संशोधन का उद्देश्य यह कदापि नहीं है कि बालक के लिखित कार्य को लाल स्याही से भर दिया जाय और उसे त्रुटियों का भय दिखा दिया जाय, जिससे वह हतोत्साहित होकर यह सोचने लगे कि वह संस्कृत सीख ही नहीं सकता है।

इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि संशोधन छात्र का होना है,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न कि केवल पुस्तिका का। सम्भव है, कापी में लिखित कार्य को शुद्ध कर दिया गया हो, किन्तु छात्र को शुद्ध रूप का पता ही न चले और वह भविष्य में त्रुटि को सुधार न सके। प्राय: यह देखा जाता है कि छात्र एक ही प्रकार की अशुद्धि बार-बार करते रहते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि छात्रों को त्रुटियों का पता नहीं चलता और संशोधन-कार्य केवल कापी तक ही सीमित रह जाता है।

कभी-कभी छात्र प्रमादवश भी त्रुटि कर बैठते है। कुछ त्रुटियाँ असावधानी के कारण हो जाती हैं और यदि छात्र ही उन्हें दुहरा लें तो वे त्रुटियाँ दूर हो सकती हैं। संशोधन का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि संशोधन के द्वारा छात्रों में स्वावलम्बन की भावना जाग्रत हो सके और वे प्रत्येक बात को लिखने में अध्यापक पर आश्रित न रहें। वे यह भी न सोचें कि उन्हें त्रुटि करने का अधिकार है, क्योंकि अध्यापक तो संशोधन करेगा ही। संशोधन से छात्रों में आत्मविश्वास की भावना का विकास होना चाहिए, जिससे कि वे भविष्य में शुद्ध लिखने एवं किसी शब्द के शुद्ध रूप का निर्णय करने में भ्रम व सन्देह से मुक्त हो सकें।

संशोधन कब और कैसे ?

प्रत्येक रचना का शिक्षक द्वारा संशोधन होना आवश्यक है। ज्यों ही छात्र कक्षा में रचना-कार्य समाप्त करें, संशोधन होना आवश्यक है, अन्यथा त्रुटियों का निराकरण भली प्रकार नहीं हो सकता और बाद में छात्र यह भूल जाता है कि अमुक शब्द इस प्रकार उसने कैसे और किस प्रयोजन से लिखा था। अनुवाद के अभ्यास-कार्य का संशोधन भी तुरन्त बाद ही होना चाहिए।

रचना और अनुवाद का संशोधन यथासम्भव कक्षा में छात्रों के सम्मुख ही होना चाहिए, जिससे छात्रों को अपनी त्रुटियों का पता लग जाय। यदि यह सम्भव न हो तो शिक्षक घर पर या किसी अन्य घण्टे में छात्रों की कापियाँ देख सकता है, किन्तु घर पर या विद्यालय में ही किसी अन्य समय पर संशोधन कार्य करते समय शिक्षक को एक डायरी में कुछ सामान्य त्रुटियाँ लिख लेनी चाहिए। यदि कोई छात्र एक ही प्रकार की त्रुटि बार-बार कर रहा हो और उसे विशेष रूप से निर्देश देने की आवश्यकता हो तो उसे भी लिख लिया जाय। दूसरे दिन कक्षा में आने पर अध्यापक सामान्य त्रुटियों को सामूहिक रूप से पूरी कक्षा को बता देगा, किन्तु यह गौण कार्य है। उनका मुख्य कार्य तो छात्रों को व्यक्तिगत रूप से उनकी त्रुटियों को बताना है। इसका प्रभाव दूरगामी होता है। छात्र अपनी त्रुटि को भविष्य में दूर करने की चेष्टा करता है। इसका एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ता है। छात्र यह सोचता है कि उसका अध्यापक उसमें व्यक्तिगत रुचि ले रहा है।

रचना-कार्य या अनुवाद-कार्य का संशोधन कक्षा में छात्रों द्वारा भी कराया जा सकता है। जब छात्र संस्कृत के वाक्य लिख लें तो शिक्षक श्यामपट्ट पर एक-एक वाक्य को शुद्ध रूप से लिखता चले और छात्र उसके अनुसार अपनी कापियों में संशोधन करते चलें। कभी-कभी छात्रों से आपस में ही एक-दूसरे की कापियाँ बदल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेने को कहा जाय और श्यामपट पर लिखे शुद्ध वाक्यों के आधार पर वे अपने पास आयी हुई कापियों में संशोधन कर दें। बाद में कापियाँ सम्बन्धित छात्रों के पास पुनः पहुँचा दी जायँ। इससे समय की बचत होती है और शिक्षक को बाद में बहुत अधिक संशोधन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा करने के बाद भी शिक्षक द्वारा सम्पूर्ण कापियों का पुनः संशोधन आवश्यक है।

जब संशोधित कापियों को शिक्षक छात्रों को लौटाये तो छात्रों द्वारा अपनी-अपनी कापियों में अपने लिखित कार्य को पुनः देखना आवश्यक है। शिक्षक को इस कार्य के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए, जिससे छात्र स्वयं अशुद्ध रूप को देख सकें।

प्रथम दिन प्रथम रचना को ही लाल स्याही से भर देना ठीक नहीं। छात्र को हतोत्साहित करना अनुचित है। अतः प्रारम्भ में कुछ छोटी भूलें यदि उपेक्षित हो जायँ और केवल बड़ी-बड़ी त्रुटियों पर ही ध्यान दिया जाय तो कोई हानि नहीं। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि छात्र की अशुद्धियों को ज्यों का त्यों बने रहने दिया जाय।

संशोधन-चिह्न

अशुद्धियों के कई रूप होते हैं। इन्हें हम पहले ही देख चुके हैं। संशोधन में छात्रों को यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि अमुक स्थान पर कौन-सी त्रुटि हैं। इसके लिए हम चिह्नों का भी प्रयोग कर सकते हैं; जैसे—

—व्या = व्याकरण-दोष (अशुद्ध शब्द के नीचे रेखा खींचकर 'व्या' लिखना)
—व्या/का = कारक सम्बन्धी भूल (रेखांकन सहित)
—व्या/व = वचन-दोष (रेखांकन सहित)
—व्या/वा = वाच्य की त्रुटि (रेखांकन सहित)
—व्या/लि = लिङ्ग की भूल (रेखांकन सहित)
—उप = उपसर्ग का भ्रम (रेखा खींचकर 'उप' लिखना)
—वि = विभक्ति-दोष (रेखांकन सहित 'वि' लिखना)
—प्र = प्रत्यय सम्बन्धी भूल (रेखांकन सहित 'प्र' लिखना)
—काल = काल सम्बन्धी भूल (रेखांकन सहित 'काल' लिखना)
Oव = वर्तनी-दोष (अशुद्ध शब्द के चारों ओर गोला खींचकर 'व' लिख देना)
Oश = शब्द-चयन सम्बन्धी भूल (गोला खींचकर 'श' लिख देना)
++ = समास सम्बन्धी त्रुटि (दो धन के चिह्न)
\+ = सन्धि सम्बन्धी अशुद्धि (एक धन का चिह्न)
×वि× = विराम सम्बन्धी भूल (गुणा के दो चिह्नों के बीच में 'वि' लिखना)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

×क्र× =क्रमबद्धता का अभाव (गुणा के दो चिह्नों के बीच में 'क्र' लिखना)

× =अनावश्यक शब्द का प्रयोग (केवल गुणा का चिन्ह अनावश्यक शब्द के ऊपर)

×पु× =पुनरावृत्ति दोष (गुणा के दो चिन्हों के बीच में 'पु' लिखना)

ʎ वर्ण या शब्द का लोप

? तथ्य सम्बन्धी भूल

भाषा ? = भाषा की अस्पष्टता (हासिये में लिखें)

विचार ? = विचार की अस्पष्टता (हासिये में लिखें)

भाव ? =भाव की अस्पष्टता (हासिये में लिखें)

——

—— =विचारों या भावों अक्रमत्व

विराम चिन्हों के अभाव में अध्यापक स्वयं विराम चिह्न लगा दे। संयोजक चिन्ह भी लगाकर संशोधन किया जाय। असुन्दर लेख, अति संक्षिप्त या अति विस्तृत विचार, अनावश्यक रूप से अनुच्छेदों में विनियोजन या उनके एकीकरण के सम्बन्ध में मार्जिन या अन्त में टिप्पणी दी जाय। हलन्त, अनुस्वार, विसर्ग को यथास्थान सुधार दिया जाय।

संशोधन विभिन्न प्रकार की स्याही से करना अच्छा रहता है। जिस स्याही से छात्र लिख रहा हो, उसके अतिरिक्त अन्य रंग की स्याही से संशोधन अच्छा रहेगा। सामान्यतः लाल स्याही इस कार्य के लिए उपयुक्त समझी जाती है। पेंसिल से संशोधन की अपेक्षा स्याही से संशोधन अधिक अच्छा रहेगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२० | मूल्यांकन

वार्षिक परीक्षा-प्रणाली के दोष

आजकल विद्यालयों में प्रायः वार्षिक परीक्षा के आधार पर ही छात्रों को उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण घोषित किया जाता है। किन्तु इस प्रणाली में अनेक दोष हैं। वार्षिक परीक्षा में छात्रों को प्रायः तीन घंटे का समय दे दिया जाता है और दस प्रश्नों में से पाँच प्रश्नों के उत्तर लिखने को कह दिया जाता है। ये उत्तर प्रायः निबन्ध के रूप में होते हैं। निबन्धात्मक उत्तरों की जाँच करते समय परीक्षक कभी-कभी उन तत्त्वों की भी जाँच करने लगते हैं जिनका परीक्षा के उद्देश्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के अन्य अनेक दोष हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है :—

१. इस समय वार्षिक परीक्षाएँ साधन की अपेक्षा साध्य हो गई हैं और सम्पूर्ण शिक्षा परीक्षा-केन्द्रित हो गई है। छात्रों को परीक्षा के लिए ही तैयार किया जाता है, न कि ज्ञान के लिए।

२. प्रत्येक परीक्षार्थी को तीन घंटे में केवल ५-६ प्रश्न करने होते हैं। यदि छात्र संयोगवश इन प्रश्नों के उत्तरों को पढ़ लेता है तो उत्तीर्ण हो जाता है, अन्यथा वह असफल घोषित कर दिया जाता है। इस प्रकार वर्तमान परीक्षा-प्रणाली संयोग पर निर्भर है, न कि अध्ययन पर।

३. बहुत-से छात्र इस परीक्षा-प्रणाली द्वारा हतोत्साहित व निराशावादी हो जाते हैं। परीक्षाफल भाग्याधीन होने के कारण कभी-कभी छात्र का वर्ष-भर का परिश्रम निष्फल हो जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का अध्ययन करने की प्रेरणा नहीं मिलती। पहले तो पूरे पाठ्यक्रम पर प्रश्न ही नहीं होते फिर जो १०-१२ प्रश्न होते हैं, उनमें से भी केवल ५-६ प्रश्नों का उत्तर लिखने के लिए कहकर छात्रों को हम पाठ्यक्रम का एक अंश ही पढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर पाते हैं। उसमें भी ३३ प्रतिशत उत्तीर्णांक रखकर हम चाहते हैं कि छात्र बहुत कम पढ़ाई-लिखाई का काम करे।

५. प्रश्न-पत्रों की रचना में व्यक्तिगत रुचियों एवं अभिवृत्तियों को प्रश्रय देकर परीक्षक कभी-कभी प्रश्नों को अति सरल और कभी-कभी अति कठिन कर देते हैं। कभी-कभी तो परीक्षक जो प्रश्न देते हैं, उन प्रश्नों की सीमाओं एवं सापेक्षिक महत्ता से स्वयं अनभिज्ञ होते हैं। प्रश्न-पत्र यदि सरल है तो अधिक परीक्षार्थी उत्तीर्ण हो जायेंगे और कठिन है तो कम। अतः सभी प्रकार के विषयों एवं प्रश्न-पत्रों के लिए ३३ प्रतिशत उत्तीर्णांक रखने के लिए कोई औचित्य तब तक नहीं है जब तक कि किसी विशेष प्रविधि के माध्यम से प्रश्न-पत्रों की कठिनाई एक-सी न कर ली जाए।

६. प्राप्तांक योग्यता के सूचक नहीं हैं। प्रश्नों की कठिनाई में भिन्नता होने के कारण प्राप्तांकों से छात्र की यथार्थ योग्यता का कोई परिचय नहीं प्राप्त होता। किसी प्रश्न-पत्र में दस प्रतिशत अंक दूसरे प्रश्न-पत्र के पचास प्रतिशत अंक के समान स्तर रख सकते हैं।

७. इस परीक्षा प्रणाली द्वारा विषय की परख नहीं हो पाती क्योंकि परीक्षकों की व्यक्तिगत रुचियों, निष्ठाओं, योग्यताओं एवं पूर्वधारणाओं का अंक देने में प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक परीक्षक की अच्छे उत्तर की धारणा भिन्न होती है। कभी-कभी वह लेखन-शैली या उत्तरों की लम्बाई से प्रभावित हो जाता है। अतः वर्तमान परीक्षा-प्रणाली विश्वसनीय व वैध नहीं होती।

८. वर्तमान परीक्षा-प्रणाली द्वारा रटन को प्रोत्साहन मिलता है। छात्र विषय को समझने की अपेक्षा रटता है। इसके द्वारा छात्र की स्मरण-शक्ति और कण्ठाग्र करने की योग्यता का मूल्यांकन तो हो जाता है किन्तु ज्ञानोपार्जन का मूल्यांकन नहीं हो पाता।

९. वर्तमान परीक्षा विद्यार्थी की भावी योग्यता की सूचक नहीं होती। कम अंक पाने वाले विद्यार्थी आगे चलकर अच्छा कर सकते हैं और छात्रवृत्ति पाने वाले छात्र सबकी आशाओं पर पानी फेर सकता है।

१०. परीक्षा छात्र के भावात्मक जगत् को विचलित करके उसे चिन्ताग्रस्त बना देती है और परीक्षाओं के दिनों में अत्यधिक परिश्रम करने से छात्र का स्वास्थ्य चौपट हो जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११. वर्तमान परीक्षा-प्रणाली छात्र के समालोचनात्मक चिन्तन, रचनात्मक चिन्तन एवं मौलिकता को कुण्ठित कर देती है।

१२. परीक्षा में उत्तीर्ण होना एवं प्रमाणपत्र प्राप्त करना ही लक्ष्य होने के कारण छात्र परीक्षा में नकल करने, सिफारिश करने, धोखा देने, बेईमानी करने जैसी अनैतिक क्रियाओं को करने में झिझकता नहीं और चरित्रहीन हो जाता है।

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली और शिक्षा-आयोग

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के दोषों की ओर अनेक आयोगों ने भी संकेत किया है। सन् १९०२ में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग ने लिखा था कि "इस समय शिक्षण परीक्षाओं के अधीन हो गया, न कि परीक्षाएँ शिक्षण के अधीन"। सन् १९०४ में भारत राज्य की शिक्षा-नीति के प्रस्ताव में कहा गया था कि "गत वर्षों में परीक्षाओं ने अति वृहद् रूप धारण कर लिया है और भारत की सारी शिक्षा पर उनका ऐसा आतंक छा गया है कि निर्धारित उद्देश्य से शिक्षण बहुत संकुचित हो जाता है।" सन् १९०९ में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने लिखा कि "वर्तमान परीक्षा-प्रणाली पर सम्मतियाँ बिना अत्यन्त दुःख के नहीं पढ़ी जा सकतीं। अत्यन्त वृहद् प्रयत्न और फलों की निरपेक्षता, परीक्षार्थियों की दुःखद चिन्ताएँ, यन्त्रवत् मूल्यांकन जिससे मस्तिष्क को न्यूनातिन्यून प्रोत्साहन मिले, जनता की ओर उत्तर-दायित्व उल्लंघन करने वाली विश्वविद्यालयों की उदारता तथा अधिक योग्य विद्यार्थियों के साथ न्यून योग्यता वाले विद्यार्थियों का वर्गीकरण, उदारता होते हुए अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या, सारी परीक्षा-प्रणाली का अध्यापक तथा विद्यार्थी पर हतोत्साही प्रभाव और बंगाल के युवकों की बुद्धि का अपव्यय, ये दोष प्रत्येक विभागाधिकारी की राय में तथा हमारे निरीक्षण से प्रत्यक्ष प्रमाणित तथा हृदयांकित होते हैं।"

सन् १९३८ में ज़ाकिर हुसैन समिति ने कहा था कि "हमारे देश की प्रचलित परीक्षा प्रणाली शिक्षा के लिए एक अभिशाप सिद्ध हुई है। संभवतः एक निकृष्ट शिक्षा-प्रणाली परीक्षाओं को उपयोगिता से अधिक निरपेक्ष उच्च स्थान देने से और भी निकृष्ट हो गई है।" सन् १९४९ में राधाकृष्णन् आयोग ने कहा, "यदि हम विश्वविद्यालयी शिक्षा में कोई एक सुझाव दें तो वह केवल परीक्षाओं के सुधार के सम्बन्ध में ही हो सकता है।" सन् १९५३ में मुदालियर आयोग का कथन था, "परीक्षाएँ विद्यालय के सारे पर्यावरण में इस प्रकार व्याप्त हो गई हैं कि यह छात्र व अध्यापक के समस्त ध्येयों की प्रेरक हो गई हैं। सन् १९६६ में कोठारी आयोग ने भी वर्तमान परीक्षा-प्रणाली की विस्तृत आलोचना की और उसमें सुधार के अनेक उपाय बताए।

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में सुधार के उपाय

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में सुधार के लिए अनेक प्रकार के उपाय बताए गये

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। राधाकृष्णन् आयोग ने विश्वविद्यालयी परीक्षा-पद्धति में सुधार के लिए जो सुझाव दिये हैं, उनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

(१) प्रत्येक विश्वविद्यालय में तीन व्यक्तियों की एक परीक्षा-परिषद् बनाई जाय।

(२) परीक्षार्थियों की परीक्षा के लिए वस्तुनिष्ठ एवं प्रगतिशील परीक्षणों का निर्माण किया जाए।

(३) तीन वर्ष के अन्त में ही परीक्षा न लेकर प्रत्येक वर्ष के अन्त में परीक्षा ली जाए।

(४) प्रथम श्रेणी ७० प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी ५५ प्रतिशत तथा तृतीय श्रेणी ४० प्रतिशत पर दी जाए।

मुदालियर आयोग ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये हैं—

(१) वाह्य परीक्षाओं की अपेक्षा आन्तरिक परीक्षाओं की संख्या में वृद्धि की जाए।

(२) आन्तरिक परीक्षाओं के साथ सावधि-परीक्षण तथा विद्यालय-अभिलेखों के आधार पर छात्र का मूल्यांकन किया जाए।

(३) परीक्षा केवल निवन्धात्मक न हो।

(४) आन्तरिक परीक्षाओं में मूल्यांकन प्राप्तांकों में न होकर श्रेणी में हो।

कोठारी आयोग ने कक्षा १ से ४ तक कोई श्रेणी-विभाजन न करने एवं उच्चतर प्राथमिक कक्षाओं में लिखित परीक्षाओं के साथ-साथ मौखिक परीक्षा की सिफारिश की। प्राथमिक शिक्षा की समाप्ति पर एक वाह्य परीक्षा हो, कुछ माध्यमिक विद्यालयों को छाँटकर उन्हें स्वायत्तशासी बनाया जाए जो दशम कक्षा के अन्त में स्वयं परीक्षा ले सकें, एक 'केन्द्रीय परीक्षा सुधार इकाई' हो जो विश्वविद्यालयी परीक्षाओं में सुधार कर सके, बाह्य परीक्षाओं के स्थान पर क्रमिक आन्तरिक परीक्षा-पद्धति प्रारम्भ की जाए, मूल्यांकन की नयी प्रविधियों में प्राध्यापकों को दीक्षित किया जाए एवं परीक्षा कार्य पर पारिश्रमिक न दिया जाए।

वस्तुतः बाह्य परीक्षाओं को धीरे-धीरे कम करके आन्तरिक परीक्षाओं में वृद्धि करना, वस्तुनिष्ठ एवं लघुत्तर परीक्षण तैयार करना, सरल एवं स्पष्ट प्रश्नों की रचना करना, वर्ष-भर के कार्य एवं प्रगति के आधार पर प्रोन्नति देना, परीक्षा को साधन बनाना, परीक्षण कार्य में विश्वसनीयता एवं वैधता लाना, मौखिक, लिखित एवं क्रियात्मक परीक्षाओं की व्यवस्था करना आदि कुछ ऐसे उपाय हैं जिनसे वर्तमान वार्षिक परीक्षा-प्रणाली के दोषों को कुछ सीमा तक दूर किया जा सकता है।

संस्कृत में वर्तमान परीक्षा-प्रणाली

संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अध्यापक और छात्र कुछ क्रियाएँ करते हैं। इन क्रियाओं के द्वारा अध्यापक चाहता है कि छात्र के व्यवहार में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ परिवर्तन आये। छात्र के व्यवहार में जब तक अभीष्ट परिवर्तन नहीं आता, तब तक अध्यापक अपने कार्य को सफल नहीं समझ सकता और संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य भी तब तक अप्राप्य ही बने रहेंगे। इसीलिए शिक्षण-प्रक्रिया का मूल्याङ्कन शिक्षण का आवश्यक अङ्ग है।

आजकल जो परीक्षा-प्रणाली हमारे विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रचलित है, उसमें अनेक दोष हैं। वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में छात्र द्वारा अर्जित योग्यता एवं ज्ञान का ठीक-ठीक परीक्षण नहीं हो पाता। इसमें यह भी नहीं पता लगता कि पाठ्य विषय ठीक है या उसमें परिवर्तन अपेक्षित है। वर्तमान परीक्षा द्वारा हमारी शिक्षण-विधि पर भी कोई प्रकाश नहीं पड़ता। संस्कृत में इस समय जिस प्रकार की परीक्षाएँ होती हैं, उनमें व्यक्तिनिष्ठता अधिक होती है, विषयनिष्ठता कम। एक प्रकार से देखा जाय तो वर्तमान परीक्षाएँ बालक की केवल स्मृति का परीक्षण करती हैं और उसकी शेष मानसिक योग्यताएँ अपरीक्षित ही रह जाती हैं। इन परीक्षाओं में 'संयोग' का अधिक हाथ रहता है।

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में हम संस्कृत भाषा के कुछ तत्त्वों की ओर कोई ध्यान नहीं देते हैं। हम यह देख चुके हैं कि भाषा के चार प्रमुख कौशल हैं—(१) बोलना, (२) लिखना, (३) पढ़ना, और (४) सुनना। इन चार कौशलों की परीक्षा अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि संस्कृत भाषा का ज्ञान इन चारों के ज्ञान पर निर्भर है। किन्तु सुनकर समझने की योग्यता एवं बोलकर आत्म-प्रकाशन की योग्यता की परीक्षा आजकल की निबन्धात्मक परीक्षा-प्रणाली द्वारा हो ही नहीं पाती। इनके अतिरिक्त बालकों के उच्चारण, वर्तनी, शब्द-भण्डार आदि की भी परीक्षा उचित रूप में नहीं हो पाती है।

वर्तमान परीक्षाओं में छात्रों को जो प्रश्न-पत्र दिये जाते हैं; उनकी भी रचना दोषपूर्ण होती है। प्रश्न पूरे पाठ्यक्रम पर नहीं होते और अधिकांश प्रश्न केवल सूचनाओं एव तथ्यों की परीक्षा करने के लिए होते हैं, जबकि सूचनाओं एवं तथ्यों का स्वयं कोई महत्त्व नहीं होता। वस्तुतः सूचनाओं की परीक्षा की अपेक्षा सूचनाओं का बुद्धिमत्ता से प्रयोग करने की क्षमता की परीक्षा अधिक आवश्यक है। प्रश्नों के उत्तर निश्चित नहीं होते हैं, अतः परीक्षाफल परीक्षक के निर्णय पर अधिक निर्भर रहता है, परीक्षार्थी के ज्ञानोपार्जन पर कम।

नवीन परीक्षा-प्रणाली

संस्कृत की परीक्षा के उपर्युक्त दोषों को दूर करने के लिए परीक्षा-प्रणाली को भी बदलना होगा। परीक्षा के साधन ऐसे होने चाहिए जो परीक्षणीय विषय के उद्देश्यों के आधार पर बने हों। संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों पर 'तृतीय अध्याय' में विस्तार से विचार किया गया है। किन्तु परीक्षणों की रचना केवल संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों के आधार पर ही न होकर छात्रों के व्यवहारों में अभीष्ट परिवर्तन के अनुसार होगी। छात्रों के व्यवहारों में परिवर्तन लाने के लिए हमें अपने अध्यापन की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्पष्ट रूपरेखा तैयार करनी होगी और अध्याप्य-विन्दु निश्चित करने होंगे। इन अध्याप्य-बिन्दुओं के आधार पर ही शिक्षकों एवं छात्रों की शैक्षणिक क्रियाएँ निश्चित होंगी और उन क्रियाओं का मूल्यांकन होगा। नवीन दृष्टिकोण के अनुसार संस्कृत का पाठ्यक्रम, संस्कृत-शिक्षण-विधियाँ एवं मूल्यांकन एक इकाई के रूप में देखे जाने चाहिए।

इस दृष्टि से संस्कृत-शिक्षण के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू हैं—

१. पाठ्यक्रम,

२. शिक्षण विधि, और

३. मूल्यांकन।

मूल्यांकन की इस प्रक्रिया को निम्नलिखित त्रिभुज द्वारा चित्रित किया जा सकता है—

पाठ्यक्रम

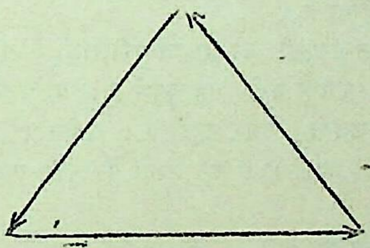

शिक्षण विधि मूल्यांकन

ये तीनों एक-दूसरे को नियन्त्रित करते हैं।

हमारी आजकल की शिक्षा और शिक्षण-विधि परीक्षा केन्द्रित हो गई है। छात्रों के लिए शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा पास करना मात्र रह गया है। अतः यदि हम परीक्षा पद्धति को सुधार दें तो शिक्षण-स्तर अपने आप ही सुधर जायगा। मूल्यांकन में संस्कृत-शिक्षण के निम्नलिखित लक्ष्यों को ध्यान में रखना चाहिए—

१. पाठ से सम्बन्धित तथ्यों, नियमों, सूत्रों, प्रत्ययों, संकेतों, प्रक्रियाओं इत्यादि की जानकारी।

२. पाठों से सम्बन्धित जानकारी की समझ अर्थात् छात्र द्वारा उनका अर्थ-ग्रहण, उन पर उसकी अधिकार प्राप्ति, उनके मूल का ज्ञान, उनमें पारस्परिक समानतायें एवं अन्तर, उनके विश्लेषण एवं संश्लेषण की क्षमता, उनमें से वांछित का चुनाव कर सकना, त्रुटियों, न्यूनताओं को समझ सकना इत्यादि।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३ विषय-ज्ञान को नवीन तथा भिन्न परिस्थितियों में प्रयोग कर सकना ।
४. भाषा से सम्बन्धित विभिन्न कौशलों; यथा—बोलना, सुनना, लिखना, पढ़ना आदि कौशलों का अर्जन ।
५. संस्कृत द्वारा वांछित अभिवृत्तियों का निर्माण ।
६. संस्कृत से सम्बन्धित विभिन्न रुचियों का विकास ।
७. रसानुभूति ।

हमारी आजकल की लिखित परीक्षाओं का क्षेत्र सीमित है। आजकल के प्रश्न-पत्र उपर्युक्त लक्ष्यों में से अधिकतर केवल प्रथम लक्ष्य अर्थात् पाठ से सम्बन्धित जानकारी मात्र की ही जाँच करते हैं। अन्य महत्त्वपूर्ण लक्ष्य जाँच से अछूते रह जाते हैं।

नवीन मूल्यांकन प्रणाली में इस प्रकार के प्रश्नों की रचना की जाती है जिनके उत्तर निश्चित हों। इससे विषयनिष्ठता आ जाती है और अङ्कन निष्पक्ष हो जाता है। इन प्रश्नों के अङ्कन में परीक्षकों के परिवर्तन का प्रभाव नहीं पड़ता और परीक्षण वैध तथा विश्वसनीय होता है।

नवीन मूल्यांकन-प्रणाली को संस्कृत परीक्षाओं में भी प्रयुक्त करना चाहिए। इसके लिए प्रश्नों की रचना बड़ी महत्त्वपूर्ण है। प्रश्नों की रचना पर ही नवीन परीक्षा-प्रणाली की सफलता निर्भर रहती है। नवीन परीक्षा-प्रणाली में प्रश्नों की रचना कई प्रकार से की जाती है। इन प्रश्नों में मुख्य रूप से पाँच प्रकार के प्रश्न होते हैं—

१. बहुविकल्प पद ।
२ रिक्त-स्थान पूर्ति पद ।
३. सत्यासत्य निर्देश पद ।
४. समानता निर्देश पद ।
५. प्रत्याह्वान पद ।

संस्कृत भाषा की परीक्षा लेने में इनका प्रयोग किया जा सकता है। नीचे नवीन मूल्यांकन प्रणाली के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

उद्देश्य—बालकों को संस्कृत भाषा के कुछ शब्दों पर अधिकार प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करेगा।

मान लीजिए, वे शब्द हैं—"इन्द्रः, सुधांशुः, कमलम्, नीलकण्ठः, द्विजः, हरिः, विबुधः, प्रकाशः, पण्डितः।"

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में प्रायः प्रश्न होता है—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बताओ तथा उन्हें अपने वाक्यों में प्रयोग करो—

इन्द्रः	सुधांशुः
कमलम्	नीलकण्ठः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्विजः	हरिः
विबुधः	प्रकाशः
पण्डितः	

नवीन मूल्यांकन-प्रणाली के अनुसार उपर्युक्त उद्देश्य के आधार पर निम्नलिखित प्रश्न किये जा सकते हैं—

(१) नीचे तीन खाने बने हैं। पहले खाने में कुछ शब्द लिखे हुए हैं और शेष दो खाने रिक्त हैं। आगे अनेक शब्द दिए हुए हैं जो प्रथम खाने में लिखे हुए शब्दों के पर्यायवाची हैं। प्रत्येक शब्द के आगे उस शब्द के पर्यायवाची शब्द लिखो—

क	ख	ग
इन्द्रः		
सुधांशुः		
कमलम्		
नीलकण्ठः		
द्विजः		
हरिः		
विबुधः		
प्रकाशः		
पण्डितः		

पर्यायवाची शब्द—विधुः, विद्वान्, विप्रः अजरः, मघवा, आलोकः, पंकजम्, सिंहः, पिनाकी, पुरंदरः, ब्राह्मणः, अमरः, शचीपतिः, राकेशः, प्रतिभावान्, इन्दीवरम्, केसरी, चन्द्रशेखरः, प्रभाकरः।

(२) नीचे तीन खाने बने हैं। पहले खाने में जो शब्द हैं, उनके विलोम शब्द अव्यवस्थित रूप से दूसरे खाने में दिए गए हैं। प्रत्येक शब्द के विलोम शब्द को उसी के सामने तीसरे खाने में लिखो—

क	ख	ग
पण्डितः	जर	
प्रकाशः	असुरः	
अजरः	मूर्खः	
विबुधः	तमसम्	

(३) नीचे तीन खाने बने हैं। पहले खाने में कुछ शब्द लिखे हुए हैं। सबसे आगे अन्य शब्द दिए गए हैं। प्रथम खाने में लिखे हुए शब्दों के दो अर्थ हैं जिनके प्रतीकस्वरूप सबसे नीचे शब्द हैं। प्रत्येक शब्द के सामने दो शब्द लिखो जो प्रथम खाने के शब्द के अर्थ के रूप में हों। लिखने के लिए दो खाने खाली हैं—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क	ख	ग
नीलकण्ठः		
द्विजः		
हरिः		

दन्तः, मयूरः, सिंह, विष्णुः, पक्षीविशेषः, विप्रः, शिवः ।

(४) नीचे लिखे कोष्ठक में दिए हुए शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति करो ।

सूर्योदयकाले सर्वत्रैव·······भवति । पण्डितः सन्ध्यावन्दन······················ गायन्ति ।·······हसति ।·······दिनम् शोभायनाम् वर्तते ।

(एतादृशं, कुर्वन्ति, प्रकाशः, [illegible]नम्, गायकाः इन्द्रस्य, सुधांशोः)

(५) निम्नलिखित में सत्यासत्य निर्देश करो—

१. 'कमलम्' तृतीया का एकवचन का रूप है । (·······)

२. 'हरिः' शब्द पुल्लिग है । (·······)

३. 'द्विज' पक्षी को भी कहते हैं । (·······)

४. 'सुधांशुः' का षष्ठी का एकवचन में 'सुधांशस्य' रूप होगा । (·······)

५. 'इन्द्र' का रूप 'राम' शब्द की भाँति चलेगा । (·······)

६. 'नीलकण्ठ' केवल शंकरजी को कहते हैं । (·······)

(६) नीचे अपूर्ण कथनों को पूरा करने के लिए कई विकल्प हैं । जो सर्वाधिक उचित विकल्प हो, उसके आगे सही (√) का चिह्न बना दो ।

(क) भगवान् शङ्कर को नीलकण्ठ इसलिए कहा जाता है क्योंकि—

१. वे बड़े दयालु हैं ।

२. उन्होंने भस्मासुर को मारा था ।

३. विषपान के कारण उनका कण्ठ नीला पड़ गया है ।

४. वे नीलकण्ठ पक्षी के समान हैं ।

(ख) ब्राह्मण को द्विज इसलिए कहा जाता है, क्योंकि—

१. वह यज्ञ करता और कराता है ।

२. वह अध्ययन करता और कराता है ।

३. वह दान लेता है ।

४. उपनयन-संस्कार द्वारा उसका दुबारा जन्म होता है ।

५. उसका समाज में आदर होता है ।

(७) 'क' के नीचे लिखे हुए शब्दों को 'ख' के नीचे लिखे हुए शब्दों से संयुक्त करने पर वाक्य पूर्ण हो जाता है । वाक्यों को पूर्ण करके लिखो --

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh